अंतरराष्ट्रीय बेस्टसेलर

आनंद का सरल मार्ग

प्रसन्न रहकर जीवन जीने की कला
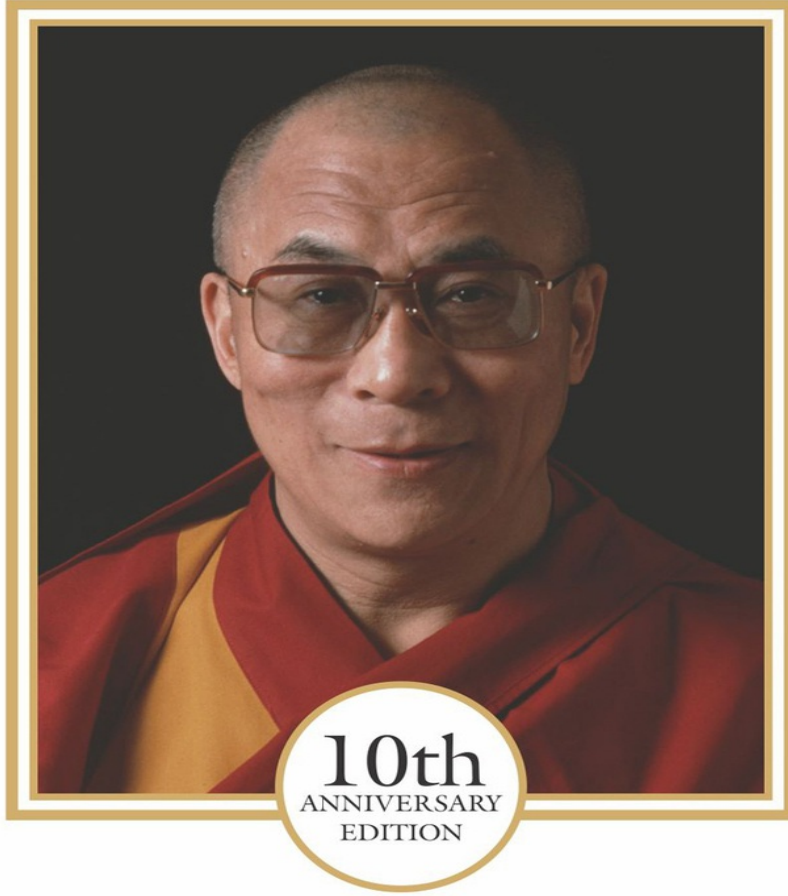
परम पूज्य

दलाई लामा

हावर्ड सी. कट्लर के साथ

Hindi translation of *The Art of Happiness – A Handbook for Living*

आनंद
का सरल मार्ग

प्रसन्न रहकर जीवन जीने की कला

आनंद का सरल मार्ग

प्रसन्न रहकर जीवन जीने की कला

परम पूज्य

दलाई लामा

हावर्ड सी. कट्लर के साथ

अनुवाद: आशुतोष गर्ग

मंजुल पब्लिशिंग हाउस

First published in India by

Manjul Publishing House

Corporate and Editorial Office

• 2nd Floor, Usha Preet Complex, 42 Malviya Nagar, Bhopal 462 003 - India

Email: manjul@manjulindia.com Website: www.manjulindia.com

Sales and Marketing Office

• 7/32, Ground Floor, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi 110 002

Email: sales@manjulindia.com

Distribution Centres

Ahmedabad, Bengaluru, Bhopal, Kolkata, Chennai,
Hyderabad, Mumbai, New Delhi, Pune

The excerpt from *"Eight Verses of the Training of the Mind"*, by Geshe Langri Thangpa is from the *Four Essential Buddhist Commentaries* by HH, the Dalai Lama.

Hindi translation of
The Art of Happiness: A Handbook for Living – 10th Anniversary Edition, by *HH, the Dalai Lama and Howard C. Cutler*.

This edition first published in 2016

पाठकों को समर्पित
ईश्वर करे आपको ख़ुशी प्राप्त हो

विषय-सूची

भाग 5: आध्यात्मिक जीवन पर अंतिम चिंतन

10वें संस्करण की प्रस्तावना

परम पावन दलाई लामा

मुझे यह जानकर बहुत ख़ुशी हो रही है कि आनंद का सरल मार्ग - जिसे मैंने अपने एक पुराने मित्र और अमेरिकी मनोवैज्ञानिक हावर्ड कट्लर के साथ मिलकर लिखा है - पुस्तक के दसवें संस्करण को प्रकाशित किया जा रहा है। जिन लोगों ने यह पुस्तक पढ़ी है, वे जानते हैं कि यह हावर्ड के साथ कई घंटों की चर्चा का नतीजा है जिसमें हावर्ड मौजूदा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को तथा मैं मानसिक स्वास्थ्य व मानव कल्याण से जुड़े मुद्दों के बौद्धिक आयाम का प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ। इसलिए जब इस पुस्तक को आम जनता द्वारा पसंद किया गया तो मुझे बहुत संतोष हुआ क्योंकि इससे यह पता लगा कि हमारी मेहनत ने दूसरों की ख़ुशी और उनके कल्याण में कुछ योगदान तो दिया था। चूंकि हम दोनों लेखक अलग-अलग दृष्टिकोण वाले हैं, हमने हमेशा अपनी चर्चा को मूल मानवीय स्तर पर लेकर आने का प्रयास किया, वह स्तर जहाँ लोगों के बीच - लिंग, जाति, धर्म, संस्कृति और भाषा - के भेद मिट जाते हैं। इस मूलभूत स्तर पर हम सब एक-से हैं; हम सभी ख़ुश रहना और कष्ट से बचना चाहते हैं। यह हमारी सबसे मूलभूत सच्चाई है और इस स्तर पर हम मनुष्य के रूप में एक जैसी समस्याओं का सामना करते हैं। इस मान्यता के साथ जब कभी मुझे आम जनता से बात करने का मौका मिलता है, मैं हमेशा लोगों का ध्यान मानव परिवार की इसी समानता तथा हमारे अस्तित्व व कल्याण की गहराई से जुड़े स्वभाव की ओर आकृष्ट करने की कोशिश करता हूँ। मेरा यह भी मानना है कि इन गहन किंतु सरल वास्तविकताओं का आभास होने के बाद एक प्रजाति के रूप में हमें अपने साथी मनुष्यों एवं अपने आस-पास के संसार के साथ संबंध स्थापित करने की आवश्यकता है।

आज, आनंद का सरल मार्ग के प्रकाशन के एक दशक के उपरांत मुझे यह देखकर

अत्यंत हर्ष हो रहा है कि मानव प्रसन्नता के विषय में लोगों की रुचि का और वैज्ञानिक समुदाय द्वारा गंभीर शोध का स्तर बढ़ता जा रहा है। साथ ही, विस्तृत समुदाय के बीच पहचान और वैज्ञानिक प्रमाण में भी बढ़ोतरी हुई है जो इस बात को सिद्ध करती है कि हमारी मनोदशा और हमारी ख़ुशी के बीच नज़दीकी संबंध है। मैंने बहुत साल पहले लिखा था: "अगर आप दूसरों को ख़ुश देखना चाहते हैं तो करुणा का अभ्यास कीजिए और अगर आप स्वयं ख़ुश रहना चाहते हैं तो भी करुणा का अभ्यास कीजिए।" विश्व की अनेक महान आध्यात्मिक परंपराओं की तरह बौद्ध परंपरा ने हमें अपने जीवन को करुणामय होकर जीने का उपदेश दिया है। ये आध्यात्मिक परंपराएँ हमें अपने साथियों और अपने संसार के साथ जुड़ा हुआ महसूस करना सिखाती हैं। ये दूसरों की सेवा को उच्चतम गुण मानती हैं। आज, वैज्ञानिक डेटा में वृद्धि से इस अंतर्दृष्टि की पुष्टि हुई है। मानवीय ख़ुशी के शोधकर्त्ता दूसरों की करुणामय सेवा को विश्व के सबसे प्रसन्न लोगों के प्रमुख गुण के रूप में देखते हैं। मुझे यह बात पूरी तरह तर्कसंगत लगती है। जब हम दूसरों की मदद करते हैं तो हमारे मस्तिष्क का केंद्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है जिसके कारण हम अपनी छोटी-छोटी समस्याओं को अधिक व्यावहारिक ढंग से देख पाते हैं। जो हमें पहले डरावना और असहनीय लगता था, जिसके कारण प्राय: हमारी समस्याएँ हम पर हावी हो जाती हैं, उसकी प्रखरता कम होने लगती है।

प्रश्न यह है: क्या हम स्वयं को अधिक करुणामय बना सकते हैं? यदि हाँ तो हम यह कैसे कर सकते हैं? दोबारा, यहाँ मेरा यही मानना है कि मानव परिवार की समानता तथा हमारे कल्याण की गहराई से जुड़ा स्वभाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। जब आप दूसरों से जुड़ाव महसूस करते हैं तो आपका हृदय अधिक उदार हो जाता है, जिसे मैं अपना "भीतरी द्वार" कहता हूँ और इसके द्वारा हम दूसरों तक पहुँच पाते हैं। ऐसा करते हुए, आपको सुरक्षा और विश्वास का गहन भाव महसूस होता है तथा आज़ादी का सच्चा एहसास होता है। अपनी खुद की मानसिक अवस्था, विशेषकर अपनी भावना एवं व्यवहार के संदर्भ में अधिक जागरूकता पैदा करना इस प्रक्रिया का एक ज़रूरी हिस्सा है। ऐसा करने से आप अपने भीतर एक मज़बूत नींव का निर्माण कर सकते हैं, एक ऐसा लंगर जो आपको सच्चा भीतरी निवास उपलब्ध करवा सकता है। यही सच्ची आंतरिक ख़ुशी और प्रसन्नता के वास्तविक स्रोत का आधार है। शोधकर्त्ताओं को प्राय: करुणा और ख़ुशी के बीच के कारणात्मक क्रम को लेकर आश्चर्य होता है। वे पूछते हैं: करुणामय लोग अधिक ख़ुश रहते हैं अथवा जो ख़ुश रहते हैं उनमें करुणा अधिक होती है? व्यावहारिक स्तर पर, मुझे लगता है इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि पहले क्या आता है। दरअसल, ज़रूरी बात यह है कि हम दोनों चीज़ें विकसित कर सकते हैं। मेरी अपनी बौद्ध परंपरा में, अधिक करुणा व कल्याण के भाव को क्रमबद्ध तरीके से जागृत करने के लिए अनेक प्रकार के मानसिक प्रशिक्षण दिए जाते हैं। आज, तंतुविज्ञान विशेषकर दिमाग़ी लचीलेपन से प्राप्त होने वाली नवीन अंतर्दृष्टि के कारण, हम जानते हैं कि मनुष्य का मस्तिष्क बहुत अधिक उम्र, यहाँ तक कि मेरी तरह सत्तर के पार, होने पर भी बदलाव और अनुकूलता को आसानी से स्वीकार कर लेता है। तेरहवीं शताब्दी के

आदरणीय तिब्बती गुरु शाक्य पंडित ने एक बार कहा था, "अगर आपको कल मरना है तो भी, सीखते रहना चाहिए।"

आनंद का सरल मार्ग में, हमने पाठक के सामने अधिक ख़ुशी पाने और जीवन की अपरिहार्य विषमताओं व परेशानियों पर विजय पाने के लिए एक क्रमबद्ध तरीका प्रस्तुत करने का प्रयास किया। हमारे इस तरीके में पूर्व और पश्चिम - यानी, एक ओर पाश्चात्य विज्ञान व मनोविज्ञान तथा दूसरी ओर बौद्ध सिद्धांतों एवं पद्धतियों का संयोग व समावेश है। हमारा उद्देश्य दूसरे लोगों के साथ इस मान्यता को बाँटना है कि हम सब ज़्यादा ख़ुशी पाने हेतु एक-दूसरे के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं और इससे भी ज़रूरी, उन असंख्य आंतरिक संसाधनों की ओर ध्यान दिलाना है जो हम सबके पास उपलब्ध हैं। इन मुख्य उद्देश्यों के साथ, इस पुस्तक का प्रमुख आग्रह एक मनुष्य के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से जीवन में ख़ुशी तथा आनंद पाने के तरीकों एवं साधनों को खोजना है।

पिछले दस वर्षों में, हावर्ड और मैंने लगातार चर्चा की और हम इस चर्चा को विस्तृत समाज के स्तर तक ले गए और यह समझने का प्रयास किया कि बाहरी वातावरण हमारी ख़ुशी को किस तरह प्रभावित करता है। बातचीत के दौरान, हमने ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों और पद्धतियों को जाना है जो व्यक्ति की ख़ुशी पाने की निजी तलाश में अहम भूमिका निभा सकते हैं। इससे भी ज़रूरी यह है कि हमने विस्तृत समाज के संदर्भ में इन सिद्धांतों और पद्धतियों के बेहतरीन अनुप्रयोग से संबंधित कुछ अत्यंत चुनौतीपूर्ण प्रश्नों को भी समझा है। आज के परेशान व चुनौती-भरे संसार में कोई कैसे ख़ुश रह सकता है? संसार की समस्याओं और उसके कष्टों से निपटने के लिए आनंद का सरल मार्ग के सिद्धांतों को प्रयोग में कैसे लाया जा सकता है? व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर हिंसा की जड़ें कहाँ हैं? हिंसा के इन स्रोतों को उलटने का ढंग कैसे सीखा जा सकता है? मानवीय हिंसा और पीड़ा के बीच मानवता के प्रति आशावान रहना कैसे संभव है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका हमने अपनी चर्चा के बीच हल निकालने का प्रयास किया। इस दशक के दौरान, मैंने विशेषकर ज्ञानात्मक व भावात्मक तंत्रिका विज्ञान तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र से जुड़े वैज्ञानिकों से बातचीत करना जारी रखा ताकि मेरी अपनी पुरातन बौद्ध परंपराओं एवं आधुनिक विज्ञान के बीच बेहतर तालमेल स्थापित हो सके। मैं आशा करता हूँ कि इस खोज तथा हावर्ड के साथ मेरे अभी तक चल रहे संवादों के परिणाम एक नई पुस्तक का रूप ले सकेंगे ताकि जो कुछ मुझे निजी तौर पर बहुत शिक्षाप्रद लगा है, उसे अन्य लोगों के साथ बाँटा जा सके।

10वें संस्करण की भूमिका

आनंद का सरल मार्ग: अतीत और भविष्य

हावर्ड सी. कट्लर, एमडी

आरंभ

आनंद का सरल मार्ग को पहली बार प्रकाशित हुए एक दशक बीत चुका है। जब मैं उन घटनाओं के बारे में सोचता हूँ जो इस पुस्तक के प्रकाशन का कारण बनीं तो मैं नब्बे के दशक के आरंभ में पहुँच जाता हूँ जब मैंने पहली बार दलाई लामा के साथ मिलकर ख़ुशी पर एक पुस्तक लिखने का विचार बनाया। उस समय तक अधिकतर अमेरिकी लोगों के बीच दलाई लामा का नाम चर्चित हो गया था लेकिन बौद्ध समुदाय के बाहर बहुत कम लोग उन्हें एक मनुष्य के रूप में जानते थे। सामान्य जनता के मन में उनकी छवि भ्रांतियों से ग्रस्त धुँधले-से एक रेखाचित्र से बस कुछ ही अधिक थी: हँसता-मुस्कराता बुद्ध, "बौद्ध धर्म का पोप", "तिब्बत का देवराज।" वास्तव में, उस समय दलाई लामा का नाम लेने पर एक सामान्य अमेरिकी नागरिक के मन में जो छवि उभरती थी, वह कार्ल स्पैकलर की थी जिसने कैडीशैक नामक फ़िल्म में गोल्फ़ कोर्स के अस्त-व्यस्त रहने वाले कार्यवाहक की भूमिका निभाई थी और जिसने दलाई लामा के कैडी के रूप में अपनी लघु भूमिका को इन शब्दों में बयान किया था: "...तो हमने अट्ठारहवां पूरा किया और अब वह मुझ पर सख़्ती करेंगे! और मैं कहता हूँ, 'अरे लामा! अरे, इतनी मेहनत के लिए क्यों न थोड़ा-सा कुछ ले लिया जाए' और वह कहता है, 'ओह हाँ, पैसा तो नहीं होगा लेकिन जब तुम मरने लगोगे तो तुम्हें अपनी मृत्यु शय्या पर पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाएगी।' मेरे लिए अभी

यह ठीक भी है - और अच्छा भी!”

निश्चित तौर पर, कुछ लोग ऐसे भी थे जिनके मन में दलाई लामा की छवि अधिक परिष्कृत थी, जो उन्हें नोबेल पुरस्कार विजेता और मानवाधिकारों का ऐसा अथक समर्थक मानते थे, जो चीनी सेना द्वारा तिब्बत पर नृशंस आक्रमण के फलस्वरूप पचास साल के निर्वासन के बावजूद अहिंसा के लिए प्रतिबद्ध था। परंतु अधिक ज्ञानवान लोगों के बीच भी, उनके विषय में अवधारणा का सिर्फ़ एक ही आयाम था - उदाहरण के लिए, कुछ लोग उन्हें सिर्फ़ एक राजनैतिक व्यक्तित्व समझते थे और जिन्हें उनके विश्व के अग्रगामी बौद्ध विद्वानों तथा गहन आध्यात्मिक ज्ञान व सूझ-बूझ वाले शिक्षकों में शुमार होने की जानकारी नहीं थी। उस समय के बहुत-से लोगों को यह जानकर आश्चर्य हुआ होता कि स्वयं को एक महान विश्व नेता मानने से दूर, दलाई लामा की निजी पहचान उनके एक सामान्य बौद्ध भिक्षु होने से संबद्ध थी - जो प्रतिदिन सुबह 3.30 बजे उठकर चार या पाँच घंटे प्रार्थना एवं ध्यान में बिताता था।

इस तरह 1990 के दशक के आरंभ तक मैंने एक पुस्तक के विषय में सोचना आरंभ किया जो इन भ्रांतियों को दूर कर सके और जनसामान्य के मन में उनकी कार्टून जैसी छवि को कुछ माँस-मज्जा प्रदान कर सके। परंतु इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य यह नहीं था। इससे कहीं अधिक ज़रूरी उद्देश्य ख़ुशी प्राप्त करने के तरीकों से संबंधित उनके विचारों को प्रस्तुत करना था।

प्रकाशन

मुझे वह भेंट बहुत स्पष्ट रूप से याद है जब मैंने दलाई लामा के सामने इस पुस्तक का प्रस्ताव रखा था। मुझे अपने ऊपर बिल्कुल भरोसा नहीं था। मैंने इतने वर्षों में इस तरह के प्रस्तावों को भाँपने की उनकी कला को देख रखा था - और इस विश्वास से कि वह मेरी प्रार्थना को अस्वीकार कर देंगे, मैं अपने पक्ष में तर्क प्रस्तुत करने की तैयारी के साथ गया था।

“परम पावन, मुझे पता है कि आप दो दर्जन से अधिक पुस्तकें लिख चुके हैं,” मैंने अपनी बात कहना आरंभ किया, “लेकिन यह पुस्तक बिल्कुल अलग होगी। इसका उद्देश्य उन आवश्यक सिद्धांतों को छानकर प्रस्तुत करना है जिनके सहारे आपने अपना जीवन जिया है और जिनकी सहायता से आप ख़ुश रह पाए हैं। ये सिद्धांत बेशक बौद्ध धर्म पर आधारित हों, मैं आपकी इन मान्यताओं को इस ढंग से प्रस्तुत करना चाहता हूँ जिसे किसी भी पृष्ठभूमि या परंपरा के लोग अपना सकें और यह दर्शाया जा सके कि इन सिद्धांतों का दैनिक जीवन में प्रयोग करके किस तरह अधिक ख़ुशी हासिल की जा सकती है...”

“वाह, बहुत अच्छा!” उन्होंने उत्साहपूर्वक कहा।

"और फिर मेरे यानि एक मनोवैज्ञानिक के दृष्टिकोण से," मैंने कहा, "मैं ख़ुशी के बारे में तथा इस विषय में कि वह क्या है जो जीवन को लाभप्रद बनाता है, आपके विचारों को जाँचने का प्रयास करूँगा और पाश्चात्य मनोविज्ञान के संदर्भ में आपके मत का समर्थन करने वाले वैज्ञानिक प्रमाण को भी खोजूँगा।"

"हाँ, ठीक है!" दलाई लामा ने मेरे प्रस्ताव की स्वीकृति में सिर हिलाते हुए निर्णायक ढंग से कहा।

चूंकि मैं पहले से यह धारणा लेकर आया था कि वह तुरंत मेरी बात को स्वीकार नहीं करेंगे, मैंने फिर से उन पर ज़ोर डाला। मेरा ध्यान उन्हें मनवाने पर और अपने तर्क से उन्हें अचंभित करने पर इतना ज़्यादा केंद्रित था कि मुझे उनकी बात सुनने का अथवा उनके उत्तर पर प्रतिक्रिया देने का ख़्याल भी नहीं रहा।

दलाई लामा कुछ अचरज में पड़ गए और फिर उन्होंने मुझे टोका।

"हावर्ड," वह हँसते हुए बोले, "मैंने आपकी बात मान ली है। अब आप अपने पक्ष में तर्क क्यों दे रहे हैं?"

आख़िर इस बात को समझते हुए कि उन्होंने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था, मैं गर्व महसूस कर रहा था - इस पुस्तक के उद्देश्यों एवं कारणों के बीच, उनसे ज़्यादा स्वार्थी एक और कारण था जो मैं उन्हें सहज रूप से बताना भूल गया: मैं उनसे यह सीखना चाहता था कि मैं स्वयं कैसे अधिक ख़ुश रह सकता हूँ।

1993 में दलाई लामा की मेरे निवास-स्थान ऐरिज़ोना में पहली यात्रा के दौरान हमने इस पुस्तक पर काम करना शुरू किया। उस सप्ताह उन्होंने शिक्षण का अत्यंत गहन कार्यक्रम रखा जिसमें उन्होंने आठवीं शताब्दी के महान भारतीय बौद्ध गुरु शांतिदेव के एक महान ग्रंथ पर शानदार प्रवचन दिया। उनकी लंबी दैनिक शिक्षण बैठकों के बावजूद हम मिलने के लिए कुछ समय निकाल लेते थे। इसमें इस बात से भी सहायता मिली कि वह टक्सन के बाहर सोनोरन मरुस्थल के उसी होटल में ठहरे थे जहाँ उनकी सार्वजनिक बैठक होती थीं। इस तरह सुबह नाश्ते के बाद और कभी-कभी दोपहर में हम उनके कमरे में मिल लेते थे। उस दौरान मैं उनसे एक के बाद एक प्रश्न पूछता था तथा जीवन के विषय में, उन बातों के बारे में जिनसे जीवन लाभकारी बनता है और मनुष्य की ख़ुशी व उसके दुखों से जुड़े महत्त्वपूर्ण सवालों पर उनके विचार जानता था।

हमारी बातचीत से महीनों पूर्व, मैंने काफ़ी समय लगाकर प्रश्नों की एक सूची बनाई थी और उन्हें कसे हुए व्यवस्थित दायरे में ध्यान से क्रमबद्ध किया था जिससे एक बहुत मोटी तीन छल्ले वाली फ़ाइल भर जाए। हमारी जब पहली बार भेंट हुई तो मैं पूरी तरह तैयार था किंतु दलाई लामा ने कुछ ही मिनटों में मेरे इस भ्रम को तोड़ दिया कि मैं उस चर्चा की दिशा नियंत्रित करने वाला था। मैंने व्यवस्थित ढंग से अपने पूर्व-निर्धारित प्रश्नों पर डटे रहने की योजना बनाई थी और सोचा था कि मैं उनके पर्दे को अपने सवालों से एक के बाद एक गिराता जाऊँगा। परंतु जल्दी ही मैंने यह समझ लिया कि वह मेरे विचारों को मानने के लिए

बाध्य नहीं थे। मेरे प्रश्नों के बदले उनके उत्तर प्रायः अनपेक्षित होते थे और वे हमारी बातचीत को पूरी तरह किसी नई दिशा में मोड़ देते थे। मैं किन्हीं विचारों की ट्रेन पर सवार होता था कि तभी अचानक उनके किसी अप्रत्याशित भिन्न विचार से टकराकर वह ट्रेन पटरी से उतर जाती थी। कभी-कभी वह संवाद मेरे लिए चुनौतीपूर्ण हो जाते थे। उसी के साथ, दलाई लामा अपने सतर्क दिमाग़ और ज़बर्दस्त हास्य-बोध के कारण उन संवादों को जीवंत बनाए रखते थे और मेरा ध्यान लगातार आकर्षित किए रहते थे।

उनके साथ किए संवाद तथा उनके सार्वजनिक भाषणों से कुछ सामग्री लेकर इस पुस्तक की मूल विषय-वस्तु बनी जिसे बाद में उनके देश भारत में हुई अतिरिक्त चर्चाओं की मदद से पूरित किया गया। शीघ्र ही इस कार्य में व्यस्त होने के साथ, मैंने अस्थायी तौर पर मनोरोग चिकित्सा की अपनी प्रैक्टिस को रोकने का फ़ैसला किया ताकि मैं मानवीय ख़ुशी को जान सकूँ और उस तकनीक को खोज सकूँ जिससे पूर्व व पश्चिम के बीच सेतु बनाया जा सके। मैंने यह अनुमान लगाया कि इस पुस्तक को पूरा करने में शायद छह महीने लगेंगे और दलाई लामा के सह-लेखक होने के कारण, मुझे लगा कि इसके लिए प्रकाशक खोजना आसान होगा।

मेरा ख़्याल ग़लत था। मैं पाँच साल बाद भी उस पुस्तक पर काम कर रहा था। मेरी मेज़ पर साहित्यिक एजेंटों व प्रकाशकों से आए अस्वीकृति के पत्रों का ढेर जमा हो गया था जो तत्कालीन प्रकाशन जगत में व्याप्त विवेक के प्रति बढ़ता हुआ साक्षी था: वह मत था कि मुख्यधारा के पाठकों की दलाई लामा की पुस्तकों में रुचि नहीं थी। इसके अलावा, उनका दावा था कि लोगों की मानवीय ख़ुशी के विषय में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

कई वर्षों की निरंतर अस्वीकृति और मेरे वित्तीय संसाधनों के पूर्ण क्षय के उपरांत 1998 तक, मुझे लगा कि मेरे पास कोई विकल्प शेष नहीं था। फिर भी, मुझे यह विश्वास था कि कुछ नए पाठक दलाई लामा के ज्ञान से लाभान्वित हो सकते थे, इसलिए मैंने अपनी सेवा-निवृत्ति की बचत के बचे हुए पैसों से पुस्तक की थोड़ी-सी प्रतियाँ छपवाने की योजना बनाई। आश्चर्यजनक रूप से, ठीक उसी समय मेरे एक नज़दीकी मित्र की माँ ने न्यू यॉर्क सब-वे पर एक अजनबी को यूं ही उस किताब के बारे में कहा दिया - वह अजनबी प्रकाशन जगत से जुड़ा हुआ था - जिससे संबंधों की एक श्रृंखला शुरू हो गई और जिसके फलस्वरूप अंत में एक साहित्यिक एजेंट और मुख्यधारा के एक अच्छे प्रकाशक के साथ अनुबंध हो गया। इस तरह, प्रथम लघु संस्करण और विनीत आशाओं के साथ पुस्तक प्रकाशित हो गई।

अनपेक्षित सफलता

यह दस साल पहले की बात है। इसके बाद के घटनाक्रम की दलाई लामा, प्रकाशक और मैंने

कल्पना भी नहीं की थी। पुस्तक के प्रति जागरूकता बहुत तेज़ी से फैली और इसमें विज्ञापन या प्रचार की अपेक्षा मुँह से हुई प्रशंसा की भूमिका अधिक थी। मैं पुस्तक की इस प्रकार की अत्यधिक सकारात्मक व अप्रत्याशित प्रतिक्रिया से चकित था जब मैंने देखा कि उसका नाम न्यू यॉर्क टाइम्स की सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों की सूची में शामिल हुआ और फिर दो साल तक वहाँ बना रहा। जल्दी ही हमें इस बात के प्रमाण देखने को मिलने लगे कि वह पुस्तक अमेरिकी सांस्कृतिक माहौल का हिस्सा बन गई और प्रायः टीवी धारावाहिकों, गेम शो, यहाँ तक कि एमटीवी जो उस समय अमरीका की प्रसिद्ध संस्कृति के प्रतिरूप थे: फ्रेंड्स, सेक्स एंड दि सिटी, जिओपार्डी!, हू वॉन्ट्स टू बी अ मिलिनेयर, एमटीवी क्रिब्स में दिखाई जाने लगी - यहाँ तक कि उस साल के मंडे नाइट फुटबॉल के प्रारंभिक मैच में भी यह पुस्तक दिखी जिसमें एक खिलाड़ी ने आंशिक तौर पर अपनी समय से पूर्व सफलता का श्रेय आनंद का सरल मार्ग को दे दिया।

साफ़ तौर पर, दलाई लामा के मूलभूत संदेश का सार्वभौमिक आकर्षण था: हाँ, ख़ुश रहना संभव है - बल्कि, हम किसी भी अन्य कला की तरह, प्रयास व अभ्यास द्वारा, आनंद का सरल मार्ग भी सीख सकते हैं। यह समझाते हुए कि अपने स्वभाव और दृष्टिकोण में बदलाव लाकर हम किस तरह ख़ुशी प्राप्त कर सकते हैं, दलाई लामा दर्शाते हैं किस तरह ख़ुशी पाने की कुंजी हमारे अपने हाथ में है। हमें ख़ुश रहने के लिए अब भाग्य या संयोग पर निर्भर रहने और उस दिन की प्रतीक्षा करने की ज़रूरत नहीं है जब हमारे जीवन की समस्त बाहरी परिस्थितियाँ ठीक हो जाएँगी - जब हमारा वज़न कम हो जाएगा, हम अमीर हो जाएँगे, जब हमारा विवाह (या तलाक़!) हो जाएगा अथवा जब हमें वांछित पदोन्नति मिल जाएगी।

दलाई लामा द्वारा दिया गया आशा का संदेश लोगों को अच्छा लगा और न सिर्फ़ अमरीका बल्कि पूरे विश्व के लोगों के हृदय में उतर गया। ये लोग भिन्न पृष्ठभूमि के थे किंतु शायद, वे सभी ख़ुश रहने की मूलभूत मानवीय इच्छा के साझेदार थे, जीवन में कुछ बेहतर पाने की इच्छा। अंततः, इस पुस्तक का पचास भाषाओं में अनुवाद हुआ और विश्वभर में लाखों लोगों ने इसे पढ़ा।

ख़ुशी का आंदोलन

साध्य लक्ष्य के रूप में ख़ुश रहने की अवधारणा, जिसे प्रयास और अभ्यास से विकसित किया जा सकता है, प्रसन्नता के विषय में बौद्ध दृष्टिकोण का मूल है। वास्तव में, मस्तिष्क का प्रशिक्षण अनेक शताब्दियों से बौद्ध अभ्यास का आधार रहा है। संयोग से, आनंद का सरल मार्ग के प्रकाशन के तुरंत बाद यही विचार किसी दूसरी दिशा से समाज में जड़ जमाने लगा - एक “नई” वैज्ञानिक खोज की तरह - जिसके कारण बहुत-से लोगों के मन में ख़ुशी की

अवधारणा को लेकर मूलभूत बदलाव आया।

जब मैंने 1990 के दशक के आरंभ में आनंद का सरल मार्ग पर कार्य करना शुरू किया था, तो मैंने पाया कि ख़ुशी और सकारात्मक भावनाओं के बारे में बहुत कम वैज्ञानिक अध्ययन हुए थे। ये शोध के लोकप्रिय विषय नहीं थे। हालाँकि उस समय मानवीय ख़ुशी और सकारात्मक भावनाओं का अध्ययन करने वाले शोधकर्त्ता गिने-चुने थे, वे सभी स्वतंत्र विचारों वाले थे। परंतु फिर अचानक मानवीय ख़ुशी वैज्ञानिक समुदाय और आम जनता के लिए समान रूप से गहन रुचि का विषय बन गई। लोगों के मन में ख़ुशी के संबंध में पकड़ में न आने वाली, रहस्यमयी और अप्रत्याशित वस्तु की जो अवधारणा थी, वह खत्म होने लगी तथा उसके स्थान पर ख़ुशी को ऐसी वस्तु के रूप में देखा जाने लगा जिसकी वैज्ञानिक ढंग से विवेचना की जा सकती थी। पिछले एक दशक से अधिक समय में, जैसे-जैसे लोगों ने ख़ुशी को बाहरी परिस्थितियों का नतीजा मानना छोड़कर, ख़ुशी को व्यवस्थित ढंग से विकसित की जा सकने वाली चीज़ के रूप में देखना शुरू कर दिया है, वैसे-वैसे हम एक नए आंदोलन के तीव्र विकास को देख रहे हैं - ख़ुशी का आंदोलन।

मानवीय ख़ुशी के अध्ययन समेत मनोविज्ञान के नए क्षेत्र की स्थापना इस नए आंदोलन को आरंभ करने वाली ऐतिहासिक घटना साबित हुई। मनोविज्ञान की इस नई शाखा का औपचारिक रूप से जन्म 1998 में हुआ जब एक अत्यंत प्रभावशाली मनोविज्ञानी और अमेरिकी मनोवैज्ञानिक संस्था के नव-निर्वाचित अध्यक्ष डॉ. मार्टिन सेलिगमैन ने अध्यक्ष के रूप में अपना कार्यकाल इस नवीन क्षेत्र की स्थापना को समर्पित करने का निर्णय लिया जिसे उन्होंने “सकारात्मक मनोविज्ञान” का नाम दिया। इस बात की ओर संकेत करते हुए कि रोग-विषयक मनोविज्ञान ने आधी शताब्दी से भी अधिक समय से मानसिक रोग, मानवीय दुर्बलता और दुष्क्रियता पर पूरी तरह अपना ध्यान केंद्रित किया है, उन्होंने अपने सहकर्मियों से मनोविज्ञान के दायरे को बढ़ाकर उसमें सकारात्मक भावों, मानवीय सामर्थ्य और “जीने योग्य बातों” को सम्मिलित करने का आग्रह किया।

सेलिगमैन ने एक अन्य मेधावी शोधकर्त्ता मिहाइ चीकसेंटमीहाइ के साथ मिलकर इस नए कार्यक्षेत्र की ज़मीन तैयार की। जल्द ही अमरीका और यूरोप के विश्वविद्यालयों के श्रेष्ठ शोधकर्त्ताओं का एक कोर ग्रुप भी उनके साथ इस काम में जुड़ गया और इसी के साथ सकारात्मक मनोविज्ञान ने गति पकड़ ली। मानव इतिहास में पहली बार, ख़ुशी आख़िरकार वैज्ञानिक अनुसंधान का वैध कार्यक्षेत्र बन गई थी।

उस समय से, ख़ुशी के आंदोलन का समाज के सभी स्तरों पर प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। लोकप्रिय मीडिया में ख़ुशी पर बनीं फ़ीचर कथाओं की बाढ़ आ गई है तथा अमरीका एवं विश्वभर के कॉलेजों में सकारात्मक मनोविज्ञान के शिक्षण पाठ्यक्रम बन गए हैं। उदाहरण के लिए, हार्वर्ड विश्वविद्यालय में, आरंभिक अर्थशास्त्र के स्थान पर “द हैपीनेस कोर्स” पूर्वस्नातक पाठ्यक्रमों में सबसे लोकप्रिय हो गया है जिसमें पंजीकरण करवाने वाले विद्यार्थियों की संख्या प्रति सेमेस्टर 1,400 से अधिक हो गई है। इसका असर विश्व के अनेक देशों में सरकारी स्तर पर भी देखने को मिल रहा है, उदाहरण के लिए भूटान ने सकल घरेलू

उत्पाद (जीडीपी) की जगह सकल राष्ट्रीय प्रसन्नता (जीएनएच) को देश की सफलता के सबसे महत्त्वपूर्ण मानक के रूप में स्थापित कर दिया है। यहाँ तक कि अनेक देशों के नीतिकार अब प्रसन्नता शोध पर आधारित सार्वजनिक नीति बनाने पर विचार कर रहे हैं। स्कॉटलैंड के एक सरकारी कर्मचारी ने अत्यंत प्रसन्न होकर कहा, “अगर हम सकारात्मक मनोविज्ञान के इस नए ज्ञान को ग्रहण कर पाए तो हमारे पास एक नया ज्ञानोदय करने का अवसर है।”

ख़ुश रहने के लाभ

ख़ुशी के आंदोलन को प्रेरित करने वाला एक कारण पिछले एक दशक में अचंभित करने वाला शोध रहा है जिसने ख़ुश रहने के बहुत-से लाभ उजागर किए हैं जो मात्र “अच्छा महसूस करने” से कहीं अधिक हैं। वास्तव में, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बड़ी सफलता चाहने वालों के लिए अधिक ख़ुशी विकसित करना एक स्थान पर सबकुछ पाने जैसा है। वैज्ञानिक अध्ययनों ने दर्शाया है कि ख़ुश रहने वाले लोगों को साथी जल्दी मिल जाता है, उनके वैवाहिक संबंध अधिक मज़बूत और संतोषजनक होते हैं तथा वे लोग बेहतर माता-पिता सिद्ध होते हैं। ख़ुश रहने वाले लोग अधिक स्वस्थ रहते हैं एवं उनकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता दूसरों से बेहतर होती है और उन्हें हृदय रोग कम होते हैं। इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि ख़ुश रहने वाले लोग कम ख़ुश रहने वाले अपने साथियों की तुलना में दस साल अधिक जीते हैं! इसके अतिरिक्त, ख़ुश रहने से मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है, लचीलापन बढ़ता है और परेशानी व दुख झेलने की क्षमता में भी वृद्धि होती है।

कुछ लोगों का ऐसा मानना है कि ख़ुश रहने वाले लोग ओछे और थोड़े-से मूर्ख होते हैं। फ़्रांसीसी उपन्यासकार गुस्ताव फ़्लबैर भी इस विचार से सहमत थे, और उन्होंने एक बार लिखा था: “ख़ुश रहने के लिए मूर्खता, स्वार्थ और अच्छी सेहत तीनों चीज़ें ज़रूरी हैं, हालाँकि यदि मूर्खता का भाव हो तो सब बेकार है।” हालाँकि हाल में हुए शोध ने यह बात झूठ सिद्ध कर दी है और यह पता लगाया है कि ख़ुश रहने से रचनात्मकता एवं मानसिक क्रिया-कलाप में वृद्धि होती है।

ख़ुश रहने के लाभ व्यक्ति के कार्य-क्षेत्र में भी दिखाई देते हैं क्योंकि ख़ुश रहने वाले लोग ज़्यादा अच्छा काम करते हैं अधिक आय अर्जित करने के साथ निजी जीवन के भी हर पक्ष में ज़्यादा सफल होते हैं। वास्तव में, अध्ययन बताते हैं कि अधिक आय वाले व्यक्ति की शिक्षा की अपेक्षा उसके ख़ुश रहने के स्तर से ज़्यादा संबंध होता है। गहन शोध से यह भी पता लगता है कि जिन संस्थाओं में ख़ुश रहने वाले कर्मचारी होते हैं, वे अधिक सफल होती हैं, उनकी लाभ अर्जित करने की क्षमता भी ज़्यादा होती है; इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है क्योंकि ख़ुश रहने वाले कर्मचारी अधिक उत्पादनशील और कंपनी के प्रति अधिक

निष्ठावान होते हैं, वे कम छुट्टियाँ लेते हैं, नियमित रूप से काम पर आते हैं, अपने सहकर्मियों के साथ उनके झगड़े कम होते हैं, वे नौकरियाँ जल्दी नहीं छोड़ते और अपने ग्राहकों को ज़्यादा संतुष्ट कर पाते हैं।

इसलिए इस बात का कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि ख़ुश रहने से ज़बर्दस्त व्यक्तिगत पुरस्कार मिलते हैं। परंतु यह कहना बहुत आवश्यक है कि ज़्यादा ख़ुशी विकसित करने से स्वयं के साथ अपने परिवार, समुदाय और समाज को भी लाभ मिलता है। वास्तव में, यह आनंद का सरल मार्ग के मुख्य सिद्धांतों में से एक है जिसके वैज्ञानिक प्रमाण का आधार बढ़ता जा रहा है। उदाहरण के लिए, हाल के एक अचंभित करने वाले शोध ने दर्शाया है कि ख़ुश रहना अत्यंत संक्रामक होता है जो सामाजिक ताने-बाने में वाइरस की भांति फैल जाता है। कुछ दूसरे प्रमाणों से पता लगा है कि ख़ुशी और सकारात्मक भाव पूर्वाग्रह को खत्म करने का काम करते हैं, जिससे दिमाग़ में कुछ ऐसे बदलाव आते हैं जो हमें खुद से अलग लगने वाले लोगों के प्रति नैसर्गिक झुकाव का विरोध करने से रोकते हैं जिसके फलस्वरूप, आख़िरकार हमारे और उनके बीच के अवरोध टूट जाते हैं! ख़ुश रहने के लाभकारी प्रभाव समाज के सबसे विस्तृत स्तर पर भी देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए, एक अन्य शोध से पता लगा है कि किसी राष्ट्र की जनसंख्या की ख़ुशी के औसत स्तर को बढ़ा देने से उस राष्ट्र की स्वतंत्रता और उसके लोकतंत्र में भी वृद्धि होती है!

ख़ुशी के इस आंदोलन के कारण अधिक व्यवस्थित एवं प्रत्यक्ष ढंग से ख़ुशी की तलाश कर रहे लोगों की संख्या में वृद्धि हुई है। सकारात्मक मनोविज्ञान आंदोलन के कुछ आलोचक भी हैं जिन्होंने अपने प्रयासों को व्यक्तिगत संतोष से जुड़ी आत्मलीनता और असंयमी विलासिता से अधिक किसी अन्य रूप में चित्रित नहीं किया। हालाँकि उपरोक्त प्रमाण के चलते, यह तर्क दिया जा सकता है कि अगर आपको सचमुच दूसरों के कल्याण की चिंता है और आप एक बेहतर संसार का निर्माण करना चाहते हैं तो यह आपका दायित्व है कि आप ख़ुश रहें अथवा वह करें जिससे आपको ख़ुशी मिल सके।

बौद्ध ज्ञान और आधुनिक विज्ञानः पूर्वऔर पश्चिम के बीच सेतु

पाश्चात्य जगत में बौद्ध धर्म का आगमन बीसवीं शताब्दी की
सबसे महत्त्वपूर्ण घटना हो सकती है।

- प्रभावशाली ब्रिटिश इतिहासकार आर्नोल्ड जे. टॉयन्बी

आनंद का सरल मार्ग के अन्य उद्देश्यों में से एक ख़ुशी पाने के उस तरीके को प्रस्तुत करना है

जिसमें पूर्व और पश्चिम की सर्वोत्तम बातों का मिश्रण हो तथा परंपरागत बौद्ध ज्ञान को आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के साथ जोड़ा जा सके। इस तरीके पर हाल में वार्ता करते समय, एक श्रोता ने पूछा:

"अगर वैज्ञानिकों ने ख़ुशी पर शोध किया है और अध्ययन ने यह सिद्ध कर दिया है कि किस प्रकार ख़ुश रहा जा सकता है, तो फिर हमें बौद्ध धर्म के सिद्धांतों या दलाई लामा के विचारों की क्या आवश्यकता है? क्या वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए परिणाम पर्याप्त नहीं होने चाहिए?"

अच्छे प्रश्न हैं। ख़ुशी को वैज्ञानिक तरीके से पाने के तरीके का बड़ा प्रशंसक होने के नाते मुझे लगता है, यह कहना ही बेहतर होगा कि इस वैज्ञानिक ढंग के संचालन के फलस्वरूप प्रायः अत्यंत विश्वसनीय और उपयोगी जानकारी मिल जाती है। हालाँकि, सभी वैज्ञानिक खोज परम सत्य या शाश्वत नियम नहीं होतीं। वैज्ञानिक ज्ञान एक गतिशील और जीवंत चीज़ है - और विज्ञान के सिद्धांतों में नए आँकड़ों के आधार पर हमेशा परिष्कार, परिवर्तन और संशोधन होता रहता है। किसी भी अध्ययन की वैधता का विश्लेषण करते समय, कुछ रीतिपरक त्रुटियों तथा प्रयोगात्मक संरचना एवं सांख्यिकी विश्लेषण आदि में चूक होने की संभावना बनी रहती है। यह भी ध्यान रखना होता है कि कितने लोगों पर अध्ययन किया गया और क्या उस अध्ययन को दोहराया गया था। इस बात को ध्यान में रखते हुए, यह मानना ज़रूरी है कि मानवीय ख़ुशी का विज्ञान अब भी शैशवावस्था में है। जहाँ हमने काफ़ी कुछ सीख लिया है, वहीं अभी ऐसा बहुत कुछ है जो हम नहीं जानते।

मुख्य प्रश्न यह है: क्या ख़ुशी के वैज्ञानिक अन्वेषण में बौद्ध धर्म अपना कोई योगदान दे सकता है?

इस प्रश्न पर विचार करते समय यह समझना ज़रूरी है कि बौद्ध धर्म, परंपरागत रूप से, विश्वास-आधारित प्रणाली नहीं है। वास्तव में, जब बुद्ध ने पहली बार पढ़ाना आरंभ किया तो उन्होंने अपने शिष्यों को यह कहा कि वे उनकी बातों को अंधविश्वास के कारण यूँ ही स्वीकार न कर लें, अपितु उनके सिद्धांतों की वैधता की जाँच करें तथा उनके तरीकों को स्वयं अपना कर देखें। अपने अनुभव के आधार पर जाँचना, सत्य के प्रति अटल निष्ठा होना तथा सच्चाई को जानने के लिए पूर्ण समर्पण होना बौद्ध धर्म और विज्ञान में प्रमुख समानताएँ हैं। वास्तव में, दलाई लामा ने इन सिद्धांतों के प्रति पूर्ण निष्ठा दर्शाते हुए कहा है, "यदि विज्ञान निर्णायक ढंग से यह सिद्ध कर दे कि बौद्ध ग्रंथों या मूलभूत मान्यताओं के कुछ अंश ग़लत हैं तो बौद्ध धर्म के उस ग्रंथ या मान्यता को बदलना होगा।" विश्व के किसी अन्य धर्म या आध्यात्मिक गुरु से इस तरह से हैरान कर देने वाले वक्तव्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती!

पिछले 2500 वर्षों से, बौद्ध धर्म के लोग "मस्तिष्क को प्रशिक्षित" करने और अपनी आंतरिक शक्तियों को विकसित करने की तकनीक का अभ्यास कर रहे हैं। इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि दो सहस्राब्दियों के बाद प्रभावहीन तकनीकों और पद्धतियों को धीरे-धीरे त्याग दिया गया होगा और केवल प्रभावकारी एवं विश्वसनीय तरीके

ही बच पाए होंगे। इसलिए, यह मान लेना उचित होगा कि बौद्ध धर्म के पास ख़ुशी को समझने और उसे पाने के विषय में बताने के लिए बहुत कुछ है और हाल की कुछ घटनाओं ने दर्शाया भी है कि यही सत्य है। जब आनंद का सरल मार्ग पहली बार प्रकाशित हुई तो इस तरह के शोध उपलब्ध नहीं थे जो मानवीय ख़ुशी के बारे में दलाई लामा के मूलभूत विचारों से मेल खाते थे। मेरे लिए यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय था कि उस समय से लेकर ख़ुशी पर शोध का मानो विस्फोट-सा हुआ है और उससे भी ज़्यादा प्रसन्नता यह जानकर हुई कि वैज्ञानिक प्रमाणों ने इस पुस्तक में प्रस्तुत दलाई लामा के विचारों का लगातार समर्थन किया है। इसे दर्शाने वाला एक उदाहरण ख़ुशी एवं करुणा पर हुआ शोध है जिस पर आगे चर्चा की गई है।

एक अन्य शानदार प्रमाण मेडिसन में विस्कॉनसिन विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित न्यूरो-विज्ञानी डॉ. रिचर्ड डेविडसन द्वारा किए गए अग्रणी शोध पर आधारित है। आधुनिक तकनीक के प्रयोग से डॉ. डेविडसन और उनके सहयोगियों ने मस्तिष्क के बाएँ पुरोमुखीय आवरण में एक विशिष्ट भाग का पता लगाया जो ख़ुश रहने की अवस्था से संबंध रखता है। उसके बाद उन्होंने साधारण अमेरिकी लोगों के एक बड़े समूह के बीच इस “प्रसन्नता” भाग में होने वाली गतिविधि के औसत स्तर को मापा। बाद में, उन्होंने अपनी प्रयोगशाला में कुछ तिब्बती बौद्ध भिक्षुओं को आमांत्रित किया और यही अध्ययन उनके साथ दोहराया। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भिक्षुओं के मस्तिष्क के उस ख़ुश वाले भाग में गतिविधि का स्तर अब तक का सर्वाधिक था और वह अंतर दूसरों से इतना ज़्यादा था कि वह चार्ट के आँकड़ों से एकदम परे दिखाई दे रहा था! निश्चित ही, यह किसी विशेष बात का प्रमाण नहीं था किंतु इसके बावजूद इस तरह के परिणाम उन बौद्ध पद्धतियों की क्षमता की ओर अवश्य संकेत करते हैं जिनसे व्यक्तिगत ख़ुशी पाने के प्रभावशाली तरीकों को खोजा जा सकता है।

दया, करुणा और ख़ुशी की तलाश

आनंद का सरल मार्ग में मानवीय ख़ुशी के नवीन विज्ञान के प्रति महत्त्वपूर्ण योगदान देने की सर्वाधिक क्षमता के साथ-साथ यदि कोई मूलभूत सिद्धांत अंतर्निहित है तो वह यह है:

व्यक्ति की निजी ख़ुशी और दया, करुणा और दूसरों के प्रति सेवा की भावना के बीच एक जटिल संबंध होता है। यह दो तरफ़ा मार्ग है: अधिक ख़ुशी से ज़्यादा करुणा पैदा होती है और अधिक करुणा ज़्यादा ख़ुशी को जन्म देती है।

दूसरे शब्दों में, अध्ययन से पता लगता है कि न सिर्फ़ ज़्यादा ख़ुश रहने वाले लोग अधिक दयालु व दूसरों के प्रति अधिक सहायक होते हैं, अपितु अधिक दया व करुणा विकसित करने से व्यक्ति को अधिक ख़ुशी भी प्राप्त होती है।

यह समझ पाना बहुत सरल है कि यदि लोग इन सिद्धांतों को व्यापकस्तर पर अपनाएँ

तो इन सिद्धांतों का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हालाँकि इस बात की संभावना बहुत कम है कि पश्चिम के अधिकतर लोग "धर्मांतरण" द्वारा बौद्ध धर्म को अपने प्रमुख आध्यात्मिक मार्ग के रूप में अपनाएँगे, इसलिए यदि पाश्चात्य समाज इन सिद्धांतों को व्यापक तौर पर अपनाना चाहता है तो इन्हें धर्मनिरपेक्ष संदर्भ में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। इसका सामान्य तौर पर अर्थ यह है कि इन सिद्धांतों की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जाँच की जाए। इसलिए, आगामी पृष्ठों में आपको इस बात के प्रयोगात्मक प्रमाण मिलेंगे जो यह दर्शाते हैं कि ख़ुश रहने वाले लोग अधिक दयालु व करुणामय होते हैं। हालाँकि, जिस समय मैं यह पुस्तक लिख रहा था, मुझे इसके विपरीत सिद्धांत वाला कोई शोध नहीं मिला, अर्थात् यह कि अधिक करुणा विकसित करने से अधिक ख़ुशी मिलती है - जो दलाई लामा का सबसे प्यारा मत है। परंतु आज, इस बात के प्रमाण मौजूद हैं जो यह दर्शाते हैं कि दया व करुणा का अभ्यास व्यक्तिगत ख़ुशी में वृद्धि का एक शक्तिशाली ढंग है।

मेरे एक पसंदीदा प्रयोग के अंतर्गत, डॉ. डेविडसन करुणा के प्रभाव को जानने के उद्देश्य से एक फ्रांसीसी तिब्बती बौद्ध भिक्षु को अपनी प्रयोगशाला में लेकर आए। वह भिक्षु अत्यंत प्रशिक्षित व कुशल था जिसने हिमालय में रहकर अनेक वर्ष ध्यान द्वारा करुणा का अभ्यास किया था (और जिसने करुणामय जीवन भी जिया तथा उस क्षेत्र में धर्मार्थ गतिविधियों के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था)। डेविडसन ने आराम की अवस्था में उस भिक्षु के मस्तिष्क के न्यूनतम स्तर को जानने के लिए उसके मस्तिष्क की गतिविधि को देखना आरंभ किया। उसके बाद डेविडसन ने उसे करुणा-संबंधी गहन बौद्ध ध्यान करने के लिए कहा। उसके परिणाम से पता लगा कि करुणा पर ध्यान लगाने के दौरान, उसके मस्तिष्क के पुरोमुखीय भाग में नाटकीय ढंग से बाईं ओर हलचल होने लगी जिससे उसके मस्तिष्क का "प्रसन्नता भाग" प्रकाशित होने लगा। डेविडसन ने यह निष्कर्ष निकाला: "दूसरों के कल्याण-संबंधी विचार आने मात्र से ही व्यक्ति के भीतर अपने कल्याण का भाव पैदा होने लगता है।" निजी प्रसन्नता और करुणा के बीच संबंध का इससे अधिक निर्णायक प्रमाण क्या हो सकता है?

प्रयोगशाला से बाहर "यथार्थ जीवन" में, एक अन्य अध्ययन के दौरान रिवरसाइड के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में डॉ. जॉन्या ल्युबोर्मस्की ने कुछ लोगों के एक समूह को सप्ताह में एक दिन चुनने के लिए कहा जिसमें उन्हें बिना कोई योजना बनाए पाँच "दया से भरे कार्य" करने थे। छह सप्ताह के बाद, अध्ययन के समय उन लोगों ने ख़ुशी और अपने जीवन में संतुष्टि के कुल स्तर में काफ़ी वृद्धि अनुभव की।

आनंद का सरल मार्ग का भविष्य

मेरे लिए इस पुस्तक की सफलता का सबसे बढ़िया पक्ष वे शानदार और भावुक पत्र हैं जो

हमें पाठकों से मिले। इनमें उन्होंने बताया कि किस तरह दलाई लामा के शब्दों ने उनकी सहायता की है और कैसे आनंद का सरल मार्ग का उनके जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इनमें से कुछ पत्रों में पाठकों ने कुछ उन मुद्दों को उठाते हुए इस पुस्तक के अगले भाग में अपनी रुचि व्यक्त की है जो इसमें शामिल नहीं हो पाए थे। यह जानने के बाद कि पहली पुस्तक किस तरह कुछ लोगों के लिए सहायक सिद्ध हुई, दलाई लामा इसके अगले भाग पर मिलकर काम करने के लिए सहमत हो गए। इस तरह मैंने पाठकों के अनुरोध पर, एक विषय-सूची तैयार की। हमें जल्दी ही यह एहसास हो गया कि विषय इतने सारे थे कि उन्हें एक खंड में सम्मिलित करना संभव नहीं था, इसलिए हमने उन विषयों को कई खंडों की श्रंखला में बाँट लिया। इसके बाद हमारी पहली पुस्तक आर्ट ऑफ़ हैपीनेस एट वर्क 2003 में प्रकाशित हुई। पहले खंड की तरह इसे भी बहुत पसंद किया गया और यह भी बेस्टसेलर बन गई - और इससे भी ज़रूरी बात यह थी कि पाठकों से मिली प्रतिक्रिया से पता लगा कि उस पुस्तक से उन्हें अपने कार्यक्षेत्र, यानि हमारे जागृत समय के अधिकांश भाग के दौरान, ख़ुश रहने में व्यावहारिक स्तर पर काफ़ी मदद मिली।

भीतरी उत्थान के विषय पर केंद्रित पहले दो खंड व्यक्तिगत स्तर के लिए तैयार किए गए थे। हालाँकि, हमने पाया कि व्यक्ति ख़ालीपन में नहीं रह सकता - हम लोग एक समुदाय में रहते हुए, समाज और संसार के साथ बातचीत करते हैं। हमारी दुनिया में बहुत-सी समस्याएँ हैं: हिंसा, आतंकवाद, युद्ध, पूर्वाग्रह, घृणा और ग़रीबी - यह सूची बहुत लंबी है। इसलिए यह प्रश्न उठा: हम ऐसे व्यग्र संसार में रहते हुए भी ख़ुश कैसे रह सकते हैं? एक अकेला व्यक्ति इन बृहद् समस्याओं से निपटने के लिए क्या कर सकता है? हमने इस श्रंखला के अगले खंड आर्ट ऑफ़ हैपीनेस इन ट्रबल्ड वर्ल्ड में इन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया है।

ऐसा लगता है कि आनंद का सरल मार्ग आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी एक दशक पूर्व थी। बीच के सालों में हमने मानवीय ख़ुशी के विज्ञान में कुछ नाटकीय बदलाव देखे हैं। जैसे-जैसे शोध कार्य में वृद्धि हो रही है, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि बौद्ध सिद्धांत अनेक प्रकार से पाश्चात्य विज्ञान के साथ एकाकार हो रहे हैं। परंतु आगामी पृष्ठों में, ख़ुशी पाने के तरीकों को चाहे पारंपरिक बौद्ध ज्ञान के चश्मे से देखा जाए या फिर आधुनिक वैज्ञानिक शोध के दृष्टिकोण से - इसका उद्देश्य एक ही है: हमारी यह उम्मीद है कि आप इस पुस्तक में दिए विचारों पर अपने जीवन में अमल कर सकें तथा कष्ट व विषमताओं से पार जाने का तरीका खोज सकें और सच्ची एवं स्थायी ख़ुशी से परिपूर्ण जीवन जी सकें।

लेखक की ओर से

इस पुस्तक में दलाई लामा के साथ विस्तार से किए गए संवाद का उल्लेख किया गया है। दलाई लामा के साथ ऐरिज़ोना और भारत में हुई निजी बैठकें इस पुस्तक का आधार है। ये बैठकें ऐसी परियोजना पर कार्य करने के उद्देश्य से हुई थीं जिसके द्वारा ख़ुशहाल जीवन जीने के संबंध में उनके विचारों और एक पाश्चात्य मनोविज्ञानी के दृष्टिकोण से मेरे विचार एवं टिप्पणियों को प्रस्तुत किया जा सके। दलाई लामा ने उदार होकर मुझे पुस्तक का वह प्रारूप चुनने की छूट दे दी जिसके द्वारा उनके विचारों को सर्वाधिक प्रभावी ढंग से लोगों तक पहुँचाया जा सकता था। मुझे लगा कि इन पृष्ठों में दिया गया विवरणात्मक प्रारूप पढ़ने में सबसे सरल रहेगा और साथ ही इस बात का बोध भी करवा पाएगा कि दलाई लामा अपने विचारों को अपने जीवन में कैसे अपनाते हैं। मैंने दलाई लामा के अनुमोदन से इस पुस्तक को विषय-वस्तु के अनुसार व्यवस्थित किया है और इसलिए, मैंने कई बार अनेक अलग-अलग वार्ताओं से ली गई सामग्री को मिलाया और जोड़ा है। मैंने दलाई लामा की सहमति से ही, स्पष्टता एवं व्यापकता के लिए आवश्यकतानुसार, ऐरिज़ोना में उनकी सार्वजनिक वार्ताओं से भी कुछ अंश लिए हैं। दलाई लामा के दुभाषिए, डॉ. थ्यूपटेन जिन्पा ने अंत में पांडुलिपि की समीक्षा कर यह सुनिश्चित किया कि संपादकीय प्रक्रिया के दौरान दलाई लामा के विचारों में भूल से कोई विकार उत्पन्न न हो गया हो।

जिन विचारों पर चर्चा होनी है, उन्हें दर्शाने के लिए अनेक वृत्त और निजी किस्से प्रस्तुत किए गए हैं। गोपनीयता बनाए रखने तथा निजता को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से, मैंने प्रत्येक उदाहरण में नाम बदल दिए हैं और विवरण एवं अन्य ख़ास विशिष्टताएँ बदल दी हैं ताकि किसी व्यक्ति विशेष की पहचान को सुरक्षित रखा जा सके।

- हावर्ड सी. कट्लर, एमडी

भूमिका

मैं ने दलाई लामा को ऐरिज़ोना विश्वविद्यालय में छह हज़ार श्रोताओं के सामने अपने अभिभाषण से कुछ क्षण पूर्व एक खाली बास्केटबॉल लॉकर कक्ष में अकेले देखा। वह आराम से शांतिपूर्वक चाय पी रहे थे। "परम पावन, यदि आप तैयार हों..."

वह जल्दी से उठे और बिना हिचकिचाए उस कमरे से बाहर निकलकर स्थानीय पत्रकारों, फ़ोटोग्राफ़रों, सुरक्षाकर्मियों तथा विद्यार्थियों एवं अन्वेषकों, जिज्ञासुओं व संशयी लोगों से खचाखच भरे नेपथ्य में प्रवेश कर गए। वह खुलकर मुस्कराते और लोगों का अभिनंदन करते हुए भीड़ के बीच से चलते गए। अंत में, एक पर्दे के बीच से वह मंच पर पहुँचे, उन्होंने झुककर हाथ जोड़े और फिर मुस्करा दिए। तालियों की गूँज से उनका स्वागत किया गया। उनके अनुरोध पर, सभागृह के प्रकाश को मंद नहीं किया गया जिससे वह अपने श्रोताओं को देख सकें और वह काफ़ी देर वहीं खड़े रहकर आत्मीयता व सद्भाव के साथ शांतिपूर्वक अपने श्रोताओं को देखते रहे। जिन्होंने इससे पहले दलाई लामा को कभी नहीं देखा था, उन्हें भिक्षु के भूरे एवं केसरिया वस्त्रों ने आकर्षित किया होगा, हालाँकि जब उन्होंने बैठकर अपना अभिभाषण आरंभ किया तो अपने श्रोताओं के साथ संबंध स्थापित करने की उनकी शानदार क्षमता तुरंत उजागर हो गई।

"मुझे लगता है कि मैं आपमें से अधिकतर से पहली बार मिल रहा हूँ। हालाँकि, मेरे लिए पुराने या नए मित्रों में ज़्यादा अंतर नहीं है क्योंकि मैं हमेशा यह मानता हूँ कि हम सब एक समान हैं। हम सब मनुष्य हैं। निश्चय ही, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि या जीवन-शैली में भिन्नता हो सकती है, हमारी मान्यताएँ अलग हो सकती हैं, या हम भिन्न वर्ण के हो सकते हैं किंतु हम सब मनुष्य हैं और हमारे पास मानव शरीर और मानव मस्तिष्क है। हमारी आकृति एक-सी है और हमारा दिमाग़ और हमारा भावनात्मक स्वभाव भी एक-सा है। मैं जब भी लोगों से मिलता हूँ तो मुझे हमेशा ऐसा महसूस होता है कि मैं अपने ही जैसे अन्य मनुष्य से मिल रहा

हूँ। मैं उस स्तर पर लोगों के साथ ज़्यादा आसानी से बातचीत कर पाता हूँ। यदि हम विशिष्ट लक्षणों पर ज़ोर दें, जैसे मैं तिब्बती हूँ या मैं बौद्ध हूँ तब अंतर पड़ जाता है। परंतु वह सब बातें गौण हैं। अगर हम इस अंतर पर ध्यान न दें तो मुझे लगता है कि हम ज़्यादा आसानी से बातचीत, विचारों का आदान-प्रदान तथा अनुभवों को साझा कर सकते हैं।"

इसी के साथ, 1993 में दलाई लामा ने ऐरिज़ोना में अपने एक सप्ताह की सार्वजनिक श्रंखला को आरंभ किया। उनकी ऐरिज़ोना की यात्रा की योजना एक दशक पूर्व बन गई थी। उस समय, जब मैं पारंपरिक तिब्बती औषधियों के अध्ययन हेतु एक लघु शोध अनुदान के सिलसिले में भारत में धर्मशाला की यात्रा पर आया था, तब हमारी पहली बार भेंट हुई थी। धर्मशाला हिमालय पर्वत की तलहटी में एक पहाड़ी के किनारे पर बसा हुआ एक बहुत सुंदर और शांत शहर है। यह लगभग चालीस वर्षों पहले से तिब्बत की निर्वासित सरकार का निवास-स्थान रहा है, जबसे चीनी सेना के नृशंस आक्रमण के बाद दलाई लामा ने एक लाख तिब्बतियों के साथ तिब्बत छोड़ा था। धर्मशाला में अपने निवास के दौरान मुझे दलाई लामा के परिवार के अनेक सदस्यों से मिलने का अवसर मिला और उन्हीं के माध्यम से दलाई लामा के साथ मेरी पहली मुलाकात तय की गई थी।

1993 के अपने सार्वजनिक भाषण में दलाई लामा ने एक मनुष्य के दूसरे के साथ संबंध होने के महत्त्व के विषय में बात की और यही वह गुण था जो 1982 में उनके घर पर हमारे पहले संवाद की सबसे असाधारण विशेषता बनी। उनके अंदर सामने वाले व्यक्ति को पूरी तरह सहज कर देने और दूसरे मनुष्य के साथ सरल व प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करने की असाधारण क्षमता थी। हमारी पहली भेंट लगभग पैंतालीस मिनट चली और बहुत-से दूसरे लोगों की तरह, मैं भी उस भेंट के बाद बहुत उत्साहित होकर लौटा और मेरे मन में यह छवि बन गई कि मेरी भेंट सचमुच असाधारण व्यक्ति से हुई थी।

आगामी कुछ वर्षों में जैसे-जैसे दलाई लामा के साथ मेरा संपर्क बढ़ा, मैं उनके अनेक गुणों का प्रशंसक बन गया। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण किंतु छद्म-रहित है। वह दयालु हैं लेकिन अत्यधिक भावुक नहीं हैं। उनका स्वभाव अत्यंत विनोदी है किंतु उसमें ओछापन नहीं है तथा जैसा कि अन्य कई लोगों ने पाया है, उनमें दूसरों को विस्मित करने की अपेक्षा प्रेरित करने की क्षमता है।

समय के साथ मुझे विश्वास हो गया कि दलाई लामा ने पूर्ण परितोष और शांति के भाव के साथ जीना सीख लिया था जो मुझे दूसरों में देखने को नहीं मिला। मैंने उन सिद्धांतों को समझने का संकल्प ले लिया था जिनके द्वारा उन्होंने यह सब पाया था। यद्यपि वह बौद्ध भिक्षु हैं जिनके पास जीवनभर का बौद्ध प्रशिक्षण व अध्ययन है, मैं यह सोच रहा था कि क्या कोई गैर-बौद्ध भी उनकी मान्यताओं या पद्धतियों को समझकर उनका उपयोग कर सकता है - ऐसी पद्धतियाँ जिन्हें अपने जीवन में प्रत्यक्ष रूप से अपनाकर हम अधिक ख़ुश, अधिक शक्तिशाली और शायद कुछ कम भयभीत हो सकते हैं।

आख़िरकार मुझे ऐरिज़ोना में उनके प्रवास के दौरान प्रतिदिन उनसे मिलकर तथा बाद में भारत में उनके निवास पर इन चर्चाओं पर अधिक विस्तार से संवाद द्वारा उनके

विचारों को ज़्यादा गहराई से जानने का अवसर मिला। उनसे बातचीत के दौरान, मैंने जल्दी ही जान लिया कि हमारे सामने कुछ बाधाएँ थीं क्योंकि हम अपने भिन्न दृष्टिकोण पर सहमति बनाने के लिए संघर्ष कर रहे थे: उनका एक बौद्ध भिक्षु का रूप और मेरा पाश्चात्य मनोविज्ञानी का रूप। उदाहरण के लिए, मैंने अपनी आरंभिक वार्ता की शुरुआत उनके सामने कुछ सामान्य मानवीय समस्याओं से की और उन्हें अनेक विस्तृत वृत्त अध्ययन की मदद से समझाने का प्रयास किया। मैंने उन्हें एक ऐसी महिला के बारे में विस्तार से बताया जो अत्यधिक नकारात्मक प्रभाव होने के बावजूद अपने साथ निरंतर आत्मघाती व्यवहार करती थी, और मैंने उनसे पूछा कि वह उसके व्यवहार की विवेचना कैसे करते हैं और इस संबंध में क्या सलाह दे सकते हैं। मैं बहुत हैरान हुआ जब बहुत लंबे विराम और चिंतन के बाद, उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा, “मुझे नहीं पता,” और फिर कंधे उचकाकर नेकी-भरे ढंग से हँसने लगे।

किसी निश्चित उत्तर न मिल पाने से मेरे आश्चर्य और हताशा के भाव को देखकर, दलाई लामा बोले, “कभी-कभी यह समझना बहुत कठिन होता है कि लोग जो करते हैं, वैसा क्यों करते हैं... आप प्रायः देखेंगे कि इसका कोई सरल उत्तर नहीं होता। यदि हम लोगों के व्यक्तिगत जीवन को गहराई से देखें, चूंकि मनुष्य का दिमाग़ बहुत जटिल होता है, यह समझना बहुत मुश्किल है कि उसके अंदर क्या चल रहा है और वह क्या कर रहा है।”

मुझे लगा वह बात को टालना चाहते थे। “परंतु एक मनोविज्ञानी होने के नाते, यह पता लगाना मेरा काम है कि लोग जो करते हैं, वैसा क्यों करते हैं...”

एक बार फिर, वह असामान्य ढंग से हँस पड़े - हास्य और सद्भाव से भरी, निश्छल और बेपरवाह हँसी जो गहरी गूँज के साथ शुरू होकर अनेक सप्तकों को सहज पार करती हुई आनंद के उच्च स्तर तक जा पहुँची।

“मुझे लगता है कि यह जानने का प्रयास करना कि अरबों लोगों के मस्तिष्क कैसे काम करते हैं,” वह हँसते हुए बोले, “यह असंभव कार्य है! बौद्ध दृष्टिकोण से किसी घटना या परिस्थिति के पीछे अनेक कारण होते हैं... ये कारण इतने अधिक हो सकते हैं कि कभी-कभी, कम-से-कम पारंपरिक रूप से, आपको पूरी तरह यह पता नहीं लगेगा कि क्या हो रहा है।”

मुझे असहज होता देख, वह बोले, “किसी की समस्या का कारण जानने के लिए, ऐसा लगता है कि पाश्चात्य सोच कुछ मामलों में बौद्ध विचारों से भिन्न है। सभी पाश्चात्य विश्लेषण के तरीकों के पीछे बहुत मज़बूत तर्क की भावना होती है - यह धारणा कि हर चीज़ का कारण मिल सकता है। उसके ऊपर, किसी आधार पर बने कुछ अवरोध होते हैं जिन्हें यूँ ही मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए, मैंने हाल में एक विश्व चिकित्सा महाविद्यालय के कुछ डॉक्टरों से भेंट की। वे लोग मस्तिष्क के बारे में बात कर रहे थे और उन्होंने कहा कि भाव और विचार मस्तिष्क में होने वाले रासायनिक प्रतिक्रियाओं तथा बदलावों के कारण पैदा होते हैं। इसलिए मैंने यह प्रश्न उठाया: क्या इसका विपरीत क्रम संभव है जहाँ विचार मस्तिष्क में रासायनिक प्रतिक्रिया पैदा कर सकें? हालाँकि, जो बात मुझे सबसे रोचक लगी

वह एक वैज्ञानिक द्वारा दिया गया उत्तर था। उसने कहा, 'हम इस मत से आरंभ करते हैं कि सभी विचार मस्तिष्क में होने वाली रासायनिक प्रक्रिया का परिणाम अथवा प्रकार्य होते हैं।' इसलिए यह सिर्फ़ एक प्रकार की जड़ता है, स्वयं की सोच को चुनौती न देने का निर्णय है।"

वह एक पल के लिए चुप हो गए और फिर कहने लगे: "मेरे विचार से आधुनिक पाश्चात्य समाज में, एक मज़बूत सांस्कृतिक अनुकूलन होता है जो विज्ञान पर आधारित है। परंतु कुछ मामलों में, पाश्चात्य विज्ञान द्वारा तैयार मूलभूत धारणाएँ और मानक कुछ विशिष्ट वास्तविकताओं से निपटने की आपकी क्षमता को सीमित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, आप इस धारणा से बँधे हुए हैं कि हर चीज़ को एक जीवनकाल के ढाँचे में समझा जा सकता है और आप इसमें यह मत भी शामिल कर लेते हैं कि हर चीज़ को समझा जा सकता है तथा हर बात का कारण होता है। परंतु जब आपका सामना ऐसी घटनाओं से होता है जिनका कारण आप नहीं समझ पाते, तब थोड़ा संघर्ष उत्पन्न होता है; यह मानसिक पीड़ा जैसा ही है।"

हालाँकि उनकी बातों में मुझे सच्चाई महसूस हो रही थी, फिर भी शुरू में उसे स्वीकार करना मेरे लिए मुश्किल हो रहा था। "दरअसल, पाश्चात्य मनोविज्ञान में जब हमें ऐसे मानवीय व्यवहार देखने को मिलते हैं जिनको सतही तौर पर समझ पाना कठिन होता है, तो कुछ ऐसे तरीके हैं जिनके द्वारा हम यह जान सकते हैं कि वास्तव में क्या हो रहा है। उदाहरण के लिए, मस्तिष्क के अचेतन और अवचेतन भाग की अवधारणा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हमें लगता है कि कभी-कभी व्यवहार मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का परिणाम हो सकता है जिनके बारे में हम खुद भी नहीं जानते - जैसे: कोई व्यक्ति अपने किसी भीतर दबे हुए डर से बचने के लिए किसी ख़ास ढंग से व्यवहार करता है। कई तरह के व्यवहार, हमारे न जानते हुए भी, चेतना की सतह पर उस भय को नहीं आने देने की इच्छा से प्रेरित हो सकते हैं ताकि हमें उससे संबंधित असहजता का बोध न हो।"

एक पल के लिए चिंतन करने के बाद दलाई लामा ने कहा, "बौद्ध धर्म में कुछ अनुभवों की प्रवृत्ति और छाप रह जाने की धारणा है, जो पाश्चात्य मनोविज्ञान में अचेतन मन के विचार के समान है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कोई विशेष तरह की घटना आपके जीवन के आरंभिक भाग में घटी हो जिसने आपके मस्तिष्क पर बहुत गहरी छाप छोड़ी है और जो अंदर दबी रहकर बाद में आपके व्यवहार को प्रभावित कर सकती है। इसलिए, अचेतन नाम की अवधारणा मौजूद है - ऐसी छाप, जिनके बारे में व्यक्ति चेतन रूप से अवगत न हो। जो भी हो, मुझे लगता है कि बौद्ध धर्म पाश्चात्य सिद्धांतवादियों द्वारा दिए अनेक कारकों को स्वीकार कर सकता है लेकिन इससे भी ऊपर इसमें कुछ अतिरिक्त कारक भी जुड़ सकते हैं। उदाहरण के लिए, यह पूर्वजन्मों के प्रशिक्षण और छाप को शामिल कर लेगा। हालाँकि, मुझे लगता है कि व्यक्ति की समस्याओं का मूल खोजने के दौरान पाश्चात्य मनोविज्ञान में अचेतन मन की भूमिका पर ज़ोर देने की प्रवृत्ति ज़रूरत से ज़्यादा है। मेरे विचार से ऐसा पाश्चात्य मनोविज्ञान में कुछ मूलभूत अवधारणाओं के कारण होता है। जैसे: यह इस बात को स्वीकार नहीं करता कि कुछ छाप पूर्वजन्म से अगले जन्म में चली जाती हैं।

इसी के साथ एक मान्यता यह भी है कि सारा हिसाब-किताब इसी एक जन्म में पूरा होना चाहिए। जब आप यह नहीं बता पाते कि किसी विशिष्ट व्यवहार या समस्या का क्या कारण है तो हमारी प्रवृत्ति हमेशा अचेतन मन को इसका कारण बताने की होती है। यह कुछ-कुछ ऐसा है कि आपकी कोई चीज़ खो जाए और आप यह सोच लें कि वह चीज़ इसी कमरे में है। एक बार जब आप यह सोच लेते हैं तो आप अपने मानदंड भी निर्धारित कर लेते हैं; आपने उस वस्तु के इस कमरे से बाहर या किसी अन्य कमरे में होने की संभावना को समाप्त कर दिया है। इसलिए आप उस वस्तु को इसी कमरे में खोजते रहते हैं लेकिन वह आपको नहीं मिलती और फिर भी आप यही मानकर चलते हैं कि वह इसी कमरे में कहीं छिपी हुई है!"

मैंने जब इस पुस्तक की परिकल्पना तैयार की थी, तब मैंने एक परंपरागत स्वावलंबन प्रारूप सोचा था जिसमें दलाई लामा जीवन की सभी समस्याओं के स्पष्ट व सरल समाधान प्रस्तुत करेंगे। मुझे लगा कि मैं अपनी मनोविज्ञान की जानकारी का प्रयोग करके रोज़मर्रा की जीवन-शैली से संबंधित उनके विचारों को सरल निर्देशों के रूप में प्रस्तुत कर पाऊँगा। परंतु मैंने हमारी मुलाकातों की श्रृंखला के अंत में इस विचार को त्याग दिया। मैंने पाया कि उनका तरीका अधिक विस्तृत और जटिल प्रतिमानों को समाहित किए हुए तथा जीवन के सभी अर्थभेद, समृद्ध एवं पेचीदगी को समेटे हुए था।

हालाँकि, मुझे धीरे-धीरे वह एकल स्वर सुनाई देने लगा जो वह बोलते रहते थे। वह आशा का स्वर है। उनकी आशा इस मत पर आधारित है कि जहाँ सच्ची व चिरस्थायी ख़ुशी प्राप्त करना आसान नहीं है, लेकिन इसे प्राप्त किया जा सकता है। दलाई लामा के सभी तरीकों के मूल में वही धारणा है जो उनके समस्त कार्यों का आधार है: सभी मनुष्यों के मूलभूत अच्छे व भद्र स्वभाव में विश्वास, करुणा के महत्त्व में भरोसा, दया की नीति में विश्वास और सभी सजीव प्राणियों के बीच समानता का भाव।

जैसे-जैसे उनका संदेश स्पष्ट होता गया, यह साफ़ होता गया कि उनकी धारणाएँ अंधविश्वास या धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित न होकर विशुद्ध तर्क एवं प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित हैं। मानव मस्तिष्क और स्वभाव के बारे में उनकी समझ उनके जीवनभर के अध्ययन की उपज है। उनके विचारों की जड़ें ऐसी परंपरा में बसी हुई हैं जो ढाई हज़ार वर्ष पुरानी होने के बाद भी सामान्य ज्ञान तथा आधुनिक समस्याओं के परिष्कृत ज्ञान का सम्मिश्रण है। समकालीन विषयों के बारे में उनके विचार, उनके विश्व-प्रसिद्ध व्यक्तित्व का परिणाम है जिसके कारण अनेक बार विश्व यात्रा करते हुए उनका विभिन्न प्रकार के लोगों और संस्कृतियों से मिलना हुआ है और इस दौरान उन्होंने चोटी के वैज्ञानिकों तथा धार्मिक व राजनैतिक नेताओं के साथ अपने विचार साझा किए हैं। आख़िरकार मानवीय समस्याओं से निपटने हेतु ऐसा विवेकपूर्ण तरीका सामने आता है जो तुरंत आशा जगाता है एवं यथार्थवादी है।

मैंने इस किताब में मुख्यतः पश्चिम के लोगों के लिए दलाई लामा के विचार प्रस्तुत

किए हैं। मैंने प्रचुर मात्रा में उनकी सार्वजनिक शिक्षा और उनके साथ अपने निजी संवादों में से सामग्री ली है। इस दौरान मैंने बीच-बीच में से रोज़मर्रा के जीवन में तत्काल काम आ सकने वाली सामग्री पर ज़ोर देने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए दलाई लामा द्वारा तिब्बती बौद्ध धर्म के मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर की गई चर्चा के अंशों को छोड़ दिया है।

भाग 1

जीवन का उद्देश्य

अध्याय 1

ख़ुश रहने का अधिकार

"मेरा मानना है कि जीवन का एकमात्र उद्देश्य ख़ुशी तलाशना है। यह बात स्पष्ट है। किसी व्यक्ति का धर्म में विश्वास हो या न हो, कोई इस धर्म को मानता हो अथवा किसी अन्य धर्म को, हम सब जीवन में कुछ बेहतर तलाश रहे हैं। इसलिए मेरे विचार से हमारा जीवन ख़ुशी की ओर गतिमान है..."

ऐरिज़ोना में विशाल जनसभा के सामने बोले गए इन शब्दों के साथ, दलाई लामा ने अपने संदेश से दिल चुरा लिया। परंतु उनके इस दावे ने कि जीवन का उद्देश्य ख़ुशी प्राप्त करना है, मेरे दिमाग़ में एक प्रश्न पैदा कर दिया। बाद में, जब हम दोनों अकेले थे, मैंने पूछा, "क्या आप ख़ुश हैं?"

"हाँ," उन्होंने कहा और फिर एक क्षण रुककर बोले, "हाँ... बिल्कुल!" उनके स्वर में पूरी गंभीरता थी जिसने सब संदेह मिटा दिए - एक सच्चाई जो उनकी अभिव्यक्ति और उनके स्वर में झलकती थी।

"परंतु क्या हम लोगों में से अधिकतर के लिए ख़ुशी एक पर्याप्त लक्ष्य है?" मैंने पूछा। "क्या यह सचमुच संभव है?"

"हाँ। मुझे लगता है कि अपने मस्तिष्क को प्रशिक्षित करके हम यह ख़ुशी प्राप्त कर सकते हैं।"

मूलभूत मानवीय स्तर पर मैं इस बात को मान लेने के लिए बाध्य था कि ख़ुशी ऐसा लक्ष्य है जिसे प्राप्त किया जा सकता है। हालाँकि, मनोवैज्ञानिक होने के नाते मैं फ़्रायड जैसे लोगों के मत के बोझ से दबा हुआ था, "व्यक्ति की यह कहने की इच्छा होती है कि 'सृष्टि'

की योजना में यह विचार सम्मिलित नहीं है कि इंसान को 'ख़ुश' रहना चाहिए।" इस प्रकार के प्रशिक्षण के कारण मेरे व्यवसाय में अनेक लोगों ने यह उदासीन निष्कर्ष निकाल लिया कि मनुष्य अधिक से अधिक "उन्मादी दुख का साधारण ख़ुशी में रूपांतरण" को प्राप्त कर सकता है। इस दृष्टिकोण से, इस तरह का दावा कि ख़ुशी पाने का एक स्पष्ट तौर पर परिभाषित मार्ग है, एक अतिवादी विचार जैसा प्रतीत होता है। जब मैंने अपने मनोविकारी प्रशिक्षण के गुज़रे वर्षों के बारे में सोचा तो मुझे लगा कि 'ख़ुशी' शब्द का शायद ही कभी उपचारात्मक उद्देश्य के रूप में उल्लेख हुआ हो। मरीज़ की उदासी या व्यग्रता के लक्षणों पर, उसके आंतरिक द्वंद्व अथवा संबंधों की समस्याएँ सुलझाने के बारे में निश्चित तौर पर, काफ़ी चर्चा होती थी, किंतु स्पष्ट रूप से इस सबका उद्देश्य ख़ुश होना नहीं था।"

पश्चिमी जगत में, सच्ची ख़ुशी प्राप्ति की अवधारणा सदा से ही अस्पष्ट और दुरूह रही है तथा इसे कभी ठीक से समझा नहीं जा सका। यहाँ तक कि "हैप्पी (खुश)" शब्द भी आइस्लैंड के हैप्प शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है भाग्य या संयोग। ऐसा लगता है कि ख़ुशी की रहस्यमयी प्रकृति के बारे में अधिकतर लोगों का यही विचार है। जीवन के प्रसन्नता-भरे क्षणों में, ख़ुशी हमें किसी अप्रत्याशित वस्तु की तरह महसूस होती है। मेरे पश्चिमी दिमाग़ को यह कोई ऐसी चीज़ नहीं लगी जिसे सिर्फ़ "मस्तिष्क के प्रशिक्षण" द्वारा विकसित या पोषित किया जा सकता था।

जब मैंने इस पर आपत्ति जताई तो दलाई लामा ने तुरंत इस बात को समझा दिया। जब मैं 'मस्तिष्क के प्रशिक्षण' की बात करता हूँ तो इस संदर्भ में 'मस्तिष्क' से मेरा तात्पर्य सिर्फ़ मनुष्य की ज्ञान-संबंधी क्षमता अथवा बुद्धि से नहीं है, बल्कि मैं इस शब्द का प्रयोग तिब्बती शब्द सेम के संदर्भ में करता हूँ जिसका अर्थ इससे कहीं ज़्यादा व्यापक और 'मनोदशा' अथवा 'आत्मा' के निकट है। इसमें बुद्धि और भावनाओं के साथ हृदय एवं मस्तिष्क भी शामिल होता है। एक विशेष प्रकार के आंतरिक अनुशासन द्वारा हम अपने व्यवहार, अपने दृष्टिकोण तथा जीवन के प्रति अपने नज़रिए को पूरी तरह बदल सकते हैं।

"जब हम इस आंतरिक अनुशासन की बात करते हैं तो इसमें निश्चय ही अनेक बातें और अनेक पद्धतियाँ शामिल हो सकती हैं। परंतु सामान्य तौर पर, सबसे पहले व्यक्ति उन बातों की पहचान करना आरंभ करता है जिससे उसे ख़ुशी या दुख होता हैं। यह करने के बाद, व्यक्ति धीरे-धीरे कष्टदायी चीज़ों को दूर करता है और ख़ुशी देने वाली चीज़ों को विकसित करता है। यही इसका तरीका है।"

दलाई लामा यह दावा करते हैं कि उन्होंने थोड़ी व्यक्तिगत ख़ुशी प्राप्त कर ली है। ऐरिज़ोना में उनके द्वारा बिताए पूरे एक सप्ताह के दौरान मैंने अनेक बार देखा कि किस तरह यह व्यक्तिगत ख़ुशी, अत्यंत छोटी भेंट में भी, दूसरे लोगों तक पहुँचने की, लगाव और सद्भाव निर्मित करने की सहज इच्छा का रूप ले सकती है।

एक सुबह अपने सार्वजनिक भाषण के बाद दलाई लामा अपने सामान्य परिजनों के साथ बाहरी आँगन में टहलते हुए अपने होटल के कक्ष की ओर जा रहे थे। होटल की एक

महिला सफ़ाईकर्मी को लिफ़्ट के पास खड़ा देख, उन्होंने उससे पूछा, “आप रहने वाली कहाँ की हैं?” एक पल के लिए वह भूरे रंग के वस्त्रों में उस अजनबी व्यक्ति को देखकर चौंक गई और फिर उसके परिजनों की मर्यादा देखकर दुविधा में पड़ गई। फिर उसने मुस्कराकर शर्माते हुए कहा, “मेक्सिको!” उन्होंने रुककर उस लड़की के साथ कुछ देर बातें कीं और उसके चेहरे पर उत्तेजना व प्रसन्नता के भाव छोड़कर आगे चले गए। अगले दिन सुबह वही लड़की उसी समय, उसी स्थान पर एक अन्य महिला सफ़ाई कर्मचारी के साथ आ गई और फिर उन दोनों ने लिफ़्ट में चढ़ते समय दलाई लामा का अभिनंदन किया। यह भेंट क्षणिक थी किंतु वह दोनों महिलाएँ ख़ुशी से भरी अपने काम पर लौट गईं। उसके बाद प्रतिदिन, उसी समय व स्थान पर उनके साथ कुछ अन्य सफ़ाई कर्मचारी जुड़ती गईं और सप्ताह के अंत में वहाँ स्लेटी-और-सफ़ेद पोशाक पहने सफ़ाई करने वाली दर्जनों लड़कियाँ लिफ़्ट तक जाने वाले मार्ग पर पंक्ति बनाकर दलाई लामा के स्वागत के लिए खड़ी थीं।

हमारे जीवन के दिन गिने-चुने हैं। इस क्षण में, कई हज़ार इस संसार में पैदा हुए हैं जिनमें से बहुत-से कुछ दिन या सप्ताह ही जीवित रहेंगे, और उसके बाद दुर्भाग्य से, बीमारी अथवा किसी अन्य दुर्घटना का शिकार होकर मर जाएँगे। कुछ लोग एक शताब्दी, या शायद उससे भी थोड़ा ज़्यादा जिएँगे तथा जीवन में मिले हर सुख-दुख को भोग सकेंगे: सफलता, निराशा, हर्ष, घृणा और प्रेम। हम नहीं जानते। हम एक दिन जिएँ अथवा एक शताब्दी, एक मूल प्रश्न हमेशा रहता है: हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? वह क्या चीज़ है जो हमारे जीवन को सार्थक बनाती है?

हमारे जीवन का उद्देश्य ख़ुशी प्राप्त करना है। यह सामान्य ज्ञान जैसा लगता है तथा अरस्तू से लेकर विलियम जेम्स जैसे पाश्चात्य दार्शनिकों ने इस विचार का समर्थन भी किया है। परंतु क्या व्यक्तिगत प्रसन्नता तलाशना आत्म-केंद्रित होना या आसक्त होने जैसा नहीं है? ज़रूरी नहीं है। वास्तव में, एक के बाद एक होने वाले सर्वेक्षण बताते हैं कि दुखी रहने वाले लोग अधिक आत्म-केंद्रित होते हैं और सामाजिक तौर पर गैर-मिलनसार, विचारमग्न, यहाँ तक कि प्रतिरोधी होते हैं। इसके विपरीत, ख़ुश रहने वाले लोग अधिक मिलनसार, मृदु और रचनात्मक होते हैं तथा दुखी लोगों की तुलना में जीवन की दैनिक समस्याओं को ज़्यादा आसानी से सुलझा लेते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ख़ुश रहने वाले लोग दुखी रहने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक स्नेही एवं क्षमाशील होते हैं।

शोधकर्त्ताओं ने कई तरह के रोचक प्रयोग द्वारा यह दर्शाया है कि ख़ुश रहने वाले लोगों में खुलापन, दूसरों से बात करने तथा उनकी मदद करने की इच्छा जैसे गुण होते हैं। उदाहरण के लिए, उन्होंने फ़ोन बूथ में किसी पात्र को अप्रत्याशित रूप से पैसे मिलने का प्रबंध करवाकर ख़ुशी का माहौल तैयार कर दिया। इसके बाद एक प्रयोगकर्त्ता अजनबी बनकर वहाँ से गुज़रा और उसने “भूल से” कागज़ों का एक बंडल गिरा दिया। अन्वेषक यह देखना चाहते थे कि क्या वह पात्र रुककर उस अजनबी की मदद करता है। एक अन्य स्थिति में, कॉमेडी एल्बम सुनाकर एक पात्र का उत्साहवर्द्धन किया गया और उसके बाद एक ऐसे

व्यक्ति को पात्र के पास सहायता माँगने भेजा गया जिसे पैसों की ज़रूरत थी (इसमें भी प्रयोगकर्त्ता की मिलीभगत थी)। अन्वेषकों ने पाया कि जो कर्त्ता ख़ुश थे उनके भीतर सहायता करने की इच्छा, किसी दूसरे “नियंत्रण समूह” के लोगों से अधिक थी, जिन्हें यही अवसर दिया गया था, किंतु उनके मूड को पहले से प्रोत्साहित नहीं किया गया था।

एक ओर जहाँ इस तरह के प्रयोग इस अवधारणा का खंडन करते हैं कि निजी ख़ुशी की तलाश और उसकी प्राप्ति से स्वार्थ एवं आत्मलीनता पैदा होती है, हम सभी अपने दैनिक जीवन की प्रयोगशाला में अपने-अपने प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, मान लीजिए हम ट्रैफ़िक जाम में फँस गए हैं। लगभग बीस मिनट बाद, ट्रैफ़िक दोबारा रेंगते हुए आगे बढ़ने लगा। हमने देखा कि किसी दूसरी गाड़ी में एक महिला हमारी लेन में घुसकर हमसे आगे निकलने का संकेत दे रही है। अगर हमारा मूड अच्छा है तो हम अपनी गाड़ी को धीमा करके उसे आगे निकल जाने देते हैं। अगर हम परेशान हैं तो हम तेज़ी से आगे आकर उसका रास्ता रोक देंगे। “मैं यहाँ फँसा हुआ इतनी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूँ इसे आगे क्यों जाने दूँ?”

हम अपने उसी मूल सिद्धांत से शुरू करते हैं कि जीवन का लक्ष्य ख़ुशी पाना है। ख़ुशी की परिकल्पना ही वह असली लक्ष्य है जिसके कारण हम उसे पाने के लिए सकारात्मक कदम उठाते हैं। जैसे-जैसे हम ख़ुशनुमा जीवन के कारक तत्त्वों को पहचानना आरंभ करते हैं, हम सीखेंगे कि ख़ुशी की तलाश किस तरह न सिर्फ़ व्यक्ति को बल्कि उसके परिवार और पूरे समाज को अनेक लाभ प्रदान करती है।

अध्याय 2

ख़ुशी के स्रोत

दो साल पहले, मेरी एक मित्र को अप्रत्याशित लाभ हुआ। इससे अठारह महीने पहले, उसे नर्स की नौकरी छोड़कर अपने दो अन्य दोस्तों के साथ काम करना पड़ा जो एक छोटी-सी स्वास्थ्य-कल्याण कंपनी शुरू कर रहे थे। उस कंपनी ने ज़बर्दस्त मुनाफ़ा कमाया और मात्र अठारह महीने के भीतर उसे एक बड़े व्यापारिक समूह ने बड़ी धनराशि देकर खरीद लिया। उस कंपनी के भूतल पर कार्य मिलने के साथ, मेरी मित्र के पास इतने अच्छे स्टॉक विकल्प उपलब्ध थे कि उसने बत्तीस वर्ष की आयु में नौकरी छोड़ दी। कुछ ही समय पहले मेरी उससे भेंट हुई तो मैंने उससे पूछा कि नौकरी छोड़ने के बाद उसका समय कैसा बीत रहा है। वह बोली, "यात्रा करना और अपने मन की चीज़ें करने में बहुत आनंद आता है। परंतु," उसने आगे कहा, "यह बहुत अजीब है; इतना पैसा कमाने के बाद का उत्साह समाप्त हो जाने के बाद, चीज़ें सामान्य होने लगीं। मेरा मतलब है कि फिर चीज़ें बदल गईं - मैंने नया घर और कई और चीज़ें खरीदीं - लेकिन कुल मिलाकर मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं पहले से अब ज़्यादा ख़ुश हूँ।"

जिस समय मेरी मित्र अपने अप्रत्याशित लाभ का आनंद ले रही थीं, ठीक उसी समय मेरे एक अन्य मित्र को पता लगा कि वह एचआईवी से पीड़ित था। हमने इस विषय में बात की कि वह किस प्रकार अपने एचआईवी होने की स्थिति को झेल रहा था। "निश्चित रूप से शुरू में मुझे लगा सब ख़त्म हो गया," वह बोला। "मुझे इस बात को स्वीकार करने में ही एक वर्ष से अधिक लग गया कि मैं उस वाइरस से संक्रमित था। परंतु पिछले एक वर्ष के दौरान चीज़ें बदल गईं हैं। मैं अब अपने प्रत्येक दिन का पहले की अपेक्षा बेहतर इस्तेमाल कर पाता हूँ और हर पल मैं पहले से ज़्यादा ख़ुशी महसूस करता हूँ। मैं प्रतिदिन चीज़ों का

ज़्यादा आनंद ले पाता हूँ और मैं सौभाग्यशाली हूँ कि अभी तक मेरे अंदर एड्स का कोई ख़तरनाक लक्षण नहीं दिखाई दिया है और मेरे पास जो कुछ है, मैं उसका पूरा आनंद ले रहा हूँ। हालाँकि मैं एड्स से पीड़ित नहीं होना चाहता था, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इससे मेरे जीवन में... सकारात्मक तरीके से... काफ़ी बदलाव आया है।"

"किस तरह से?" मैंने पूछा।

"उदाहरण के लिए, आपको पता है कि मैं हमेशा से भौतिकतावादी रहा हूँ। परंतु पिछले एक साल में अपनी नश्वरता के साथ सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास ने मेरे सामने एक नया संसार प्रस्तुत किया है। मैंने जीवन में पहली बार आध्यात्मिकता को जानना शुरू किया है और मैं इस विषय पर बहुत-सी किताबें पढ़ रहा हूँ एवं लोगों से बात कर रहा हूँ... और इतनी सारी नई चीज़ों को जान रहा हूँ जिनके बारे में आज से पहले मैंने कभी सोचा भी नहीं था। मैं सुबह उत्साह से उठता हूँ और मुझे इस बात की प्रतीक्षा रहती है कि नया दिन मेरे लिए क्या लेकर आने वाला है।"

इन दोनों लोगों के बारे में जानकर यह पता लगता है कि ख़ुशी बाहरी घटनाओं से ज़्यादा व्यक्ति की मनोदशा पर निर्भर करती है। सफलता से ख़ुशी का अस्थायी एहसास हो सकता है, या कोई दुखद घटना हमें निराश कर सकती है, लेकिन देर-सवेर हमारी ख़ुशी अपने न्यूनतम स्तर पर लौट आती है। मनोवैज्ञानिक इस प्रक्रिया को अनुकूलन कहते हैं और हम देख सकते हैं कि यह सिद्धांत किस तरह हमारे रोज़मर्रा के जीवन में काम करता है; वेतन वृद्धि, नई गाड़ी या अपने साथियों द्वारा की गई प्रशंसा हमें कुछ देर के लिए ख़ुशी दे सकती है लेकिन हम जल्द ही ख़ुशी के अपने सामान्य स्तर पर लौट आते हैं। इसी तरह, किसी मित्र से हुई नोक-झोंक, मरम्मत के लिए गई हुई गाड़ी या कोई छोटी चोट हमें दुखी कर सकती है लेकिन कुछ ही दिन में हमारी सामान्य ख़ुशी वापस आ जाती है।

यह प्रवृत्ति रोज़ की छोटी-छोटी घटनाओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह विजय या महाविपदा जैसी चरम स्थितियों में भी देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए, इलीनॉय स्टेट लॉटरी विजेताओं और ब्रिटिश पूल विजेताओं पर शोध करने वालों ने पाया कि आरंभिक उत्साह समय के साथ ठंडा हो गया और विजेता प्रतिपल ख़ुश रहने की अपनी अवस्था में लौट आए। कई अन्य अध्ययन बताते हैं कि कैंसर, नेत्रहीनता या लकवा जैसी भयंकर घटनाओं से पीड़ित लोग भी उचित समयावधि के बाद उबर जाते हैं और अपने नित्य-प्रतिदिन की ख़ुशी के सामान्य स्तर को प्राप्त कर लेते हैं।

अपनी बाहरी परिस्थितियों के बावजूद अगर हम ख़ुशी के अपने आधारभूत स्तर पर लौट आते हैं, तो वह क्या चीज़ है जो उस आधार को निर्धारित करती है? इससे भी ज़रूरी यह है कि क्या इसे बदलकर पहले से ज़्यादा उच्च स्तर पर लाया जा सकता है? कुछ शोधकर्त्ताओं का कहना है कि व्यक्ति की ख़ुशी या सुख का अपना स्तर, कुछ सीमा तक, आनुवांशिक आधार पर तय होता है। एक अध्ययन से पता लगता है कि जुड़वाँ बच्चों (जिनका आनुवांशिक संयोजन समान होता है) के मामले में - चाहे उनका पालन-पोषण एकसाथ हुआ हो या अलग-अलग - उनके सुख का स्तर लगभग एक-सा होता है। इससे

खोजकर्त्ता इस निष्कर्ष तक पहुँचे कि जन्म के समय ही मस्तिष्क में ख़ुशी का जैविक निर्देश बिंदु होता है।

यदि ख़ुशी के संदर्भ में आनुवांशिक ढाँचे की कोई भूमिका होती भी है - और यह भूमिका कितनी बड़ी होती है, इस पर अंतिम फ़ैसला अभी नहीं आया है - मनोवैज्ञानिकों के बीच इस बात को लेकर आम सहमति बन चुकी है कि प्रकृति ने हमें ख़ुशी का चाहे जो भी स्तर निर्धारित करके दिया हो, हम "मस्तिष्क" के साथ कुछ ऐसे कदम उठा सकते हैं जिनसे हमारी ख़ुशी के भाव में वृद्धि हो सकती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमें हर पल मिलने वाली ख़ुशी अधिकांश रूप से हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। वास्तव में, किसी भी समय पर हमारी ख़ुश या हमारे दुख का हमारी परम स्थिति से कोई संबंध नहीं होता, बल्कि यह इस पर निर्भर करता है कि हम अपनी स्थिति को किस तरह देखते हैं तथा हमारे पास जो कुछ है हम उससे कितने संतुष्ट हैं।

तुलनात्मक मस्तिष्क

हमारी समझ और संतुष्टि के स्तर का निर्धारण कौन करता है? हमारी संतुष्टि का भाव तुलना करने की हमारी प्रवृत्ति पर बहुत गहरा असर डालता है। जब हम अपनी वर्तमान स्थिति की अपने अतीत से तुलना करते हैं और हमें लगता है कि हमारी स्थिति पहले से बेहतर है तो हमें ख़ुशी होती है। उदाहरण के लिए, ऐसा तब होता है जब हमारी वार्षिक आय अचानक $20,000 से बढ़कर $30,000 हो जाती है, लेकिन हमारी ख़ुशी का कारण हमारी शुद्ध आय नहीं है क्योंकि हम जल्द ही अपनी नई आय के आदी हो जाते हैं और हमें लगने लगता है कि जब तक हमारी आय $40,000 नहीं हो जाएगी, हम ख़ुश नहीं रह सकते। हम अपने आस-पास देखते हैं और दूसरों के साथ खुद की तुलना करते हैं। हम कितना भी कमाएँ, लेकिन यदि हमारा पड़ोसी हमसे ज़्यादा कमाता है तो हम असंतुष्ट महसूस करने लगते हैं। व्यावसायिक धावक $1 मिलियन, $2 मिलियन या $3 मिलियन तक की अपनी वार्षिक आय को लेकर बुरी तरह शिकायत करते हैं और अपनी टीम के साथी धावक की अधिक आय का उल्लेख करते हुए अपनी नाख़ुशी को सही ठहराते हैं। यह प्रवृत्ति एच.एल मेनकेन द्वारा दी गई अमीर व्यक्ति की परिभाषा का समर्थन करती है: अमीर वह व्यक्ति है, जिसकी वार्षिक आय अपनी पत्नी की बहन के पति से $100 अधिक है!

इस तरह हम देख सकते हैं कि हमारी ख़ुशी इस बात पर निर्भर करती है कि हम अपनी तुलना किसके साथ करते हैं। निश्चित ही, हम आय के अतिरिक्त अन्य बातों की भी तुलना करते हैं। अपने से अधिक चतुर, सुंदर या सफल लोगों के साथ लगातार तुलना करने से हमारे भीतर ईर्ष्या, कुंठा और दुख पैदा होने लगता है। परंतु हम इसी सिद्धांत का सकारात्मक तरीके से भी प्रयोग कर सकते हैं। हम अपनी तुलना स्वयं से कम भाग्यशाली लोगों के साथ करके और हमारे पास जो कुछ है, उसके विषय में विचार करके अपने आत्म-संतोष के भाव को बढ़ा सकते हैं।

शोधकर्त्ताओं ने यह दर्शाने के लिए अनेक प्रयोग किए हैं कि जीवन में संतोष के स्तर को बढ़ाने के लिए हमें सिर्फ़ अपने दृष्टिकोण को बदलने और यह सोचने की ज़रूरत है कि हमारी स्थिति इससे भी बुरी हो सकती थी। एक अध्ययन के दौरान, मिल्वाकी में विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय की महिलाओं को शताब्दी के आरंभ में, जीवन की अत्यंत मुश्किल परिस्थितियों की तस्वीरें दिखाई गईं थीं या उनसे कहा गया कि वे खुद को ज़िंदा जला दिए जाने या विरूपित किए जाने की कल्पना करें और फिर उन व्यक्तिगत त्रासदियों के बारे में अपने अनुभव लिखें। इस अभ्यास के बाद, उनसे उनके अपने वर्तमान जीवन की स्थिति का आकलन करने को कहा गया। इस अभ्यास के बाद देखा गया कि वे अपने जीवन में पहले से अधिक संतुष्ट महसूस कर रही थीं। बफ़ैलो में न्यू यॉर्क के स्टेट विश्वविद्यालय में एक अन्य प्रयोग के दौरान, कुछ लोगों को इस वाक्य को पूरा करने के लिए कहा गया: "मुझे ख़ुशी है कि मैं...नहीं हूँ।" इस अभ्यास को पाँच बार दोहराने के बाद, लोगों में अपने जीवन के प्रति संतोष का भाव काफ़ी बढ़ गया था। प्रयोगकर्त्ताओं द्वारा लोगों के एक अन्य समूह को एक दूसरा वाक्य पूरा करने के लिए दिया गया: "काश मैं... होता।" इस बार, लोगों में अपने जीवन के प्रति असंतोष का भाव अधिक था।

यह प्रयोग दर्शाता है कि हम अपना दृष्टिकोण बदलकर जीवन के प्रति अपने संतोष के स्तर को बढ़ा या घटा सकते हैं, साफ़ तौर पर ख़ुशहाल जीवन जीने में व्यक्ति के मानसिक दृष्टिकोण की महत्ता की ओर इशारा करता है।

दलाई लामा समझाते हैं,"हालाँकि ख़ुशी पाना संभव है, किंतु यह कोई सरल काम नहीं है। इसके अनेक स्तर हैं। उदाहरण के लिए बौद्ध धर्म में, संतोष या ख़ुशी के चार घटकों का उल्लेख मिलता है: धन, सांसारिक सुख, अध्यात्म और बोध। ये सब मिलकर किसी व्यक्ति द्वारा ख़ुशी की तलाश को पूरा करते हैं।"

"थोड़ी देर के लिए हम धार्मिक या आध्यात्मिक लक्ष्यों जैसे पूर्णता और बोध को छोड़ देते हैं तथा हर्ष व ख़ुशी को उस ढंग से समझने की कोशिश करते हैं जैसे हम इन्हें दैनिक या सांसारिक संदर्भ में देखते हैं। इस संदर्भ में, कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जिन्हें हम सहज रूप से हर्ष व ख़ुशी का कारण मान लेते हैं। जैसे: ख़ुश रहने के लिए अच्छा स्वास्थ्य आवश्यक माना जाता है। एक अन्य कारण, जिसे हम ख़ुशी का कारण मानते हैं, सांसारिक सुविधाएँ या हमारे द्वारा जमा किया गया धन है। दोस्त या साथी भी एक कारण है। हम सब इस बात को मानते हैं कि संतुष्ट जीवन के लिए हमें दोस्तों की ज़रूरत होती है जिनके साथ हम भावनात्मक रूप से जुड़ सकते हैं और जिन पर भरोसा कर सकते हैं।"

"वास्तव में, ये सब चीज़ें ख़ुश रहने के लिए ज़रूरी हैं। परंतु किसी व्यक्ति के लिए इन सबका पुरी तरह उपयागे करके ख़ुशहाल एवं संतुष्ट जीवन जीने के लिए, उसका सही मानसिक अवस्था में होना सबसे महत्त्वपूर्ण है। यह बहुत ज़रूरी भी है।"

"यदि हम अपनी अनुकूल परिस्थितियों, जैसे अच्छे स्वास्थ्य या धन का सकारात्मक ढंग से दूसरों की सहायता के लिए उपयोग करें तो ये सब चीज़ें हमें ख़ुश रहने में योगदान दे सकती हैं। निश्चित ही, हम इन चीज़ों - हमारी भौतिक सुविधाएँ, सफलता आदि - का आनंद

लेते हैं। परंतु सही मानसिक अवस्था के बिना, मानसिक तत्त्व पर ध्यान दिए बिना, इन सब चीज़ों का ख़ुश रहने के दीर्घ-कालिक भाव पर बहुत कम असर पड़ता है। उदाहरण के लिए, अगर आप अपने भीतर अत्यधिक घृणा या ग़ुस्से के भाव रखते हैं तो इससे हमारी सेहत पर बुरा असर पड़ता है और इस तरह ख़ुशी का एक तत्त्व नष्ट हो जाता है। इसी तरह अगर आप मानसिक रूप से दुखी या परेशान हैं तो शारीरिक आराम आपकी अधिक मदद नहीं कर सकता। दूसरी ओर, अगर आपका चित्त शांत रहता है तो ख़राब स्वास्थ्य के बावजूद आप बहुत ख़ुश रह सकते हैं। यदि आपके पास बहुत शानदार चीज़ें हैं तो भी बहुत गुस्से या घृणा के भाव आने पर आपका उन चीज़ों को फेंकने या तोड़ देने का मन करेगा। उस समय, आपके लिए उन चीज़ों का कोई महत्त्व नहीं है। आज ऐसे बहुत-से समाज हैं जो भौतिक रूप से अत्यधिक समृद्ध हैं लेकिन उनमें बहुत-से लोग हैं जो ख़ुश नहीं हैं। उस सुंदर शानो-शौकत के नीचे मानसिक अशांति रहती है जिससे परेशानी, अनावश्यक झगड़े, दवाइयों या शराब पर निर्भरता और बुरे से बुरे मामलों में आत्महत्या जैसी बातें पैदा हो जाती हैं। इसलिए इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि सिर्फ़ धन से आपको जीवन में वो ख़ुशी या आनंद मिल सकता है जो आप खोज रहे हैं। यही बात आपके मित्रों पर भी लागू होती है। जब आपके अंदर घृणा या ग़ुस्से के तीव्र भाव पैदा होते हैं तो आपको अपना बहुत नज़दीकी दोस्त भी रूखा व दूर लगता है तथा आप उससे भी खीज जाते हैं।”

“इस सबसे हमारी मानसिक स्थिति और मस्तिष्क का हमारे दैनिक जीवन के अनुभव पर पड़ने वाले प्रभाव का पता लगता है। स्वाभाविक रूप से हमें इस तत्त्व को गंभीरता से लेना चाहिए।”

“भौतिक संदर्भ में भी, आध्यात्मिक अभ्यास के इस दृष्टिकोण को एक तरफ़ रखकर, ख़ुशहाल अस्तित्व का आनंद लेने के संदर्भ में, जितना हमारा मस्तिष्क शांत होगा, हम जीवन में उतना ही अधिक ख़ुश और आनंदित हो सकते हैं।”

दलाई लामा उस विचार को स्थिर होने देने के लिए पल-भर रुके और फिर बोले, “मुझे यह कहना चाहिए कि जब हम स्थिर चित्त और शांत मस्तिष्क की बात करते हैं तो हमें इसे मस्तिष्क की पूरी तरह असंवेदनशील, भावशून्य अवस्था समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। शांत व स्थिर दिमाग़ होने का अर्थ पूरी तरह विरक्त हो जाना या ख़ाली हो जाना नहीं है। दिमाग़ी शांति या चित्त की शांत अवस्था की जड़ें स्नेह और करुणा में होती हैं। वहाँ संवेदनशीलता और भावुकता का स्तर बहुत ऊँचा होता है।”

सार रूप में वह बोले, “जब तक इस शांत अवस्था को पैदा करने वाले आंतरिक अनुशासन का अभाव है, आपकी बाहरी सुविधाएँ या परिस्थितियाँ कुछ भी हों, आपको वह आनंद और ख़ुशी नहीं मिलेगी जिसकी आपको तलाश है। इसके विपरीत, यदि आपके पास वह अंदरूनी गुण है, शांत चित्त है, भीतरी स्थिरता है तो वे बाहरी परिस्थितियों, जिन्हें आप ख़ुशी के लिए ज़रूरी समझते हैं, आपके पास न हों, तो भी आपके लिए आनंद और ख़ुशी के साथ रहना संभव है।”

भीतरी संतोष

एक दिन दोपहर में दलाई लामा से मिलने के लिए जाते समय होटल की पार्किंग को पार करते हुए, मैं रुककर वहाँ खड़ी एक नई टोयोटा लैंड क्रूज़र को देखने लगा। मेरे मन में ऐसी गाड़ी लेने की बहुत लंबे समय से इच्छा थी। मैं अपनी बात शुरू करते समय भी उस गाड़ी के विषय में सोच रहा था और मैंने पूछा, "कभी-कभी मझे लगता है कि हमारी पुरी पाश्चात्य संस्कृति भौतिक समृद्धि पर आधारित है; हमारे ऊपर हर समय नई चीज़ों, नई गाड़ियों आदि के विज्ञापनों की बारिश होती रहती है। इन सबसे प्रभावित न होना बहुत मुश्किल होता है। ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जो हम चाहते हैं, जिन्हें पाने की हमारी इच्छा होती है। यह कभी रुकता नहीं है। क्या आप इच्छा के बारे कुछ बोल सकते हैं?"

"मेरे विचार से इच्छाएँ दो तरह की होती हैं," दलाई लामा ने कहा, "कुछ इच्छाएँ सकारात्मक होती हैं। ख़ुशी पाने की इच्छा। यह पूरी तरह सही है। शांति की इच्छा। एक ज़्यादा सामंजस्यपूर्ण दुनिया, अधिक दोस्ताना संसार की इच्छा। कुछ इच्छाएँ बहुत उपयोगी होती हैं।

"परंतु एक समय पर, इच्छाएँ अनुचित हो सकती हैं। इससे परेशानी हो सकती है। उदाहरण के लिए, मैं कभी-कभी सुपरमार्केट जाता हूँ। मुझे सुपरमार्केट बहुत अच्छे लगते हैं क्योंकि मुझे वहाँ बहुत सुंदर-सुंदर चीज़ें दिखाई देती हैं। मैं जब इन विभिन्न चीज़ों को देखता हूँ तो मेरे अंदर इन्हें पाने की इच्छा पैदा होती है और मेरी पहली प्रतिक्रिया यह हो सकती है, 'ओह, मुझे यह चाहिए; मुझे वह चाहिए।' इसके बाद जब दूसरा विचार मेरे मन में उठता है, तो मैं खुद से पूछता हूँ, 'ओह, क्या मुझे सचमुच इसकी ज़रूरत है?' इसका उत्तर प्रायः 'नहीं' होता है। यदि आप उस पहली इच्छा, पहली प्रतिक्रिया पर अमल करेंगे तो जल्द ही आपकी जेब खाली हो जाएगी। हालाँकि, दूसरे स्तर की इच्छाएँ जो व्यक्ति की मूलभूत ज़रूरतों, जैसे रोटी, कपड़ा और मकान पर आधारित हैं, अधिक तर्कसंगत हैं।

"इच्छा सकारात्मक है या नकारात्मक, यह कभी-कभी आपके समाज या आपकी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उदाहारण के लिए, अगर आप किसी समृद्ध समाज में रहते हैं जहाँ आपके दैनिक जीवन को सुचारू ढंग से चलाने के लिए गाड़ी आवश्यक है तो गाड़ी की इच्छा होने में कुछ ग़लत नहीं है। परंतु अगर आप भारत के किसी ग़रीब गाँव में रहते हैं जहाँ बिना गाड़ी के आपका काम आराम से चल सकता है लेकिन फिर भी आपके मन में गाड़ी रखने की इच्छा है तो गाड़ी खरीदने के लिए पैसा होने के बावजूद, इससे आपको परेशानी हो सकती है। इससे आपके पड़ोसियों आदि के मन में असहजता का भाव पैदा हो सकता है। अथवा, अगर आप अधिक समृद्धशाली समाज में रहते हैं और आपके पास गाड़ी है लेकिन आपका मन ज़्यादा महँगी गाड़ी खरीदने को करता है तो उससे भी आपको इसी तरह की परेशानी हो सकती है।"

"परंतु," मैंने तर्क करते हुए कहा, "मुझे यह समझ में नहीं आ रहा कि, यदि व्यक्ति ख़रीद सकता है तो ज़्यादा महँगी गाड़ी खरीदने या उसकी इच्छा करने से उसके लिए

परेशानी कैसे हो सकती है। अपने पड़ोसियों से ज़्यादा महँगी गाड़ी खरीदने से आपके पड़ोसियों को परेशानी हो सकती है - उन्हें ईर्ष्या आदि महसूस हो सकती है - लेकिन नई गाड़ी खरीदने से आपको तो ख़ुशी और संतोष होगा।"

दलाई लामा ने सिर हिलाकर ज़ोर देते हुए उत्तर दिया, "नहीं... सिर्फ़ आत्म-संतोष से यह तय नहीं हो सकता कि कोई इच्छा या कार्य सकारात्मक है या नकारात्मक। एक हत्यारे को किसी की हत्या करते समय संतोष हो सकता है लेकिन इससे उसके द्वारा किया गया कृत्य सही नहीं माना जा सकता। सभी ग़लत काम - झूठ बोलना, चोरी करना, दुष्कर्म आदि - ऐसे लोगों द्वारा किए जाते हैं जिन्हें उस समय उन कार्यों को करने से संतोष होता है। किसी सकारात्मक और नकारात्मक इच्छा या कार्य के बीच का अंतर इस बात से तय नहीं होता कि क्या उससे आपको तत्काल संतोष मिल रहा है, बल्कि इस बात से तय होता है कि उसका परिणाम सकारात्मक होगा या नकारात्मक। जैसे: ज़्यादा महँगी चीज़ें चाहने के मामले में, यदि यह ज़्यादा और ज़्यादा इच्छाएँ करने वाली मानसिक प्रवृत्ति पर आधारित है तो अंत में आप अपनी इच्छाओं की सीमा तक पहुँच जाएँगे; आपका सामना सच्चाई से हो जाएगा। जब आप उस सीमा तक पहुँच जाएँगे तो आपकी आशा समाप्त हो जाएगी और आप उदास हो जाएँगे। इस तरह की इच्छा होने में इस बात का ख़तरा रहता है।"

"इसलिए मुझे लगता है कि इस तरह की अत्यधिक इच्छा से लालच पैदा होता है - जो अत्यधिक उम्मीद पर आधारित इच्छा का अतिरंजित रूप है। जब आप लालच की इस अधिकता के बारे में सोचेंगे तो आप पाएँगे कि इससे व्यक्ति को हताशा, अवसाद, दुविधा और बहुत-सी परेशानी का सामना करना पड़ता है। जब लालच के भाव से निपटना पड़ता है तो एक बहुत साफ बात यह है कि हालाँकि यह कुछ पाने की इच्छा से पैदा होता है, परंतु यह उस वस्तु को पाने से संतुष्ट नहीं होता। यह एक प्रकार से असीमित, अथाह हो जाता है और फिर परेशानी पैदा करता है। लालच के बारे में एक बड़ी रोचक बात है कि हालाँकि इसका असली उद्देश्य संतोष पाना है, परन्तु विडंबना यह है कि उस वस्तु को पाने के बाद भी आप संतुष्ट नहीं होते। संतोष ही लालच का सही प्रतिकार है। अगर आपके भीतर संतुष्टि का भाव बहुत प्रबल है तो आपको वह वस्तु प्राप्त हो या नहीं, आप हर हाल में संतुष्ट रह सकते हैं।"

हमें भीतरी संतोष कैसे मिल सकता है? इसके दो तरीके हैं। एक तरीका यह है कि हमें जो कुछ चाहिए और जिस चीज़ की भी हमें इच्छा है, उसे हम प्राप्त कर लें - समस्त धन, घर, गाड़ियाँ, सही साथी और अच्छा शरीर। दलाई लामा इस तरह की सोच का नुकसान पहले ही बता चुके हैं; यदि हमारी इच्छाएँ और कामनाएँ असीमित हो जाएँगी तो देर-सवेर कुछ ऐसा होगा जिसे हम चाहते हैं लेकिन वह हमें नहीं मिल सकता। दूसरा और अधिक विश्वसनीय तरीका यह है कि हम जो कुछ चाहते हैं उसे पाने की इच्छा न करें, बल्कि जो कुछ हमारे पास है उसका आनंद लिया जाए।

एक रात मैं टीवी पर क्रिस्टोफ़र रीव का एक इंटरव्यू देख रहा था। वह एक फ़िल्म अभिनेता था जो 1994 में घोड़े से गिर गया और उसकी रीढ़ की हड्डी में चोट लगी जिसके

कारण गर्दन से नीचे का उसका पूरा शरीर बेकार हो गया। यहाँ तक कि उसे साँस लेने के लिए भी वेंटीलेटर की ज़रूरत थी। जब इंटरव्यू लेने वाले व्यक्ति ने उससे पूछा कि अपनी अशक्त स्थिति से पैदा हुई निराशा से निपटने के लिए उसने क्या किया तो रीव ने बताया कि एक समय था जब अस्पताल के इंटेन्सिव यूनिट में लेटे हुए वह पूरी तरह हताश हो चुका था। हालाँकि उसने कहा कि हताशा का वह समय जल्दी ही निकल गया और अब वह खुद को "भाग्यशाली" मानता है। उसने अपनी प्रिय पत्नी और बच्चों की शुभकामनाओं के बारे में बताया और साथ ही वह इस बात के लिए भी आभारी था कि आधुनिक चिकित्सा ने तेज़ी से प्रगति की है (उसका अनुमान है कि अगले एक दशक के भीतर रीढ़ की हड्डी की चोट का उपचार मिल जाएगा) और उसने कहा कि यही चोट अगर उसे कुछ वर्ष पूर्व लगी होती तो शायद वह मर गया होता। अपनी लाचारी से उबरने की प्रक्रिया के बारे में बताते हुए रीव ने कहा कि हालाँकि हताशा के भाव जल्द ही दूर हो गए थे, शुरू में उसे रह-रहकर ईर्ष्या होती थी, जब वह किसी को अनजाने में यह बोलते सुनता था, "मैं अभी दौड़कर ऊपर जाता हूँ और कुछ लेकर आता हूँ।" इन भावों से निपटना सीखने के दौरान, उसने कहा, "मैंने पाया कि जीने का एकमात्र तरीका अपने पास मौजूद चीज़ों को देखना और यह समझना है कि आप अभी क्या-क्या काम कर सकते हैं; मेरे मामले में, सौभाग्य से, मुझे दिमाग़ के अंदर चोट नहीं लगी थी, इसलिए मेरे पास उपयोग करने के लिए दिमाग़ तो था।" इस तरह अपने संसाधनों पर ध्यान लगाकर रीव ने अपने दिमाग़ के प्रयोग द्वारा लोगों को रीढ़ की चोट के बारे में बताने और जागरूकता पैदा करने में किया है और उसकी बोलने, लिखने और फ़िल्मों का निर्देशन करने की भी योजना है।

आंतरिक संसाधन

हमने देखा कि ख़ुशी पाने के लिए किस तरह अपनी मानसिक प्रवृत्ति पर काम करना धन, पद या शारीरिक स्वास्थ्य के बाहरी स्रोतों द्वारा ख़ुशी पाने से ज़्यादा प्रभावशाली होता है। संतुष्टि के अंदरूनी भाव से जुड़ा ख़ुशी का एक और भीतरी स्रोत आत्म-महत्त्व है। इस आत्म-महत्त्व के भाव को विकसित करने के लिए सबसे विश्वसनीय आधार के विषय में समझाते हुए दलाई लामा ने कहा: "उदाहरण के लिए, मेरे मामले में मान लीजिए, मेरे अंदर मानवीयता न होती, आसानी से अच्छे दोस्त बनाने की क्षमता न होती। उसके बिना जब मैंने अपना देश खो दिया, जब तिब्बत में मेरा राजनीतिक प्रभुत्त्व समाप्त हो गया तो शरणार्थी बनकर जीना बहुत मुश्किल हो जाता। तिब्बत में एक निश्चित राजनीतिक व्यवस्था के समय, जब मैं तिब्बत में था तो दलाई लामा के कार्यालय को आदर से देखा जाता था और चाहे लोगों का मेरे प्रति सच्चा स्नेह हो या नहीं, वे लोग मुझसे उसी आदर के साथ मिलते थे। परंतु अगर लोगों के स्नेह का आधार सिर्फ़ यही होता तो जब मैंने अपने देश को खोया तो मेरे लिए बहुत कठिन हो जाता। परंतु महत्त्व और गरिमा का एक अन्य स्रोत होता है जहाँ से आप अपने दूसरे साथियों के साथ संबंध महसूस कर सकते हैं। उनके साथ आपका संबंध इसलिए

बन पाता है क्योंकि मानव समुदाय में आप भी मनुष्य हैं। आप उस संबंध को साझा कर पाते हैं और वह मानवीय संबंध उस महत्त्व व गरिमा के भाव पैदा करने के लिए पर्याप्त होता है। वह संबंध उस समय सांत्वना का स्रोत बन सकता है जिस समय आप शेष सब कुछ खो देते हैं।"

दलाई लामा चाय की चुस्की लेने के लिए क्षण भर रुके और फिर सिर हिलाते हुए उन्होंने कहा, "दुर्भाग्य से, जब आप इतिहास को पढ़ते हैं तो आपको ऐसे शासकों और राजाओं के किस्से मिलते हैं जिन्होंने किसी राजनीतिक उलटफेर के चलते अपनी प्रतिष्ठा गँवा दी और उन्हें अपना देश छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया गया, लेकिन उसके बाद की कथा उनके लिए उतनी सकारात्मक नहीं थी। मुझे लगता है कि अन्य साथी मनुष्यों के साथ स्नेह व आत्मीय संबंध के बिना जीवन बहुत कठिन हो जाता है।

"सामान्य तौर पर, लोग दो तरह के होते हैं। एक तरफ़ कोई व्यक्ति धनवान, सफल हो सकता है जिसके बहुत-से संबंधी और रिश्तेदार हों। यदि उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा और सम्मान का स्रोत सिर्फ़ भौतिक है तो अपनी संपत्ति रहने तक वह सुरक्षित महसूस करेगा। परंतु जिस घड़ी उसकी संपत्ति कम हो जाएगी, उसे बहुत कष्ट होगा क्योंकि उसके पास कोई अन्य सहारा नहीं है। दूसरी ओर, एक अन्य व्यक्ति है जिसका आर्थिक और वित्तीय स्तर भी पहले व्यक्ति जैसा है, परंतु इसी के साथ वह व्यक्ति सहृदय, स्नेहशील और करुणामयी है। चूंकि उस व्यक्ति के पास महत्त्व का अन्य स्रोत उपलब्ध है, एक अन्य स्रोत जो उसके अंदर प्रतिष्ठा का भाव पैदा करता है, एक अन्य सहारा, तो अपनी संपत्ति कम हो जाने के बाद भी उसके निराश होने की संभावना कम है। इस तरह के तर्क से आप आंतरिक महत्त्व को विकसित करने में आत्मीयता व स्नेह के व्यावहारिक महत्त्व को देख सकते हैं।"

ख़ुशी बनाम सुख

ऐरिज़ोना में दलाई लामा की वार्ता के कई महीनों बाद, मैं उनसे मिलने उनके निवास धर्मशाला जा पहुँचा। उस समय जुलाई का गर्म और नमी वाला महीना था। शहर से थोड़ी ऊँचाई पर जब मैं उनके पास पहुँचा तो पसीने से तर था। शुष्क मौसम का निवासी होने के कारण, मेरे लिए इतनी नमी उस दिन लगभग असहनीय हो रही थी और जब हम बात करने बैठे तो मेरा मूड बहुत बढ़िया नहीं था। इसके विपरीत वह बहुत उत्साहित लग रहे थे। बातचीत के दौरान हम जल्द ही सुख के विषय पर आ गए। उस चर्चा के दौरान, उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण बात कही:

"लोग कभी-कभी सुख को ख़ुशी समझ लेते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ समय पहले मैं राजपुर में भारतीय श्रोताओं से बात कर रहा था। मैंने कहा कि जीवन का उद्देश्य ख़ुश रहना है, तो एक श्रोता ने कहा कि आचार्य रजनीश का मानना है कि हमें सबसे ज़्यादा ख़ुशी उस समय होती है जब हम संभोग करते हैं, इसलिए संभोग के द्वारा हम ख़ुश रह सकते हैं," यह कहकर दलाई लामा ज़ोर से हँसने लगे। "वह दरअसल यह जानना चाहता था कि मैं इस

बारे में क्या सोचता हूँ। मैंने इस बात का उत्तर अपने नज़रिये से दिया कि सबसे अधिक ख़ुशी तब मिलती है जब व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त होता है, जिसके बाद कोई कष्ट नहीं रह जाता। यही सच्ची और स्थायी ख़ुशी है। सच्ची ख़ुशी का संबंध मस्तिष्क और हृदय दोनों से होता है। शारीरिक सुख पर आधारित ख़ुशी अस्थायी होती है; यह एक दिन होती है और हो सकता है कि अगले दिन न हो।"

ऊपरी तौर पर यह बड़ी स्वाभाविक बात लगी; निश्चय ही, सुख और ख़ुशी दो अलग चीज़ें हैं। फिर भी हम मनुष्य आसानी से इन दोनों को समझने में भूल कर बैठते हैं। घर वापसी के कुछ ही दिन बाद, एक मरीज़ का उपचार करते समय, मुझे इस बात का साकार प्रमाण मिला कि यह सामान्य-सी बात भी कितनी शक्तिशाली हो सकती है।

हीदर एक युवा व्यवसायी सलाहकार थी जो फ़ीनिक्स क्षेत्र में अकेले रहकर कार्य करती थी। उसे परेशान बच्चों के बीच रहकर कार्य करना अच्छा लगता था, किंतु कुछ समय से वह उस इलाके में रहकर ख़ुश नहीं थी। वह प्रायः बढ़ती हुई जनसंख्या, ट्रैफ़िक और अत्यंत तेज़ गर्मी को लेकर शिकायत करती थी। उसे पहाड़ों के बीच एक सुंदर-से शहर में नौकरी का अवसर मिला था। उसने पहले भी कई बार वह शहर देखा हुआ था और अनेक बार उसका मन हुआ कि वह उसी शहर में रहने लगे। यह शहर उसके लिए बिल्कुल उपयुक्त था। एक ही समस्या थी कि जो काम उसे मिला था उसमें वयस्क ग्राहक थे। कई सप्ताह तक वह निर्णय नहीं ले सकी कि उसे वह नौकरी करनी चाहिए या नहीं। वह इस बारे में कोई फ़ैसला नहीं ले पा रही थी। उसने इस नौकरी के फायदे और नुकसान की सूची बनाई, परंतु उसे बहुत खीज हुई क्योंकि सूची में लिखे लाभ और हानि भी बराबर थे।

उसने सोचा, "मुझे पता है कि मुझे उस काम में वैसा मज़ा नहीं आएगा जैसा मुझे यहाँ आता है, लेकिन उस शहर में रहने के सुख से यह कमी आसानी से पूरी हो जाएगी! मुझे वहाँ सचमुच बहुत अच्छा लगता है। मुझे सिर्फ वहाँ रहने से ही अच्छा महसूस होता है। यहाँ की गर्मी मुझे बहुत तंग करती है। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा कि मैं क्या करूँ!"

उसके द्वारा किए गए "सुख" शब्द के प्रयोग से मुझे दलाई लामा की बात याद आ गई और मैंने उससे पूछा, "आपको क्या लगता है कि वहाँ रहने से आपको ज़्यादा सुख मिलेगा या ज़्यादा खुशी?"

वह एक पल के लिए रुकी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि मेरे प्रश्न का क्या अर्थ निकाले। फिर उसने जवाब दिया, "मुझे नहीं पता... मेरे विचार से ऐसा करने से मुझे ख़ुशी से ज़्यादा सुख मिलेगा... मुझे नहीं लगता कि उस प्रकार के ग्राहकों के साथ मुझे अधिक ख़ुशी महसूस होगी। मुझे अपने काम में बच्चों के साथ ज़्यादा संतोष होता है।"

उसकी दुविधा को "क्या मुझे ख़ुशी मिलेगी?" के संदर्भ में दोबारा कहा जाए तो यह बात कुछ स्पष्ट हो सकती है। अचानक उसके लिए निर्णय लेना सरल हो गया। उसने फ़ीनिक्स में ही रहने का फ़ैसला लिया। निश्चय ही, वह गर्मी के बारे में तब भी शिकायत

करती रहती थी। परंतु इस आधार पर कि उसे अधिक ख़ुशी कैसे मिलेगी, वहाँ रहने के अपना फ़ैसला लेने से उसके लिए गर्मी बर्दाश्त करना कुछ आसान हो गया।

प्रतिदिन हम लोगों को ऐसे अनेक निर्णय व चयन करने पड़ते हैं। हम कितनी भी कोशिश करें, प्रायः हम उस चीज़ को नहीं चुनते जिसके बारे में हमें पता होता है कि यह "हमारे लिए अच्छी है।" आंशिक रूप से इसका कारण यह है कि "सही चुनाव" प्रायः कठिन होता है - उसमें हमें अपने सुख का थोड़ा त्याग करना पड़ता है।

प्रत्येक शताब्दी के दौरान, पुरुषों व स्त्रियों ने इस बात को तय करने के लिए बहुत संघर्ष किया है कि हमारे जीवन में सुख की क्या भूमिका होनी चाहिए - दार्शनिकों, धर्मविज्ञानियों और मनोवैज्ञानिकों के पूरे दल ने सुख के साथ हमारे संबंध को जानने का प्रयास किया है। ई.पू. तीसरी शताब्दी में, एपिक्यूरस ने मूल्यों की अपनी प्रक्रिया को इस निर्भीक तथ्य पर आधारित किया था कि "सुख भाग्यवान जीवन का आरंभ और अंत है।" परंतु एपिक्यूरस ने भी सामान्य ज्ञान और संयम के महत्त्व को माना और यह भी स्वीकार किया कि शारीरिक सुख के प्रति अनियंत्रित निष्ठा कभी-कभी सुख की जगह दुख का कारण बन सकती है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों के दौरान, सिग्मंड फ़्रायड सुख के विषय में अपने ही सिद्धांत बनाने में जुटे हुए थे। फ़्रायड के अनुसार, अपूर्ण नैसर्गिक कामनाओं के कारण पैदा हुए तनाव को दूर करने की इच्छा ही संपूर्ण मानसिक सामग्री के लिए मूलभूत प्रेरणा का स्रोत है। दूसरे शब्दों में, हमारा मुख्य उद्देश्य सुख प्राप्त करना है। बीसवीं शताब्दी में, अनेक शोधकर्त्ताओं ने अधिकतर दार्शनिक मतों को नज़रअंदाज़ करके उसके स्थान पर बहुत-से तंत्रिका विज्ञान के जानकारों ने मनुष्य के मस्तिष्क में हाइपोथेलेमस तथा तंत्रिका प्रणाली के कुछ स्थानों को इलेक्ट्रोड की मदद से छेड़ने की कोशिश की तथा बिजली-प्रवाह द्वारा उत्तेजित करके उस बिंदु का पता लगाना चाहा, जिससे सुख उत्पन्न किया जा सकता था।

वास्तव में हमें सुख को समझने के लिए उन मृत यूनानी दार्शनिकों, उन्नीसवीं शताब्दी के मनोविश्लेषकों अथवा बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों की ज़रूरत नहीं है। जब हमें सुख महसूस होता है तो हमें उसका पता लग जाता है। हम उसे अपने किसी प्रियजन के स्पर्श या मुस्कान में, सर्दी में बरसात वाली दोपहर को गर्म पानी से नहाते हुए और सूर्यास्त की सुंदरता में महसूस कर सकते हैं। हम में से कुछ उसे नशे के कश में, नशे के सेवन के उन्माद में, शराब की मौज-मस्ती में, असंयमित संभोग में, लास वेगास में जीत के क्षणों की हर्ष में महसूस कर पाते हैं। ये सुख भी बहुत वास्तविक किस्म के सुख है - ऐसे सुख जिनके साथ हमारे समाज में अनेक लोगों को समझौता करना है।

हालाँकि इन विध्वंसक सुखों से बचने का कोई आसान तरीका नहीं है, सौभाग्य से इसकी शुरुआत की जा सकती है: सिर्फ़ इस बात का सहज बोध होना चाहिए कि हम जीवन में ख़ुशी चाहते है। जैसा कि दलाई लामा ने कहा, यह एक अचूक तथ्य है। अगर हम इसे ध्यान में रखकर निर्णय लेंगे तो उन हानिकारक चीज़ों को छोड़ना आसान हो जाएगा,

बावजूद इसके कि हमें उन चीज़ों से क्षणिक सुख मिल रहा है। जिस कारण से सिर्फ़ "ना" बोलना इतना मुश्किल होता है, वह कारण "ना" शब्द में ही छिपा है; यह पद्धति बात को अस्वीकार करने, चीज़ों को छोड़ने और खुद को उनसे वंचित रखने के भाव से संबंधित है।

परंतु इससे भी बेहतर एक और तरीका है: किसी भी निर्णय को लेने से पहले खुद से यह पूछना, "क्या इससे ख़ुशी मिलेगी?" यह सरल-सा प्रश्न हमारे लिए, न सिर्फ़ नशीले पदार्थों के सेवन या स्वाद वश तीसरी बार केले का हलवा खाने के निर्णय के बारे में ही नहीं, बल्कि जीवन के सभी कार्यों को अच्छे ढंग से करने के लिए एक सशक्त उपकरण का काम कर सकता है। यह चीज़ों को नया आयाम देता है। अपने दैनिक निर्णय लेते हुए और चुनाव करते समय इस प्रश्न को दिमाग़ में रखने से हमारा ध्यान इस बात से कि हम खुद को किस चीज़ से वंचित रख रहे हैं, हटकर इस बात पर आ जाता है कि हम क्या खोज रहे हैं - परम ख़ुशी। इस तरह की ख़ुशी, जो दलाई लामा के शब्दों में, स्थिर और स्थायी है। ख़ुशी की ऐसी अवस्था जो जीवन के उतार-चढ़ाव और व्यवहार के सामान्य बदलाव के बावजूद, हमारे अस्तित्व के साँचे का अंश बनी रहती है। इस दृष्टिकोण से, "सही निर्णय" लेना आसान है क्योंकि हम खुद को किसी चीज़ से वंचित न रखकर स्वयं को कुछ देने के लिए कार्य करते हैं - यह किसी से दूर न जाकर किसी के पास जाने का तरीका है, जीवन को अस्वीकार न करके बल्कि उसे गले लगाने का ढंग है। ख़ुशी की ओर बढ़ने का जो भाव है, उसका बहुत गहन प्रभाव होता है; यह हमें आनंदित होकर जीने के प्रति अधिक ग्रहणशील, अधिक उदार बनाता है।

अध्याय 3

ख़ुश रहने के लिए मस्तिष्क का प्रशिक्षण

ख़ुशी की राह

ख़ुश रहने के लिए व्यक्ति की मानसिक अवस्था को पहचानना सबसे ज़रूरी बात है और निश्चित ही, इसका अर्थ यह नहीं है कि रोटी, कपड़ा और मकान की हमारी मूलभूत भौतिक ज़रूरतें पूरी होनी चाहिए। परंतु एक बार ये ज़रूरतें पूरी हो जाएँ तो फिर संदेश स्पष्ट हैः हमें ज़्यादा धन नहीं चाहिए, हमें ज़्यादा सफलता और ख्याति नहीं चाहिए, हमें आदर्श तन या आदर्श जीवन साथी भी नहीं चाहिए - अभी, इस समय, हमारे पास मस्तिष्क है जो पूर्ण ख़ुशी पाने के लिए हमारे पास एकमात्र साधन है।

मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने की दिशा में काम करने के लिए, दलाई लामा ने अपना दृष्टिकोण पेश करते हुए कहा, "जब हम 'मस्तिष्क' या 'चेतना' की बात करते हैं तो इसके अनेक प्रकार हो सकते हैं। बाहरी परिस्थितियों या वस्तुओं की तरह, कुछ चीज़ें बहुत उपयोगी होती हैं और कुछ निष्क्रिय होती हैं। इसलिए बाहरी चीज़ों के बारे में बात करते समय प्रायः हम पहले यह जानने की कोशिश करते हैं कि इनमें से कौन-से पदार्थ या रसायन उपयोगी हैं ताकि हम उन्हें पोषित कर सकें या बढ़ा सकें और उनका उपयोग कर सकें तथा हानिकारक चीज़ों को छोड़ सकें। इसी तरह जब हम मस्तिष्क की बात करते हैं तो हज़ारों तरह के अलग-अलग विचार या अलग-अलग 'मस्तिष्क' होते हैं। इनमें से कुछ बहुत उपयोगी होते हैं और हमें उनका पोषण करना चाहिए। कुछ बहुत नकारात्मक व हानिकारक होते हैं जिनसे हमें बचना चाहिए।

“तो ख़ुशी पाने का पहला क़दम है - सीखना!” हमें सबसे पहले यह सीखना होगा कि नकारात्मक भाव और व्यवहार किस तरह हमें नुकसान पहुँचाते हैं और सकारात्मक भाव से हमें किस तरह लाभ होता है। हमें यह समझना चाहिए कि किस तरह ये नकारात्मक भाव हमारे लिए न सिर्फ़ निजी तौर पर बुरे व हानिकारक हैं बल्कि समाज के एवं समूचे संसार के भविष्य के लिए भी हानिकारक होते हैं। इस प्रकार का बोध नकारात्मक भाव का सामना करने और इनसे उबरने के लिए हमारे संकल्प को और ज़्यादा मज़बूत करता है। इसके बाद सकारात्मक भाव व व्यवहार के उपयोगी पहलुओं का बोध आता है। एक बार हम यह बात समझ जाएँ तो फिर, कितना भी मुश्किल क्यों न हो, लेकिन हम सकारात्मक भाव को अपने हृदय में बसाकर उन्हें विकसित और सवंर्द्धित करने के लिए दृढ़ निश्चय कर लेते हैं। भीतर से ही एक सहज तत्परता जागृत होने लगती है। कौन-से विचार और भाव लाभकारी हैं और कौन-से हानिकारक, सीखने की इस प्रक्रिया के माध्यम से हमारे भीतर बदलाव की दृढ़ भावना पैदा होती है और हमें लगता है, ‘अब मेरी खुशी, मेरे अपने भविष्य का राज़ मेरे अपने हाथ में है। मैं इस अवसर को किसी भी क़ीमत पर नहीं खोना चाहता!’

“बौद्ध धर्म में कारणत्व का सिद्धांत प्राकृतिक नियम की तरह स्वीकार्य है। सच्चाई के बारे में बात करते हुए, आपको इस नियम को ध्यान में रखना होता है। उदाहरण के लिए, प्रतिदिन के अनुभवों के मामले में, यदि कुछ ऐसी घटनाएँ होती हैं जो आपको पसंद नहीं हैं तो ऐसी घटना को रोकने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उस घटना का कारण बनने वाली परिस्थितियों को पैदा ही न होने दिया जाए। इसी प्रकार, यदि आप चाहते हैं कि कोई विशिष्ट घटना या अनुभव हो जाए तो इसका सबसे तर्कसंगत तरीका यही है कि उन कारणों व परिस्थितियों को खोजा जाए व एकत्रित किया जाए जो उस घटना को पैदा करती हैं।”

“मानसिक अवस्थाओं व अनुभवों के साथ भी यही बात लागू होती है। अगर आप ख़ुशी चाहते हैं तो आपको वे कारण तलाशने होंगे जो उस ख़ुशी को पैदा करते हैं और यदि आप कष्ट से बचना चाहते हैं तो आपको उस कष्ट के कारणों व उसे पैदा करने वाली परिस्थितियों को पैदा होने से रोकना होगा। इस कारणत्त्व के सिद्धांत की समझ बहुत ज़रूरी है।”

“हम ख़ुशी प्राप्त करने के लिए मानसिक कारण के परम महत्त्व पर बात कर चुके हैं। इसलिए, हमारा अगला कार्य यह देखना है कि हम कितनी तरह की मानसिक अवस्थाओं को अनुभव करते हैं। हमारे लिए इन सभी मानसिक अवस्थाओं को स्पष्ट तौर पर जानना और इनमें अंतर करना ज़रूरी है ताकि इन्हें इस आधार पर वर्गीकृत किया जा सके कि इनसे ख़ुशी मिलती है अथवा नहीं।”

“क्या आप भिन्न मानसिक अवस्थाओं के कुछ विशिष्ट उदाहरण दे सकते हैं और यह बता सकते हैं कि आप इन्हें वर्गीकृत कैसे करते हैं?” मैंने पूछा।

दलाई लामा ने बताया, “उदाहरण के लिए घृणा, ईर्ष्या, क्रोध आदि हानिकारक होते हैं। हम इन्हें मस्तिष्क की नकारात्मक अवस्था मानते हैं क्योंकि ये हमारी मानसिक ख़ुशी को नष्ट कर देते हैं। यदि एक बार आपके मन में किसी के लिए घृणा या दुर्भावना आ जाए, यदि

एक बार आपका मन घृणा या नकारात्मक भावों से भर जाए तो आपको दूसरे लोग भी अपने विरोधी प्रतीत होने लगते हैं। इसके फलस्वरूप पहले से अधिक डर, ज़्यादा अवरोध, और संकोच तथा असुरक्षा का भाव होता है। ये चीज़ें उत्पन्न होती हैं और विरोधी समझे जाने वाले संसार के मध्य एक प्रकार का अकेलापन पैदा हो जाता है। ये सब नकारात्मक भाव घृणा के कारण पैदा होते हैं। दूसरी ओर, मानसिक अवस्था जैसे दया भाव और करुणा निश्चित ही सकारात्मक भाव हैं। ये बहुत उपयोगी होते हैं..."

"मुझे बस उत्सुकता है," मैंने बीच में टोका, "आपने कहा कि मस्तिष्क की हज़ारों तरह की अवस्थाएँ होती हैं। आपकी दृष्टि में मनोवैज्ञानिक तौर पर स्वस्थ या सँभले हुए व्यक्ति की क्या परिभाषा है? हम उस परिभाषा का मार्गदर्शक की तरह प्रयोग कर सकते हैं जिससे हम यह जान सकें कि किस अवस्था को विकसित करना है और किसे समाप्त करना है।"

वह हँसे और फिर अपनी स्वभावगत विनम्रता के साथ उन्होंने जवाब दिया, "मनोवैज्ञानिक होने के नाते, आपके पास मानसिक तौर पर स्वस्थ व्यक्ति की बेहतर परिभाषा होनी चाहिए।"

"परंतु मैं आपका दृष्टिकोण जानना चाहता हूँ।"

"मैं तो किसी करुणामयी, उदार, दयालु व्यक्ति को स्वस्थ मानता हूँ। यदि आपके अंदर करुणा, स्नेहमयी दया का भाव है तो कोई चीज़ स्वतः आपके भीतर का द्वार खोल देती है। उसके माध्यम से आप अन्य लोगों के साथ अधिक सहजता से संपर्क कर सकते हैं। सौहार्द का यह भाव आपको उदार बना देता है। आपको लगेगा कि सभी मनुष्य आपके जैसे ही हैं, और इस तरह आप आसानी से उनके साथ खुद को जोड़ पाते हैं। इससे मैत्री का भाव विकसित होता है। इसके बाद आपको कुछ छिपाने की ज़रूरत ज़्यादा नहीं होगी और इसके परिणामस्वरूप भय, आत्म-संदेह और असुरक्षा के भाव अपने आप दूर हो जाते हैं। इससे भरोसे का भाव भी पैदा होता है। अन्यथा, उदाहरण के लिए, आपको कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जो बहुत योग्य है और आपको पता भी है कि आप उस व्यक्ति की योग्यता पर भरोसा कर सकते हैं। परंतु यदि आपको आभास हो जाए कि वह व्यक्ति दयालु नहीं है तो आपको सोच-समझकर बात करनी पड़ेगी। आपको लगेगा, 'मुझे पता है कि वह व्यक्ति बहुत कुछ कर सकता है, लेकिन क्या वह भरोसे के योग्य है?' इस तरह आपके दिमाग़ में हमेशा आशंका बनी रहेगी जो आपको उसके निकट नहीं जाने देगी।"

"जो भी हो, इसलिए मुझे लगता है कि दया और करुणा जैसी सकारात्मक मानसिक अवस्थाओं को विकसित करने से निश्चित तौर पर बेहतर शारीरिक स्वास्थ्य एवं ख़ुशी मिलती है।"

मानसिक अनुशासन

जब दलाई लामा बोल रहे थे तो मुझे ख़ुशी प्राप्त करने का उनका तरीका बहुत पसंद आया।

वह पूरी तरह व्यावहारिक और तर्कसंगत था: सकारात्मक मानसिक अवस्थाओं को पहचानो और उन्हें विकसित करो तथा नकारात्मक मानसिक अवस्था को खुद से दूर करो। हालाँकि अपनी विभिन्न मानसिक अवस्थाओं को क्रमबद्ध ढंग से जानने का उनका सुझाव मुझे शुरू में थोड़ा फीका लगा, किंतु धीरे-धीरे मैं उनके दमदार तर्क व दलीलों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। मुझे यह बात बहुत पसंद आई कि मानसिक अवस्था, भाव और इच्छाओं को बाहरी तौर पर किसी आरोपित नैतिक फ़ैसले जैसे "लालच करना पाप है" या "घृणा करना बुरी बात है" के आधार पर वर्गीकृत करने के बजाय, दलाई लामा भावनाओं को सिर्फ़ इस आधार पर सकारात्मक या नकारात्मक श्रेणी में बाँट देते हैं कि उससे हमें सच्ची ख़ुशी मिल रही है अथवा नहीं।

अगले दिन दोपहर में अपनी वार्ता को आगे बढ़ाते हुए मैंने पूछा, "यदि ख़ुशी का अर्थ सिर्फ़ दया, आदि जैसी अधिक सकारात्मक मानसिक अवस्था विकसित करना है तो इतने सारे लोग दुखी क्यों हैं?"

वे बोले - "सच्ची ख़ुशी पाने के लिए अपने दृष्टिकोण में, अपनी सोच में बदलाव लाने की ज़रूरत पड़ती है और यह आसान काम नहीं होता।" "इसके लिए अलग-अलग दिशाओं से अलग-अलग तरह के निर्देशों की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, आपके मन में यह धारणा नहीं होनी चाहिए कि सिर्फ़ एक ही तरीका, एक ही रहस्य है और अगर वह आप ठीक से कर लें तो सब कुछ ठीक हो जाएगा। यह अच्छे ढंग से शरीर की देखभाल करने जैसा है उसके लिए आपको एकाध नहीं, बल्कि कई प्रकार के विटामिन एवं पोषक तत्त्वों की ज़रूरत होती है। इसी तरह, ख़ुशी पाने के लिए कठिन व विभिन्न नकारात्मक मानसिक अवस्थाओं से उबरने के लिए भी अनेक तरीकों एवं पद्धतियों की आवश्यकता होती है। यदि आप किसी विशेष तरह के नकारात्मक विचार से उबरना चाह रहे हैं तो किसी एक विचार या तरीके को एक या दो बार अपनाने मात्र से यह संभव नहीं है। बदलाव आने में समय लगता है। यहाँ तक कि शारीरिक बदलाव में भी समय लगता है। उदाहरण के लिए, जब आप एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं तो वहाँ के वातावरण के साथ तालमेल बैठाने के लिए भी शरीर को कुछ समय चाहिए। इसी तरह, मस्तिष्क को बदलाव के लिए समय चाहिए होता है। बहुत-सी नकारात्मक मानसिकताएँ होती हैं, इसलिए इनमें से प्रत्येक को समझने और उससे निपटने की ज़रूरत होती है। यह आसान नहीं होता। इसके लिए विभिन्न तकनीकों का बार-बार अभ्यास करना पड़ता है और इन पद्धतियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में समय लगता है। यह सीखने की प्रक्रिया है।"

"परंतु मुझे लगता है कि जैसे-जैसे समय बीतता है, आप सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं। प्रतिदिन जब आप सुबह उठते हैं, तो आप यह सोचते हुए गंभीर सकारात्मक प्रेरणा पैदा कर सकते हैं कि, 'मैं इस दिन को अधिक सकारात्मक तरीके से बिताऊँगा। मुझे यह दिन बर्बाद नहीं करना है।' उसके बाद रात को सोने से पहले, देखिए कि आपने दिनभर क्या किया और खुद से पूछिए, 'क्या मैंने आज का दिन उसी तरह बिताया, जैसे मैंने सोचा

था?’ अगर सब कुछ उसी तरह हुआ तो आपके लिए यह ख़ुशी की बात होगी। यदि उस तरह नहीं हुआ तो आपको दुख होगा और आप इसकी समीक्षा करेंगे। इस तरह के तरीकों की मदद से आप धीरे-धीरे अपने दिमाग़ के सकारात्मक पहलुओं को मज़बूत कर सकते हैं।”

“उदाहरण के लिए, मेरे अपने मामले में, बौद्ध भिक्षु के रूप में मैं बौद्ध धर्म को मानता हूँ और अपने अनुभव के आधार पर मुझे पता है कि ये पद्धतियाँ मेरे लिए बहुत उपयोगी हैं। हालाँकि मेरे पूर्वजन्मों के संस्कारों के कारण कुछ बातें जैसे क्रोध या लगाव, मन में उठ जाती हैं। इसलिए अब मैं ऐसा करता हूँ: पहले इन पद्धतियों के सकारात्मक पहलुओं को समझता हूँ, फिर मन में दृढ़ विश्वास पैदा करता हूँ और फिर उन्हें अपनाने की कोशिश करता हूँ। शुरू में, सकारात्मक पद्धतियों को छोटे स्तर पर लागू किया जाता है इसलिए नकारात्मक प्रभाव ज़्यादा ताकतवर लगते हैं। बाद में जैसे-जैसे आप सकारात्मक पद्धतियों को विकसित करते जाते हैं, नकारात्मक स्वभाव अपने आप दुर्बल होने लगता है। इस तरह धर्म* का अभ्यास भीतर, लगातार चलने वाला संघर्ष है जो पूर्व की नकारात्मक विचारधारा या संस्कारों को नवीन सकारात्मक विचारधारा से बदल देता है।”

इस बात को जारी रखते हुए वे बोले, “हम चाहे कोई भी कार्य या पद्धति का अभ्यास कर रहे हों, ऐसा कुछ नहीं है जो लगातार मेल-जोल और प्रशिक्षण से आसान नहीं हो सकता। प्रशिक्षण के द्वारा, हम बदल सकते हैं खुद को रूपांतरित कर सकते हैं। बौद्ध पद्धतियों में, ऐसे अनेक तरीके हैं जिनके द्वारा परेशानी के समय में भी अपने मस्तिष्क को शांत रखा जा सकता है। इन तरीकों के लगातार अभ्यास से हम ऐसी अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं जहाँ कुछ गड़बड़ी तो होगी किंतु उसका नकारात्मक प्रभाव हमारे दिमाग़ की सतह पर उसी तरह रहेगा जैसे समुद्र की लहरें सतह पर उठती हैं किंतु उनका निचले स्तर पर कोई विशेष असर नहीं होता। हालाँकि मेरा अपना अनुभव बहुत थोड़ा है, मैंने इसे अपने थोड़े-से अभ्यास में सत्य पाया है। मुझे यदि कोई बुरी खबर मिलती है तो उस क्षण मेरे दिमाग़ में थोड़ी परेशानी हो सकती है किंतु वह बहुत जल्दी वहाँ से हट जाती है। किसी बात पर चिढ़ने से मुझे ग़ुस्सा आ सकता है लेकिन वह जल्दी ही दूर हो जाता है। उसका मेरे मस्तिष्क में अधिक गहराई से असर नहीं होता। घृणा नहीं होती। यह समय के साथ अभ्यास द्वारा हुआ है; यह रातोंरात नहीं होता।”

निश्चित रूप से नहीं होता। दलाई लामा अपने मस्तिष्क पर नियंत्रण पाने के लिए चार वर्ष की आयु से अभ्यास कर रहे हैं।

मस्तिष्क का नियमित प्रशिक्षण - ख़ुशी का उत्पन्न होना, विचारपूर्वक नकारात्मक मानसिकता को छोड़कर सकारात्मक मानसिकता को चुनने और उसपर ध्यान देने से मस्तिष्क की संरचना और उसके प्रकार्य के कारण सच्चा आंतरिक रूपांतरण संभव है। जन्म से ही हमारा मस्तिष्क कुछ विशेष स्वभावगत पैटर्न के साथ गठित होता है और हमारी प्रवृत्ति वातावरण को मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक रूप से प्रतिक्रिया देने की है जो हमें जीवित रहने में मदद करती है। ये मूलभूत निर्देश असंख्य तंतु कोशिका सक्रिय पैटर्न और

दिमागी कोशिकाओं के विशिष्ट संयोजन के रूप में कूटित होते हैं और यह किसी घटना, अनुभव या विचार के उत्पन्न होने पर प्रतिक्रिया देते हैं। परंतु हमारे दिमाग़ की बनावट गतिहीन नहीं है और वह इस तरह बँधी हुई भी नहीं है, जिसे बदला नहीं जा सकता। हमारे मस्तिष्क ख़ुश रहने के लिए मस्तिष्क का प्रशिक्षण भी अनुकूलनशील होते हैं। तंतुविज्ञानियों (न्यूरोसाइंटिस्ट) ने इस बात को दर्ज किया है कि मस्तिष्क नए इनपुट की प्रतिक्रिया स्वरूप नये ढाँचे, तंतु कोशिकाओं और न्यूरोट्रांसमीटरों (रसायन जो तंतु कोशिकाओं के बीच संदेश भेजते हैं) के नए संयोजन बना सकता है। वास्तव में, हमारे मस्तिष्क लचीले और परिवर्तनशील हैं जो नए विचारों तथा अनुभवों के अनुसार अपनी बुनावट को बदलते रहते हैं। सीखने की प्रक्रिया के फलस्वरूप, व्यक्तिगत न्यूरॉन के कार्य ही बदल जाते हैं जिससे उनके माध्यम से विद्युतीय संकेत अधिक सुगमता से भेजे जा सकते हैं। वैज्ञानिक मस्तिष्क की परिवर्तित हो जाने की इस जन्मजात क्षमता को "सुनम्यता" कहते हैं।

बनावट बदलने, नवीन तंत्रिका संबंध बनाने की मस्तिष्क की इस क्षमता को प्रयोग में दर्शाया जा चुका है जैसे कि नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेंटल हैल्थ के चिकित्सक डॉक्टर अवि कारने तथा डॉक्टर लेस्ली अंडरलाइडर ने एक प्रयोग में दर्शाया था। उस प्रयोग में, शोधकर्त्ताओं ने कुछ लोगों को अपनी उँगलियाँ चटकाने का एक साधारण संचालन कार्य करने को दिया और इस दौरान उन्होंने एमआरआई स्कैन द्वारा मस्तिष्क के उन हिस्सों का पता लगाया जो इस कार्य को करने में मदद कर रहे थे। उन लोगों ने उस उँगलियों वाले कार्य का लगातार चार सप्ताह तक अभ्यास किया और धीरे-धीरे उसे अधिक फुर्ती एवं दक्षता से करने लगे। चार सप्ताह के अंतराल के बाद, फिर से स्कैन किया गया और यह पाया गया कि उस कार्य के लिए प्रयोग किया जाने वाला मस्तिष्क का वह भाग पहले से अधिक बड़ा हो गया था। इससे यह पता लगा कि नियमित अभ्यास और उस कार्य को दोहराने से नई तंतु कोशिकाओं का विकास हो गया था और तंत्रिका संबंधों में पहले की अपेक्षा कुछ बदलाव आ गए थे।

मस्तिष्क की यह शानदार विशेषता इस संभावना का दैहिक आधार प्रतीत होती है कि हमारे मस्तिष्क में बदलाव आ सकता है। अपने विचारों को गति देकर तथा सोचने के नए तरीकों के अभ्यास द्वारा, हम अपनी तंतु कोशिकाओं के आकार और अपने मस्तिष्क के कार्य करने के तरीके को बदल सकते हैं। यह इस विचार का भी आधार है कि भीतरी रूपांतरण का आरंभ सीखने (नए इनपुट) की प्रक्रिया से होता है और उसमें धीरे-धीरे हमारी "नकारात्मक विचारधारा" (हमारे मौजूदा तंतु कोशिका सक्रियता पैटर्न की विशिष्टता) को "सकारात्मक विचारधारा" (नए तंत्रिका परिपथ का निर्माण) से बदलने का अनुशासन भी शामिल है। इसलिए, ख़ुशी पाने के लिए मस्तिष्क के प्रशिक्षण का विचार एक अत्यंत वास्तविक संभावना बन जाती है।

नैतिक अनुशासन

ख़ुशी पाने के लिए मस्तिष्क के प्रशिक्षण से संबंधित बाद में हुई एक चर्चा के दौरान, दलाई लामा ने बताया, "मेरे विचार से नैतिक व्यवहार अंदरूनी अनुशासन के प्रकार की एक अन्य विशेषता है जिससे ख़ुशी मिलती है। इसे नैतिक अनुशासन कहा जा सकता है। भगवान बुद्ध जैसे महान आध्यात्मिक गुरु हमें हितकर कार्य करने और अहितकर कार्यों से बचने की सलाह देते हैं। हमारा वह कार्य हितकर है अथवा अहितकर, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह कार्य दिमाग़ की अनुशासित अथवा अनुशासनहीन अवस्था से उत्पन्न हुआ है। ऐसा माना जाता है कि अनुशासित दिमाग़ ख़ुशी देता है और अनुशासनहीन मस्तिष्क से कष्ट उत्पन्न होते हैं। वास्तव में, मस्तिष्क को अनुशासित करना ही भगवान बुद्ध की शिक्षा का सार है।

"मैं जब अनुशासन की बात करता हूँ तो मेरा तात्पर्य स्वानुशासन से है, न कि उस अनुशासन से जो किसी के द्वारा आपके ऊपर ज़बर्दस्ती थोपा गया हो। साथ ही, मैं उस अनुशासन की भी बात कर रहा हूँ जिसका प्रयोग आपकी नकारात्मक विशेषताओं को दूर करने के लिए किया जाता है। किसी गुनाह करने वाले गिरोह को भी लूटपाट करने के लिए अनुशासित होना पड़ता है, किंतु ऐसा अनुशासन बेकार है।"

दलाई लामा ने एक पल के लिए बोलना बंद कर दिया और ऐसा लगा मानो वह चिंतन करते हुए अपने विचारों को एकत्रित कर रहे थे। या शायद, वह अंग्रेज़ी का कोई ख़ास शब्द सोच रहे थे। मुझे नहीं पता। परंतु जब वह रुके तो उनके साथ दोपहर में हुई चर्चा के विषय में सोचते हुए सीखने व अनुशासन से संबंधित उन सारी बातों में कुछ ऐसा था जो मुझे सच्ची ख़ुशी, आध्यात्मिक उत्थान एवं पूर्ण अंदरूनी रूपांतरण के ऊँचे लक्ष्यों की तुलना में बहुत थकाने वाला लग रहा था। ऐसा लगा कि ख़ुशी की तलाश एक ज़्यादा सहज प्रक्रिया होनी चाहिए।

इस विषय को उठाते हुए मैंने उन्हें बीच में टोका, "आप नकारात्मक भाव तथा व्यवहार को 'अहितकर' तथा सकारात्मक व्यवहार को 'हितकर' मानते हैं। इसके आगे आपने यह भी कहा कि अप्रशिक्षित या अनुशासनहीन दिमाग़ का परिणाम प्रायः नकारात्मक या अहितकर व्यवहार होता है और इसलिए हमें अपने सकारात्मक व्यवहार में वृद्धि करने के लिए स्वयं को सिखाना एवं प्रशिक्षित करना होगा।"

"परंतु मुझे यह बात परेशान करती है कि आपकी परिभाषा के अनुसार ऐसा स्वभाव जिससे कष्ट उत्पन्न हो, वह नकारात्मक या अहितकर स्वभाव होता है तथा ख़ुशी प्रदान करने वाला हितकारी स्वभाव होता है। आपकी बात भी यहाँ से शुरू होती है कि सभी प्राणी कष्ट से बचना और ख़ुशी पाना चाहते हैं - यह इच्छा अंतर्जात होती है और इसे सीखना नहीं पड़ता। फिर प्रश्न यह उठता है: यदि कष्ट से बचना हमारी स्वाभाविक इच्छा है तो हम आयु बढ़ने के साथ स्वतः और स्वाभाविक रूप से नकारात्मक एवं अहितकर व्यवहार से दूर क्यों नहीं रहते? और यदि हमारे लिए ख़ुशी चाहना भी स्वाभाविक है तो फिर हम स्वतः और स्वाभाविक रूप से सकारात्मक एवं हितकर व्यवहार के प्रति आकर्षित क्यों नहीं होते और इस तरह समय के साथ अधिक ख़ुश क्यों नहीं रह सकते? मेरा कहने का अर्थ है, यदि इस

तरह का हितकर व्यवहार स्वाभाविक रूप से ख़ुशी देता है और हम ख़ुश रहना चाहते हैं, तो क्या यह स्वाभाविक प्रक्रिया की तरह नहीं होना चाहिए? हमें इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए इतनी शिक्षा, प्रशिक्षण और अनुशासन की क्या आवश्यकता है?"

अपना सिर हिलाते हुए दलाई लामा ने उत्तर दिया, "पारंपरिक संदर्भ में भी अपने दैनिक जीवन में हम सफल और सुखी जीवन के लिए शिक्षा को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। और ज्ञान अपने आप नहीं प्राप्त होता। हमें प्रशिक्षण चाहिए; हमें एक नियोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि की आवश्यकता होती है। हमें यह पारंपरिक शिक्षा और प्रशिक्षण बहुत मुश्किल लगता है; अन्यथा छात्रों को छुट्टियों का इतनी बेसब्री से इंतज़ार क्यों रहता है? फिर भी हम जानते हैं कि इस प्रकार की शिक्षा सफल और सुखी जीवन के लिए ज़रूरी है।"

"इसी तरह हितकर कार्य करना सहज नहीं होता और इसके लिए हमें प्रशिक्षण की ज़रूरत होती है। आधुनिक समाज में ऐसा ही है क्योंकि इसमें हितकर कार्यों एवं अहितकर कार्यों से संबंधित प्रश्न - क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए - का विचार धर्म के दायरे में रहकर करने की प्रवृत्ति है। परंपरागत तौर पर यह निर्धारित करने का दायित्त्व धर्म पर है कि कौन-सी चीज़ हितकर है और कौन-सी हितकर नहीं है। हालाँकि आज के समाज में धर्म की प्रतिष्ठा और उसका प्रभाव कुछ कम हो गए हैं। इसी के साथ धर्मनिरपेक्ष नैतिकता जैसे किसी विकल्प ने उसका स्थान भी नहीं लिया है। इस कारण हितकर जीवन जीने की ज़रूरत पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। यही कारण है कि मुझे लगता है कि हमें कुछ विशेष प्रयास करके उस प्रकार का ज्ञान अर्जित करने की कोशिश करनी होगी। उदाहरण के लिए, हालाँकि मैं व्यक्तिगत तौर पर ऐसा मानता हूँ कि हमारा मानवीय स्वभाव मूल रूप से विनम्र और दयालु है, पर सिर्फ़ यही पर्याप्त नहीं है; हमें इस बात का बोध और इसके प्रति जागरूकता भी पैदा करनी होगी। सीखने व समझने की प्रक्रिया द्वारा स्वयं के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदलने से दूसरों के प्रति हमारे व्यवहार और जीवन को जीने के तरीके पर बहुत गहरा असर पड़ सकता है।"

छिद्रान्वेषी की भांति मैंने उनसे प्रश्न किया, "फिर भी आप पारंपरिक शैक्षणिक प्रशिक्षण की समरूपता का प्रयोग करते हैं। यह एक बात है। परंतु यदि आप कुछ इस प्रकार के व्यवहार की बात कर रहे हैं जिन्हें आप 'हितकर' या सकारात्मक कहते हैं और जिनसे ख़ुशी मिलती है तथा ऐसे व्यवहार जिनसे कष्ट मिलता है, तो फिर इनकी पहचान करने के लिए इतना सीखने की और नकारात्मक स्वभाव को दूर करके सकारात्मक स्वभाव का पालन करने के लिए इतने प्रशिक्षण की क्या आवश्यकता है? मेरा मतलब है कि यदि आप अपना हाथ आग में डालते हैं तो वह जल जाता है। आप उसे पीछे हटा लेते हैं और इससे आपको यह समझ में आ जाता है कि यह कार्य करने से कष्ट होता है। आग को दोबारा नहीं छूने के लिए आपको ज़्यादा सीखने या प्रशिक्षण लेने की ज़रूरत नहीं है।"

"तो फिर वह सभी व्यवहार या भाव, जिनसे कष्ट होता है, ऐसे ही क्यों नहीं हैं? उदाहरण के लिए, आपका मानना है कि ग़ुस्सा और घृणा साफ़ तौर पर नकारात्मक भाव हैं और अंत में कष्ट पहुँचाते हैं। परंतु क्रोध और घृणा को दूर करने के लिए व्यक्ति को उनके

हानिकारक प्रभावों को जानना क्यों ज़रूरी है? चूंकि गुस्से के कारण व्यक्ति के भीतर तत्काल एक असहज भाव पैदा हो जाता है और उस असहजता को महसूस करना निश्चय ही बहुत आसान होता है, तो फिर भविष्य में व्यक्ति उससे स्वाभाविक एवं सहज रूप से क्यों नहीं बच पाता?"

दलाई लामा ने मेरे तर्क को बहुत ध्यान से सुना और उनकी समझदार आँखें हल्की-सी फैल गईं मानो उन्हें मेरे प्रश्नों की सरलता पर हल्का-सा आश्चर्य हो रहा हो या वह उन सवालों से प्रसन्न हों। उसके बाद ज़ोरदार हँसी के साथ, पूरी सहृदयता से उन्होंने कहा: "जब आप ज्ञान से मिली आज़ादी या समस्या के समाधान की बात करते हैं तो आपको समझना होगा कि इसके कई स्तर होते हैं। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि पाषाण युग में मनुष्य को खाना पकाना नहीं आता था लेकिन उन्हें खाने की ज़रूरत तो महसूस होती थी तो वे जंगली जानवरों की तरह खाते थे। धीरे-धीरे उन्होंने खाना पकाना सीख लिया और फिर उसमें मसाले डालकर भोजन को स्वादिष्ट बना लिया और फिर उसने कई तरह के पकवान बनाए। अपने वर्तमान समय में भी, यदि हमें किसी ख़ास तरह की बीमारी है और ज्ञान से हमें पता लग जाता है कि किसी विशेष प्रकार का भोजन हमारे लिए ठीक नहीं है, तो फिर बेशक हमें उसे खाने की इच्छा हो रही हो, हम उसे नहीं खाते। इससे यह स्पष्ट होता है कि हमारा ज्ञान जितना परिष्कृत होगा, हम प्राकृतिक जगत के साथ उतना ही बेहतर व्यवहार कर पाएँगे।"

"आपको अपने व्यवहार के दीर्घावधि और अल्पावधि परिणामों का भी विश्लेषण करना होगा। उदाहरण के लिए, क्रोध पर काबू पाने के मामले में, जानवरों को ग़ुस्सा आता है, लेकिन वह नहीं समझते कि ग़ुस्से से नुकसान होता है। मनुष्यों के संदर्भ में हालाँकि एक अन्य स्तर होता है जहाँ आपके भीतर एक चेतना होती है जो आपको यह सोचने-समझने की अनुमति देती है कि ग़ुस्से से आपको हानि पहुँचती है। इसलिए, आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ग़ुस्सा हानिकारक होता है। आपके अंदर यह निष्कर्ष निकालने की क्षमता होनी चाहिए। तो यह उतना आसान नहीं है कि आपने एक बार आग में हाथ डाला, वह जल गया और फिर आपने यह सीख लिया कि ऐसा कभी दोबारा नहीं करना है। सुख और दुख के कारणों के बार में आपकी शिक्षा तथा ज्ञान जितना ज़्यादा परिष्कृत होगा, आपके लिए ख़ुशी पाना उतना ही प्रभावशाली हो जाएगा। इस कारण मुझे लगता है कि शिक्षा और ज्ञान महत्त्वपूर्ण हैं।"

मुझे लगा कि मैं लगातार सरल शिक्षा को भीतरी रूपांतरण का माध्यम मानने का विरोध कर रहा था, इसलिए उन्होंने कहा, "हमारे वर्तमान समाज की एक समस्या यह है कि शिक्षा को हम सिर्फ़ व्यक्ति को अधिक चतुर, अधिक निपुण बनाने का माध्यम समझते हैं। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि जो ज़्यादा शिक्षित नहीं हैं और शैक्षणिक प्रशिक्षण के संदर्भ में अधिक परिष्कृत नहीं हैं, वे लोग दूसरों की अपेक्षा ज़्यादा सीधे व ईमानदार होते हैं। हालाँकि हमारा समाज इस बात पर ज़ोर नहीं देता लेकिन ज्ञान और शिक्षा का सबसे ज़रूरी उपयोग यही है कि वह हमें अधिक हितकर कार्यों में प्रवृत्त होने के महत्त्व को समझाए तथा

हमारे मस्तिष्क को अनुशासित करे। हमारे ज्ञान व बुद्धि का सही उपयोग खुद को सहृदय बनाने के लिए अपने भीतर बदलाव लाना ही है।"

---

*धर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं किंतु इसका कोई सटीक अंग्रेज़ी समतुल्य नहीं है। इसका प्रयोग अधिकतर भगवान बुद्ध की शिक्षा और उनके सिद्धांतों को व्यक्त करने के साथ-साथ शास्त्र-सम्मत परंपरा तथा जीवन-शैली एवं इन सिद्धांतों के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले आध्यात्मिक बोध को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। कभी-कभी बौद्धधर्मी इस शब्द का प्रयोग अधिक सामान्य ढंग से - साधारण धार्मिक पद्धतियों, सार्वभौमिक आध्यात्मिक नियम अथवा किसी घटना की सच्ची प्रकृति को दर्शाने के लिए करते हैं। वह बौद्ध-धर्म शब्द का प्रयोग विशिष्ट रूप से बौद्ध मार्ग के सिद्धांतों एवं पद्धतियों के लिए भी करते हैं। संस्कृत शब्द धर्म का मूल अर्थ "धारण करना" होता है और इस संदर्भ में इस शब्द का व्यापक अर्थ है: ऐसा कोई भी स्वभाव या बोध जो "व्यक्ति को धारण कर सके" या व्यक्ति को कष्ट और उसके कारणों से बचा सके।

अध्याय 4

ख़ुश रहने की अपनी अंतर्जात अवस्था की पुनर्प्राप्ति

हमारा मूलभूत स्वभाव

"हम ख़ुशी पाने के लिए जन्मे हैं। यह बात स्पष्ट है कि प्रेम, स्नेह, आत्मीयता और करुणा के भाव से ख़ुशी मिलती है। मेरा मानना है कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति के पास ख़ुश रहने, ख़ुशी पैदा करने वाली आत्मीय व करुणामयी मानसिक अवस्था का आधार है," दलाई लामा ने कहा। "वास्तव में यह मेरी मूलभूत मान्यता है कि हमारे भीतर करुणा व्यक्त करने की अंतर्जात क्षमता है बल्कि मैं ऐसा मानता हूँ कि मनुष्यों का मूल स्वभाव शिष्टता है।"

"आपकी यह मान्यता किस बात पर आधारित है?"

"'बुद्ध स्वभाव' का बौद्ध सिद्धांत इस मान्यता के लिए थोड़ा आधार उपलब्ध करवाता है कि सभी चेतन प्राणियों का मूलभूत स्वभाव ग़ुस्सैल न होकर शांत होता है।* परंतु 'बुद्ध स्वभाव' के इस बौद्ध सिद्धांत को माने बिना भी व्यक्ति इसे अपना सकता है। इस बात को मानने के पीछे मेरे कुछ और भी कारण हैं। मुझे लगता है कि मानवीय स्नेह या करुणा का विषय सिर्फ़ एक धार्मिक मुद्दा नहीं है; यह व्यक्ति के दैनिक जीवन से जुड़ी अपरिहार्य बात है।"

"इसलिए सबसे पहले, यदि हम आरंभ से अपनी मृत्यु तक अपने जीवन के स्वरूप

पर ध्यान दें तो हम देख सकते हैं कि दूसरों से प्राप्त स्नेह के द्वारा किस तरह हमारा मूल रूप से पोषण होता है। यह जन्म के साथ शुरू होता है। जन्म के बाद हमारी सबसे पहली क्रिया यह होती है कि हम अपनी माँ का या किसी अन्य का दूध पीते हैं। यह स्नेह व करुणा प्रधान क्रिया है। इसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। इतना तो स्पष्ट है। यह क्रिया तब तक पूरी नहीं हो सकती जब तक परस्पर स्नेह का भाव न हो। बच्चे की ओर से यदि दूध देने वाले व्यक्ति के प्रति स्नेह का या किसी तरह के जुड़ाव का भाव न हो तो शायद वह बच्चा दूध भी न पिए। इसी तरह माँ या किसी ओर से स्नेही भाव के बिना दूध का बिना रुकावट उतरना संभव नहीं है। यही जीवन का तरीका है। यही सच्चाई है।"

"हमारी शारीरिक संरचना भी प्रेम एवं करुणा के भाव के अनुकूल बनी है। हम देख सकते हैं कि किस तरह मस्तिष्क की शांति, स्नेही और हितकारी अवस्था हमारे स्वास्थ्य पर लाभकारी प्रभाव डालती है। इसके विपरीत, खीज, डर, व्यग्रता और गुस्से के भाव हमारी सेहत के लिए हानिकारक हो सकते हैं।"

"हम यह भी देख सकते हैं कि हमारा भावनात्मक स्वास्थ्य स्नेह के भाव से उन्नत होता है। इसे समझने के लिए हमें सिर्फ़ यह सोचने की ज़रूरत है कि जब दूसरे लोग आत्मीयता व स्नेह दर्शाते हैं तो हमें कैसा लगता है। अथवा, हम यह देखें कि हमारी अपनी स्नेहमयी भावनाएँ या व्यवहार किस तरह स्वतः और स्वाभाविक ढंग से हमें भीतर से प्रभावित करता है और हमें कैसा महसूस होता है। इन शांत भावों और सकारात्मक व्यवहार से अधिक ख़ुशी पारिवारिक व सामाजिक जीवन की प्राप्ति होती है।"

"इसलिए मुझे लगता है कि हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि हमारा मूल मानवीय स्वभाव शिष्टता का है। यदि ऐसा है तो यह बात और भी तर्कसंगत लगती है कि हम ऐसा जीवन जीने का प्रयास करें जो हमारे शिष्ट स्वभाव के अनुकूल हो।"

"यदि हमारा मूल स्वभाव दया व करुणा का है," मैंने पूछा, "मैं यह सोच रहा हूँ तो आप अपने आस-पास के झगड़ों और ग़ुस्सैल स्वभाव को किस तरह समझते हैं।"

दलाई लामा एक क्षण के लिए रुककर सोचने लगे और फिर उन्होंने उत्तर दिया, "निश्चय ही हम इस बात को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते कि जब हम सामाजिक स्तर, राष्ट्रीय स्तर और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बातचीत करते हैं तो न सिर्फ़ दिमाग़ में बल्कि हमारे परिवारों में भी झगड़े और तनाव होते हैं। इसे देखते हुए कुछ लोग ऐसा समझ लेते हैं कि मानव स्वभाव मूलतः ग़ुस्सैल है। मानव इतिहास की ओर इशारा करते हुए, वे लोग ऐसा कह सकते हैं कि अन्य स्तनपायी प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य का व्यवहार अधिक ग़ुस्से वाला है। वे कह सकते हैं, हाँ, दया हमारे दिमाग़ का एक हिस्सा है। परंतु हमारे दिमाग़ में ग़ुस्सा भी होता है। ये दोनों समान रूप से हमारे स्वभाव का हिस्सा हैं दोनों ही लगभग एक ही स्तर पर मौजूद हैं।" उन्होंने अपनी कुर्सी पर बैठकर आगे की ओर झुकते हुए कहा, "मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मानव स्वभाव मुख्य रूप से दयालु और शिष्ट है। मनुष्य का यही प्रधान स्वभाव है। निश्चित रूप से ग़ुस्सा, हिंसा और आक्रामक स्वभाव पैदा हो सकते हैं लेकिन मेरा ऐसा मानना है कि ये सब गौण या काफ़ी हद तक ऊपरी तौर पर होते हैं; एक तरह से यह तब उठते हैं जब हम

प्रेम व स्नेह पाने के अपने प्रयासों से परेशान हो जाते हैं। ये सब हमारी मुख्य, मूल प्रकृति का हिस्सा नहीं हैं।”

“इसलिए, आक्रामक स्वभाव पैदा होने के बावजूद, मुझे लगता है कि ये झगड़े मुख्य रूप से मानव स्वभाव के कारण नहीं बल्कि मनुष्य की बुद्धि - असंतुलित मानव बुद्धि, अपनी बुद्धि और कल्पनाशील क्षमता के दुरुपयोग के कारण पैदा होते हैं। मानव विकास को देखते हुए मुझे लगता है कि कुछ अन्य पशुओं की तुलना में हमारा शरीर बहुत कमज़ोर हो सकता था। परंतु मानवीय बुद्धि के विकास की वजह से हम प्रतिकूल पर्यावरण स्थितियों पर काबू पाने के लिए अनेक उपकरणों व पद्धतियों को विकसित कर पाए हैं। जैसे-जैसे मानव समाज और पर्यावरण परिस्थितियाँ जटिल होती गईं, इस जटिल पर्यावरण की बढ़ती हुई ज़रूरतों की पूर्ति के लिए हमारी बुद्धि एवं संज्ञानात्मक क्षमता की भूमिका भी बड़ी होती गई। इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि हमारा मूल स्वभाव शिष्टता है और बुद्धि का विकास इसके बाद की अवस्था है। मैं ऐसा सोचता हूँ कि यदि वह मानव क्षमता, वह मानव बुद्धि असंतुलित रूप से बिना करुणा की लगाम लगाए विकसित होती चली गई तो यह क्षतिकारक हो सकती है। इसके कारण विनाश हो सकता है।”

“परंतु मुझे लगता है यह समझना ज़रूरी है कि यदि मानवीय झगड़े मनुष्य की बुद्धि के दुरुपयोग के कारण होते हैं तो हम इसी बुद्धि के उपयोग से इन झगड़ों पर काबू पाने के तरीके भी निकाल सकते हैं। जब मनुष्य की बुद्धि और उसके अच्छे स्वभाव या स्नेह का एकसाथ प्रयोग किया जाता है तो मनुष्य के सभी कार्य रचनात्मक बन जाते हैं। जब हम उदार हृदय को ज्ञान और शिक्षा के साथ जोड़ देते हैं तो हमें दूसरों के विचारों व उनके अधिकारों का सम्मान करना आ जाता है। यही समन्वय का आधार बनता है जिसे क्रोध पर काबू पाने और अपने झगड़ों को सुलझाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।”

दलाई लामा ने रुककर अपनी घड़ी की ओर देखा। “इसलिए,” उन्होंने बात समाप्त करते हुए कहा, “हमें कितनी भी हिंसा या बुरे अनुभवों से क्यों न गुज़रना पड़े, मेरा मानना है कि हमारे बाहरी एवं भीतरी झगड़ों का श्रेष्ठ समाधान अपने मूल शिष्ट तथा कृपालु स्वभाव की ओर लौटने में है।”

अपनी घड़ी की ओर फिर से देखते हुए वह मैत्रीपूर्ण ढंग से हँसने लगे। “तो... हम यहाँ रुकते हैं... अब काफ़ी देर हो चुकी है!” उन्होंने अपने जूते पहने, जो उन्होंने हमारी बातचीत के दौरान उतार दिए थे, और अपने कमरे में चले गए।

मानव स्वभाव का प्रश्न

पिछले कुछ दशकों में, मनुष्यों के मूलभूत करुण स्वभाव के बारे में दलाई लामा के विचार धीरे-धीरे पश्चिम में भी प्रचलित होने लगे हैं हालाँकि इसके लिए संघर्ष करना पड़ा है। यह धारणा कि मानव स्वभाव निश्चय ही स्वार्थपरक है, यह कि मूल रूप से हम सभी सिर्फ़ अपने लिए जीते हैं, पाश्चात्य विचारधारा में गहराई से समाहित है। हम लोग जन्म से ही स्वार्थी होते

हैं और क्रोध तथा झगड़ा करना हमारी मूल प्रकृति है, इस विचार ने कई शताब्दियों से हमारी संस्कृति को प्रभावित किया हुआ है। निश्चय ही, इतिहास के संदर्भ में, इसको विपरीत विचार रखने वाले बहुत-से लोग थे। उदाहरण के लिए 17वीं शताब्दी के मध्य में डेविड ह्यूम ने मनुष्यों की "प्राकृतिक उदारता" के विषय में बहुत कुछ लिखा था। एक शताब्दी बाद, चार्ल्स डार्विन ने भी "सहानुभूति के बोध" को हमारी प्रजाति का गुण बताया था। परंतु किसी कारण हम सत्रहवीं शताब्दी से लेकर अब तक थॉमस हॉब्स जैसे दार्शनिकों के प्रभाव में आकर, जो मानव प्रजाति के बारे में अत्यंत निराशाजनक विचार रखते थे, हमारी संस्कृति में मानवता के निराशावादी दृष्टिकोण ने जड़ें जमा ली हैं। उसने मनुष्य को हिंसक, प्रतिस्पर्द्धावादी और लगातार झगड़ने वाली और हमेशा अपने स्वार्थ में जीते देखा है। हॉब्स, जो हमेशा मूल मानवीय करुणा के विचार का विरोध करता था, एक बार सड़क पर किसी भिखारी को कुछ देते हुए पकड़ा गया था। जब उसके इस उदार व्यवहार के बारे में पूछा गया तो वह बोला, "मैं यह उसकी मदद करने के लिए नहीं कर रहा हूँ। मैं तो इस व्यक्ति की ग़रीबी देखकर अपने कष्ट को कम करने की कोशिश कर रहा हूँ।"

इसी तरह, उसी शताब्दी के आरंभिक भाग में स्पेन में पैदा हुए दार्शनिक जॉर्ज सेंटियाना ने लिखा कि मानव स्वभाव में मौजूद उदार, सहायक प्रवृत्तियाँ सामान्य तौर पर कमज़ोर, गायब हो जाने वाली और अस्थिर होती हैं परंतु "थोड़ा-सा नीचे कुरेदकर देखिए तो आपको उग्र, ज़िद्दी और अत्यंत स्वार्थी मनुष्य मिलेगा।" दुर्भाग्य से पाश्चात्य विज्ञान और दर्शन ने ऐसे ही विचारों को पकड़कर, उन्हें स्वीकृति दे दी और फिर इस स्वार्थपरक विचारधारा को प्रेरित किया। आधुनिक मनोविज्ञान के आरंभिक दिनों से शुरू हुई ऐसी सामान्य मूल मान्यता है, कि समस्त मानवीय प्रेरणा अंततः स्वार्थपरक है और विशुद्ध रूप से अपने हितों पर आधारित है।

अप्रत्यक्ष रूप से अपने स्वार्थ की मान्यता को स्वीकार करने के बाद बहुत से विख्यात वैज्ञानिकों ने पिछले सैकड़ों वर्षों में इसमें मनुष्यों के उग्र स्वभाव में विश्वास को जोड़ दिया है। फ्रायड का दावा था, "उग्रता के प्रति रुझान मौलिक, स्वावलंबी और सहजबोध परक स्थिति है।" इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विशेष रूप से दो लेखकों, रॉबर्ट आरड्री और कॉनराड लोरेंज़ ने किसी ख़ास परभक्षी प्रजाति के पशु स्वभाव का अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य भी मूलतः परभक्षी हैं जिनमें अपने इलाक़े के लिए झगड़ा करने की प्रवृत्ति जन्मजात और सहज है।

हालाँकि हाल के वर्षों में, समय मानवता के प्रति अत्यंत निराशावादी दृष्टिकोण के विपरीत हो गया है और दलाई लामा के मनुष्य की शिष्ट व दयालु प्रवृत्ति वाले नज़रिए के नज़दीक आ गया है। पिछले दो या तीन दशकों के दौरान सैकड़ों वैज्ञानिक अध्ययन हो चुके हैं जो यह दर्शाते हैं कि ज़रूरी नहीं कि उग्र स्वभाव जन्मजात हो और यह कि हिंसक व्यवहार के पीछे अनेक तरह के जीव-विज्ञान संबंधी, सामाजिक, परिस्थिति जनित और पर्यावरणीय कारण हो सकते हैं। हाल में हुए शोध पर शायद सबसे व्यापक वक्तव्य 1986 सैविल स्टेटमेंट ऑन वॉयलेंस में सार रूप में कहा गया था जिसे विश्व के बीस सर्वश्रेष्ठ

वैज्ञानिकों द्वारा तैयार एवं हस्ताक्षरित किया गया था। उस वक्तव्य में उन्होंने निश्चय ही यह माना कि हिंसक प्रवृत्ति मौजूद है किंतु उन्होंने यह बात स्पष्ट तौर पर कही कि यह कहना वैज्ञानिक दृष्टि से ग़लत होगा कि युद्ध करने या हिंसक होने की प्रवृत्ति हमारे अंदर जन्मजात होती है। इस तरह का व्यवहार मनुष्य के स्वभाव में अनुवांशिक तौर पर नहीं डाला गया होता है। उन्होंने कहा कि हालाँकि हमारे अंदर हिंसक होने की तंत्रिका प्रणाली मौजूद है, फिर भी यह व्यवहार अपने आप सक्रिय नहीं होता। हमारी तंत्रिका प्रणाली में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो हमें हिंसक व्यवहार करने के लिए मजबूर करती है। मूल मानव स्वभाव के विषय की जाँच करने के दौरान, इस क्षेत्र के अधिकतर शोधकर्त्ता ऐसा महसूस करते हैं कि हमारे भीतर शिष्ट एवं दूसरों की परवाह करने की क्षमता अथवा हिंसक व उग्र व्यक्ति बनने की क्षमता मौजूद है; दोनों में से किस आवेग पर ज़ोर दिया जाता है, यह मुख्यतः प्रशिक्षण का विषय है।

समकालीन शोधकर्त्ताओं ने न सिर्फ़ मानव की जन्मजात उग्रता के विचार का खंडन किया है बल्कि मनुष्यों का जन्म से ही स्वार्थी या अहंकारी होने वाले विचार का भी ज़ोरदार विरोध किया है। ऐरिज़ोना विश्वविद्यालय में सी. डेनियल बैटसन अथवा नैन्सी आइज़ेनबर्ग जैसे शोधकर्त्ताओं ने पिछले कुछ वर्षों में अनेक शोध किए हैं जो यह दर्शाते हैं कि मनुष्य का परोपकार के प्रति रुझान होता है। कुछ वैज्ञानिक, जैसे: समाजशास्त्री डॉ. लिंडा विल्सन यह खोजना चाहते हैं कि ऐसा क्यों होता है। उनका मानना है कि परोपकार जीवित रहने की हमारे मूल सहजबोध का अंश हो सकता है - यह उन पहले वाले दार्शनिकों के विचार के विपरीत था जो यह मानते थे कि शत्रुता और उग्रता ही हमारे जीवित रहने की प्रवृत्ति के प्रमाण हैं। सौ से अधिक प्राकृतिक आपदाओं को देखते हुए, डॉ. विल्सन ने पाया कि आपदा के शिकार व्यक्तियों के बीच परोपकार की भावना बहुत अधिक थी, जो स्वास्थ्य लाभ की प्रक्रिया का अंश प्रतीत हो रही थी। उन्होंने पाया कि एक-दूसरे की मदद करने के लिए मिलकर काम करने से उस आघात के बाद होने वाली मनोवैज्ञानिक समस्याओं को दूर रखने में सहायता मिल रही थी।

दूसरों के साथ मिलकर रहने, अपने और दूसरों के कल्याण के लिए काम करने की प्रवृत्ति मानव स्वभाव में गहराई से समाई हो सकती है, सुदूर अतीत में उसे इस तरह से तैयार किया गया कि जो लोग मिलकर व समूह का हिस्सा बनकर रहे, उनके जीवित बचने की संभावना अधिक थी। नज़दीकी सामाजिक संबंध स्थापित करने की यह ज़रूरत आज भी मौजूद है। डॉ. लैरी शेयरविट्ज़ आदि द्वारा किए गए अध्ययनों में, जिनमें हृदय रोग के कारणों पर विचार किया गया था, यह पाया गया कि जो लोग अपने ऊपर अधिक ध्यान देते हैं (जो लोग इंटरव्यू में अपने लिए "मैं", "मेरा" आदि सर्वनामों का प्रयोग करते हैं) वे यदि अपने स्वास्थ की देख-रेख भी करते हैं, तो भी उन्हें हृदय रोग होने की संभावना अधिक होती है। वैज्ञानिक ऐसा पाते हैं कि जो लोग कम सामाजिक संबंध रखते हैं, उनका स्वास्थ्य कमज़ोर होता है और उनमें दुखी रहने का स्तर तथा तनाव लेने की आदत भी ज़्यादा होती है।

आगे बढ़कर दूसरों की मदद करना संचार स्थापित करने के हमारे स्वभाव की तरह ज़रूरी है। भाषा के विकास के साथ इसकी तुलना की जा सकती है, जो करुणा और परोपकार की भांति मानव जाति का एक शानदार गुण है। मस्तिष्क के कुछ हिस्से विशेष रूप से भाषा के सामर्थ्य के लिए समर्पित होते हैं। यदि हमें सही ढंग की पर्यावरणीय परिस्थितियाँ मिलें, जैसे कि बातचीत करने वाला समाज, तो मस्तिष्क के वे हिस्से विकसित और परिपक्व होने लगते हैं और भाषा के प्रति हमारी क्षमता बढ़ जाती है। इसी तरह, सभी मनुष्यों में "दया के बीज" होते हैं। यदि सही परिस्थितियाँ मिलें - घर पर, समाज में और बाद में हमारे अपने प्रयासों से - तो वह "बीज" फलने-फूलने लगते हैं। इस विचार को ध्यान में रखते हुए, शोधकर्त्ता अब आदर्श पर्यावरणीय परिस्थितियों को खोजने का प्रयास कर रहे हैं जिनसे बच्चों में दूसरों की परवाह करने तथा दया के बीज का विकास हो सके। उन्होंने कई कारणों की खोज की है: ऐसे माता-पिता का होना जो अपनी भावनाओं पर काबू रख सकें, जो दूसरों की परवाह करने वाले स्वभाव को आदर्श मानें, जो बच्चों के व्यवहार को उचित दायरे में रख सकें, जो यह कहें कि बच्चा अपने व्यवहार के लिए स्वयं जिम्मेदार है और जो बच्चे का ध्यान भावनात्मक या गंभीर अवस्थाओं तथा उसके व्यवहार से दूसरों पर पड़ने वाले प्रभाव पर ले जा सकें।

मनुष्य के स्वभाव में अपनी मूल धारणाओं में संशोधन द्वारा, उसे उग्र के बजाय सहायक मानने से नवीन संभावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। यदि हम मानव स्वभाव के स्वार्थपरक मॉडल पर विचार करें तो एक शिशु इस सिद्धांत का "प्रमाण" है, इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है। जन्म के समय, शिशु के दिमाग़ में सिर्फ़ एक ही चीज़ होती है: उसकी अपनी ज़रूरतों की पूर्ति - भोजन, शारीरिक आराम आदि। परंतु यदि इस मूल स्वार्थपरक धारण को हम छोड़ दें तो एक नई तस्वीर उभरती है। हम यह बात बहुत आसानी से कह सकते हैं कि शिशु के जन्म के पीछे सिर्फ़ एक ही योजना होती है: दूसरों को सुख व ख़ुशी देने की क्षमता। स्वस्थ शिशु को सिर्फ़ देखने मात्र से मनुष्य के मूल सौम्य स्वभाव को स्वीकार करना बहुत आसान है। इस नए नज़रिए से इस बात का समर्थन किया जा सकता है कि अपनी देखभाल करने वाले किसी व्यक्ति को सुख प्रदान करने की क्षमता हमारे अंदर जन्मजात होती है। उदाहरण के लिए, नवजात शिशु में सूँघने की क्षमता किसी वयस्क की तुलना में सिर्फ़ 5 प्रतिशत होती है और स्वाद लेने की क्षमता भी बहुत कम होती है। परंतु इन दोनों का बोध स्तन के दूध की गंध और उसके स्वाद द्वारा ही प्रेरित होता है। स्तनपान से न सिर्फ़ शिशु को पोषक तत्त्व मिलते हैं, बल्कि इससे स्तनों में होने वाला दबाव भी कम हो जाता है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि शिशु के पास माँ के स्तनों में पैदा हुए दबाव को कम करके उसे सुख देने के जन्मजात क्षमता होती है।

शिशु के अंदर चेहरों को पहचानने और प्रतिक्रिया देने की क्षमता भी मौजूद होती है, और शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसे एक शिशु को भोलेपन से भरी आँखों से मुस्कराता देखकर सच्ची ख़ुशी न मिलती हो। कुछ धर्मशास्त्रियों ने तो इसे सिद्धांत में बदल दिया है और

वे कहते हैं कि जब कोई शिशु अपनी परवाह करने वाले की आँखों में देखता है तो वह अपने अंदर गहराई से समाई हुई एक “जैविक योजना” का पालन करता है और अपनी परवाह करने वाले के शिष्ट, मृदु एवं सौम्य स्वभाव को अत्यंत सहज-भाव से “बाहर निकालता” है। उस समय शिशु की परवाह करने वाला व्यक्ति भी उतने ही सहज भाव से उस सम्मोहक आदेश का पालन करता है। जैसे: कुछ अन्वेषक मनुष्य की प्रकृति को जानने का प्रयास कर रहे हैं, शिशु को स्वार्थ व खाने-सोने की मशीन समझने वाली अवधारणा के स्थान पर एक नया दृष्टिकोण तैयार हो रहा है कि वह प्राणी इस संसार में दूसरों को ख़ुशी देने के जन्मजात गुण के साथ आता है, और उसे सिर्फ़ उपयुक्त पर्यावरणीय परिस्थितियों की आवश्यकता होती है ताकि भीतर मौजूद प्राकृतिक “करुणा का बीज” अंकुरित तथा विकसित हो सके।

एक बार हम यह समझ लें कि मनुष्य का मूल स्वभाव उग्र न होकर करुणामय है, तो अपने आस-पास के संसार के साथ हमारा संबंध तत्काल बदल जाता है। दूसरे लोगों को स्वार्थी व उग्र न मानकर, कृपालु मानने से हमें शांत होने, विश्वास करने और सहज होकर जीने में मदद मिलती है। इससे हम ज़्यादा ख़ुश रहते हैं।

जीवन के उद्देश्य पर चिंतन

उस सप्ताह जिस दौरान दलाई लामा ऐरिज़ोना के रेगिस्तान में एक वैज्ञानिक की जाँच-पड़ताल के बीच मानव मस्तिष्क को जाँच रहे थे, एक सरल सत्य, जिसकी दमक से हर चर्चा प्रकाशित हो रही थी, वह यह था: हमारे जीवन का उद्देश्य ख़ुश रहना है। इस सरल वक्तव्य का जीवन की दैनिक समस्याओं से निपटने के लिए शक्तिशाली उपकरण की तरह प्रयोग किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से, हमारा काम यह है कि हम दुख देने वाली चीज़ों को दूर करें और सुखद चीज़ों का संग्रह करें। इस प्रक्रिया के प्रतिदिन अभ्यास के अंतर्गत हमें अपनी जागरूकता को बढ़ाना होता है कि किस चीज़ से हमें ख़ुशी मिलती है और किस से नहीं।

जब जीवन बहुत जटिल और हमारे ऊपर हावी होने लगता है, तो हमें प्रायः सिर्फ़ यह करना चाहिए कि हम अपने लक्ष्य, अपने उद्देश्य के बारे में स्वयं को याद दिलाते रहें। जब अवरोध या दुविधा की स्थिति पैदा होती है तो एक घंटा, एक दिन या कई दिन सिर्फ़ हमें यह सोचना चाहिए कि क्या चीज़ हमें ख़ुशी देगी और फिर उसी आधार पर अपनी प्राथमिकताओं को दोबारा निर्धारित करना चाहिए। इससे हमारे जीवन का सही संदर्भ लौट आता है, नया नज़रिया मिलता है और हमें अपने जीवन की दिशा निर्धारित करने में सहायता मिलती है।

समय-समय पर हमें महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं जो हमारे जीवन की गति को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, हम शादी करने, बच्चे पैदा करने या वकील, कलाकार बनने अथवा बिजली का काम सीखने के लिए कोई कोर्स करने जा सकते हैं। ख़ुश रहने का निश्चय - ख़ुशी पैदा करने वाले कारणों के बारे में जानना और फिर ज़्यादा ख़ुशहाल जीवन जीने के लिए सकारात्मक क़दम उठाना - ऐसा ही एक निर्णय है। ख़ुशी की ओर

चलने को वैध लक्ष्य मानना और व्यवस्थित तरीके से ख़ुशी की तलाश करने का निर्णय लेना हमारे शेष जीवन को काफ़ी बदल सकता है।

ख़ुशी देने वाले कारणों के संदर्भ में दलाई लामा की समझ इस बात पर आधारित है कि उन्होंने जीवन-भर अपने मस्तिष्क को सुनियोजित ढंग से देखा है, मनुष्य की स्थिति की खोज की है तथा पच्चीस शताब्दियों पहले भगवान बुद्ध द्वारा तैयार किए गए ढाँचे में इन चीज़ों की जाँच की है। इस पृष्ठभूमि से दलाई लामा ने कुछ ठोस निष्कर्ष निकाले हैं कि कौन-से काम और विचार सबसे ज़्यादा लाभकारी हैं। उन्होंने अपने विचारों का निम्नलिखित शब्दों में सार प्रस्तुत किया है जिसे चिंतन की तरह प्रयोग किया जा सकता है।

"कभी-कभी जब मैं अपने पुराने मित्रों से मिलता हूँ तो मुझे यह एहसास होता है कि समय कितनी जल्दी बीत जाता है। फिर मैं यह भी सोचता हूँ कि क्या हमने अपने समय का ठीक से उपयोग किया है या नहीं। समय का सदुपयोग बहुत ज़रूरी होता है। जब तक हमारे पास यह शरीर और विशेषकर यह आश्चर्यजनक मस्तिष्क है, मुझे लगता है कि हमारा प्रत्येक मिनट मूल्यवान है। हमारा दैनिक जीवन आशा से परिपूर्ण है हालाँकि भविष्य की कोई गारंटी नहीं है। इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि कल इस समय हम जीवित होंगे। फिर भी हम उसके लिए विशुद्ध रूप से उम्मीद के आधार पर कार्य करते रहते हैं। इसलिए, हमें अपने समय का पूरा सदुपयोग करना चाहिए। मेरे विचार से समय का सदुपयोग ऐसे होता है: यदि संभव हो तो अन्य लोगों की, चेतन प्राणियों की सहायता कीजिए। यदि नहीं, तो कम-से-कम उनका नुकसान मत कीजिए। मेरे ख़्याल से मेरे संपूर्ण दर्शन का बस यही आधार है।"

"तो हमें यह सोचना चाहिए कि जीवन में वास्तव में क्या चीज़ मूल्यवान है, जो हमारे जीवन को सार्थक बनाती है और उसके आधार पर हमारी प्राथमिकताओं का निर्धारण करती है। हमारे जीवन का उद्देश्य सकारात्मक होना चाहिए। हमारा जन्म दूसरों को परेशान करने या उन्हें नुकसान पहुँचाने के लिए नहीं हुआ। अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए, मेरे विचार से हमें अपने अंदर अच्छे मानवीय गुण विकसित करने चाहिए - आत्मीयता, दया, करुणा। तब जाकर हमारा जीवन सार्थक और अधिक शांतिपूर्ण - ज़्यादा सुखी बनता है।"

---

*बौद्ध दर्शन में, "बुद्ध स्वभाव" मस्तिष्क की मूलभूत और सबसे सूक्ष्म प्रकृति को दर्शाता है। सभी मनुष्यों में मौजूद यह मानासिक अवस्था नकारात्मक भावों या विचारों से पूरी तरह निष्कलंक होती है।

भाग 2

मानवीय आत्मीयता और करुणा

अध्याय 5

घनिष्ठता का नया मॉडल

अकेलापन और जुड़ाव

मैंने दलाई लामा के होटल के कमरे में प्रवेश किया और उन्होंने मुझे इशारे से बैठने को कहा। प्याली में जब चाय डाली जा रही थी तो उन्होंने बटरस्कॉच रंग का रॉकपोर्ट्स पहना और फिर बड़ी-सी कुर्सी में आराम से बैठ गए।

"तो?" उन्होंने सामान्य लहज़े में पूछा लेकिन उनका स्वर बता रहा था कि वे किसी भी प्रश्न के लिए तैयार थे। वे मुस्कराए किंतु कुछ नहीं बोले। वह प्रतीक्षा करते रहे।

होटल की लॉबी में बैठकर हमारी बातचीत शुरू होने से कुछ देर पहले मैंने यूँ ही कोई अख़बार उठा लिया जिसका "पर्सनल्स" (व्यक्तिगत) पन्ना खुला हुआ था। मैंने हर पन्ने पर संक्षेप में सघनता से छपे विज्ञापनों पर नज़र दौड़ाई थी जिनमें लोग एक-दूसरे को खोजने और परस्पर जुड़ने की तीव्र इच्छा रखे हुए थे। उन विज्ञापनों के विषय में सोचते हुए जब मैं दलाई लामा से बात करने के लिए बैठा, तो मैंने पहले से तैयार प्रश्नों की सूची को एक तरफ़ हटाकर रखने का फ़ैसला लिया और उनसे पूछा, "क्या आप कभी अकेलापन महसूस करते हैं?"

"नहीं," उन्होंने सहज ढंग से कहा। मैं इस उत्तर के लिए तैयार नहीं था। मुझे लग रहा था कि उनका उत्तर कुछ ऐसा होगा, "बिल्कुल... कभी-कभी तो हर व्यक्ति को अकेलापन महसूस होता है..." इसके बाद मैं उनसे यह पूछना चाहता था कि वह अपने अकेलेपन से कैसे निपटते हैं। मैंने किसी ऐसे व्यक्ति से बात करने के बारे में नहीं सोचा था जिसे कभी

अकेलापन महसूस ही न हुआ हो।

“नहीं?” मैंने अविश्वास से फिर पूछा।

“नहीं।”

“इसका क्या कारण है?”

उन्होंने एक पल के लिए सोचा। “मेरे ख़्याल से इसका एक कारण यह है कि मैं हर व्यक्ति को अधिक सकारात्मक नज़रिए से देखता हूँ, मैं उनके सकारात्मक पहलुओं पर ध्यान देता हूँ। ऐसा करने से तत्काल एक तरह का लगाव, एक किस्म का जुड़ाव स्थापित हो जाता है।”

“आंशिक रूप से इसका कारण यह भी हो सकता है कि मुझे इस बात का संदेह या डर कम होता है कि अगर मैं किसी ख़ास ढंग से व्यवहार करूँगा तो यह व्यक्ति मेरा सम्मान नहीं करेगा या फिर सोचेगा कि मैं विचित्र आदमी हूँ। मेरे मन में चूंकि इस तरह का संदेह या डर नहीं होता, इसलिए खुलापन अपने आप आ जाता है। मुझे लगता है कि यही मुख्य कारण है।”

इस तरह के व्यवहार की गुंजाइश और इसे अपनाने में आने वाली कठिनाई के बारे में सोचते हुए मैंने पूछा, “परंतु आप इस बारे में क्या सुझाव देते है कि लोगों के साथ इतना सहज महसूस करने या फिर अन्य लोगों द्वारा नापसंद अथवा परखे जाने का संदेह या डर न होने की क्षमता कैसे विकसित की जा सकती है? इस तरह के व्यवहार को विकसित करने के आम आदमी के लिए क्या कोई विशिष्ट तरीके हैं?”

“मेरी मूल मान्यता यह है कि आपको सबसे पहले करुणा की उपयोगिता को समझना होगा,” उन्होंने अत्यंत विश्वास से कहा। “यह प्रमुख बात है। एक बार आप यह स्वीकार कर लें कि करुणा का भाव कोई बचकानी या भावुक चीज़ नहीं है, एक बार आपको यह समझ आ जाए कि करुणा का भाव सचमुच बहुत महत्त्वपूर्ण है और इसका सही मूल्य पता लग जाए तो आपके अंदर इसके प्रति तुरंत आकर्षण पैदा हो जाएगा और आप इसे विकसित करने के लिए तैयार हो जाएँगे।”

“एक बार आपके मस्तिष्क में करुणा के विचार को बढ़ावा मिल जाए, एक बार यह अत्यंत सक्रिय हो जाए, तो फिर दूसरों के प्रति आपका व्यवहार अपने आप बदल जाता है। अगर आप करुणामय व्यवहार के साथ दूसरों से बात करेंगे तो इससे डर अपने आप कम होने लगेगा तथा अन्य लोगों के साथ खुलापन विकसित हो जाएगा। इससे मैत्रीपूर्ण और सकारात्मक माहौल बनता है। किसी भी संबंध में इस तरह के व्यवहार के साथ आप पहल कर सकते हैं, जिसमें आप स्वयं सामने वाले व्यक्ति से स्नेह या सकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त करने की संभावना तैयार कर सकते हैं। इस तरह के व्यवहार के बाद भी अगर सामने वाला आपके साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार नहीं करता या सकारात्मक ढंग से आपको जवाब नहीं देता तो कम-से-कम आपने तो उससे खुलेपन से बात करने की कोशिश की और इसी कारण आपको यह छूट और आज़ादी प्राप्त है कि आप आवश्यकतानुसार अपने व्यवहार में बदलाव

ला सकते हैं। इस तरह के खुलेपन से आपको उनके साथ सार्थक बातचीत करने की संभावना उपलब्ध हो जाती है। परंतु करुणामयी व्यवहार के अभाव में, यदि आप परेशान, चिड़चिड़े और विरक्त हो गए हैं तो अपने सबसे अच्छे मित्र के साथ बतचीत करने में भी आपको असहज महसूस हो सकता है।"

"मेरे विचार से बहुत-से मामलों में लोग स्वयं सकारात्मक संभावना तैयार करने के बजाय पहले सामने वाले से सकारात्मक प्रतिक्रिया की अपेक्षा रखते हैं। मुझे लगता है कि यह ग़लत है; इससे समस्याएँ पैदा हो सकती हैं जो बाधा बनकर हमें दूसरों से दूर कर सकती हैं। इसलिए यदि आप अलगाव और अकेलेपन के भाव से बचना चाहते हैं तो मेरे ख़्याल से आपका मूल व्यवहार बहुत मायने रखता है। ऐसा करने के लिए लोगों से बात करते समय मस्तिष्क में करुणा का भाव रखना सबसे अच्छा तरीका है।"

दलाई लामा के इस दावे पर कि उन्हें कभी अकेलापन नहीं लगा मुझे उतना ही आश्चर्य हुआ जितना विश्वास मुझे अपने समाज में व्याप्त अकेलेपन पर है। यह विश्वास सिर्फ़ मेरे अपने अकेलेपन के भाव से या मेरे मनोवैज्ञानिक व्यवसाय के मूल में व्याप्त अकेलेपन के सूत्र से उत्पन्न नहीं हुआ है। पिछले बीस वर्षों में, मनोवैज्ञानिकों ने अकेलेपन का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करना आरंभ किया है और इस बीच उन्होंने इस विषय पर अनेक सर्वे एवं अध्ययन किए हैं। इन सभी अध्ययनों से एक बात बहुत साफ़ निकलकर आई है कि सभी लोगों ने सचमुच अकेलेपन को अतीत में या वर्तमान में महसूस किया है। एक बड़े सर्वे में अमरीका के एक-चौथाई वयस्कों ने यह बताया कि पिछले दो सप्ताह में कम से कम एक बार उन्हें अत्यधिक अकेलापन महसूस हुआ है। हालाँकि हम प्रायः ऐसा सोचते हैं कि बहुत ज़्यादा अकेलापन विशेष रूप से, खाली घरों या नर्सिंग होम के आँगन में रहने वाले बुज़ुर्गों में पाया जाता है, किंतु शोध से पता चलता है कि वयस्कों को भी बुज़ुर्गों जितना ही अकेलापन महसूस होता है।

अकेलेपन की इतनी व्यापक स्तर पर मौजूदगी के चलते अन्वेषकों ने उन जटिल कारणों को खोजना शुरू कर दिया है जिनसे अकेलापन होता है। उदाहरण के लिए, उन्होंने पाया है कि अकेलेपन से ग्रस्त लोगों को अपने विषय में बताने में दिक्कत होती है, दूसरे लोगों के साथ संपर्क करने में कठिनाई होती है, वह अच्छे श्रोता नहीं होते और उनमें कुछ विशिष्ट सामाजिक कौशल, जैसे: वार्तालाप के संकेतों को भाँपने (यह पता होना कि सिर कब हिलाना है, उचित ढंग से उत्तर देना या चुप रहना) का अभाव होता है। इस शोध से पता लगता है कि अकेलेपन को दूर करने का एक उपाय इन सामाजिक कुशलताओं में सुधार करना है। हालाँकि, दलाई लामा का तरीका इन सामाजिक कुशलताओं अथवा बाहरी व्यवहार में सुधार करना नहीं है, बल्कि वह ऐसी पद्धति का समर्थन करते हैं जो सीधी दिल में उतर जाए- करुणा के महत्त्व को समझना और फिर उसे विकसित करना।

शुरू में मेरे आश्चर्यचकित होने के बावजूद, जब मैंने उन्हें आस्था के साथ सुना तो मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया कि वह कभी अकेले नहीं होते। उनके इस दावे के समर्थन में प्रमाण

भी मौजूद था। मैंने कई बार उन्हें किसी अजनबी से पहली बार बात करते देखा था, जो कि हमेशा सकारात्मक होता था। धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि यह सकारात्मक बातचीत संयोगवश या सिर्फ़ स्वाभाविक तौर पर मैत्रीपूर्ण व्यक्तित्व के कारण नहीं होती थी। मुझे समझ में आया कि उन्होंने अपना बहुत-सा समय करुणा के महत्त्व पर विचार करने, उसे ध्यान से विकसित करने और अपने दैनिक अनुभव को अधिक समृद्ध बनाने में बिताया था। उन्होंने इससे ज़मीन को अधिक उर्वर तथा दूसरों से सकारात्मक संवाद के लिए तैयार किया था- ऐसा तरीका जिसका प्रयोग अकेलेपन से परेशान कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

दूसरों पर निर्भरता बनाम आत्म-निर्भरता

“सभी मनुष्यों में परिपूर्णता का बीज होता है। हालाँकि हमारे दिल और दिमाग़ में अंतर्जात रूप से मौजूद उस बीज को सक्रिय होने के लिए करुणा की आवश्यकता होती है...” इसी के साथ दलाई लामा ने शांत सभा के सामने करुणा का विषय प्रस्तुत कर दिया। पंद्रह सौ लोगों की सभा को संबोधित करते हुए जिसमें बड़ी संख्या में बौद्ध धर्म के विद्यार्थी थे, उन्होंने फिर पुण्य की सत्ता संबंधी बौद्ध सिद्धांत पर चर्चा करना आरंभ कर दिया।

बौद्ध संदर्भ में, पुण्य को व्यक्ति के दिमाग़ पर सकारात्मक छवि या “मानसिक अविछिन्नता” के रूप में दर्शाया जाता है जो सकारात्मक कार्यों के परिणामस्वरूप बनते हैं। दलाई लामा ने समझाया कि फील्ड ऑफ़ मेरिट एक स्रोत या आधार है जहाँ से व्यक्ति पुण्य को प्राप्त कर सकता है। बौद्ध सिद्धांत के अनुसार यह व्यक्ति के पुण्य का भंडार घर है जो मनुष्य के भावी पुनर्जन्मों के विषय में अनुकूल परिस्थितियाँ निर्धारित करता है। उन्होंने समझाया कि बौद्ध सिद्धांत में दो तरह की पुण्य सत्ताएँ होती हैं: भगवान बुद्ध की सत्ता और प्राणियों का सत्ता। पुण्य को अर्जित करने का एक तरीका ज्ञान-प्राप्त बुद्ध पुरुषों में विश्वास और भरोसा पैदा करना है। इसका दूसरा तरीका दया, उदारता और सहनशीलता आदि गुणों का अभ्यास करना तथा हत्या, चोरी और झूठ बोलने जैसे नकारात्मक कार्यों पर रोक लगाना है। पुण्य प्राप्त करने के इस दूसरे तरीके में बुद्ध पुरुषों की अपेक्षा सामान्य लोगों के साथ बातचीत करनी होती है। इस आधार पर, दलाई लामा ने कहा कि पुण्य प्राप्त करने में दूसरे लोग हमारे लिए बहुत उपयोगी हो सकते हैं।

दलाई लामा ने जब अन्य लोगों को पुण्य की सत्ता के बारे में बताया तो उसमें भी एक सुंदर लयबद्ध गुण था जिसने उसे कल्पना से समृद्ध कर दिया था। उनके सरल तर्क और दृढ़ विश्वास ने मिलकर उस दिन दोपहर में उनकी वार्ता को एक विशेष शक्ति एवं प्रभाव प्रदान कर दिया था। मैंने कमरे में चारों ओर देखा कि बहुत से श्रोता भावुक हो गए थे। मैं कुछ कम अभिभूत था। हमारे बीच पहले हुई कुछ बातचीत के कारण मैं करुणा के गहन प्रभाव को समझा पाने की आरंभिक दशा में था, फिर भी मुझ पर वर्षों के तर्क, वैज्ञानिक सोच का इतना अधिक प्रभाव था कि दया व करुणा के विषय में कोई भी बात मुझे बहुत ज़्यादा भावुक नहीं कर पाती थी। उनकी बात सुनते समय मेरा दिमाग़ भटक रहा था। मैं उस बीच

कमरे में चारों ओर नज़र दौड़ाकर वहाँ मौजूद प्रसिद्ध, रोचक व परिचित चेहरों को खोज रहा था। वार्ता से पहले मैंने खाना ज़्यादा खा लिया था जिसके कारण मुझे नींद आ रही थी। मैं उनकी बात पर ध्यान नहीं दे पा रहा था। बीच में मेरे मस्तिष्क ने उन्हें यह कहते सुना, "... मैंने एक दिन सुखी और ख़ुशहाल जीवन जीने के लिए आवश्यक बातों के बारे में चर्चा की थी। अच्छा स्वास्थ्य, भौतिक सुख, मित्र आदि। अगर आप ध्यान से देखें तो आप पाएँगे कि ये सब चीज़ें दूसरों पर निर्भर हैं। अच्छे स्वास्थ्य के लिए आप दूसरों की बनाई अच्छी दवाओं तथा दूसरों द्वारा दी जाने वाली चिकित्सा सेवा पर निर्भर करते हैं। अगर आप उन सब भौतिक चीज़ों को देखें जिनसे आपको जीवन में आराम मिलता है, तो आप पाएँगे कि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसका संबंध दूसरों से नहीं है। ध्यान से सोचने पर आपको लगेगा कि ये सभी वस्तुएँ हमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दूसरों के प्रयासों के फलस्वरूप ही मिलती हैं। इन चीज़ों को संभव बनाने में कई लोगों का योगदान होता है। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि जब हम ख़ुश रहने के लिए अच्छे मित्रों व साथियों की बात करते हैं तो हम निश्चित ही अन्य प्राणियों से बातचीत करने के विषय में कह रहे हैं।"

"इस तरह आप देख सकते हैं कि ये सब कारण अन्य लोगों के प्रयास एवं सहयोग के साथ जुड़े हुए हैं। हम दूसरों के बिना नहीं रह सकते। इसलिए इस तथ्य के बावजूद कि अन्य लोगों के साथ बातचीत से मुश्किलें, झगड़े और लड़ाइयाँ होती हैं, हमें मित्रता व आत्मीयता का व्यवहार बनाए रखना पड़ता है ताकि हम अन्य लोगों के साथ बातचीत करते हुए भी ख़ुशी से अपना जीवन जी सकें।"

उन्हें सुनते हुए मेरे मन में सहज रूप से विरोध उत्पन्न हो रहा था। हालाँकि मैंने हमेशा अपने मित्रों व परिवार को महत्त्व दिया है तथा मुझे उनके साथ अच्छा लगता है, मैं स्वयं को स्वतंत्र मनुष्य मानता रहा हूँ। आत्मनिर्भर। वास्तव में मुझे अपने इस गुण पर गर्व होता है। मैं मन ही मन, ऐसे लोगों के लिए तिरस्कार का भाव रखता हूँ जो ज़रूरत से ज़्यादा निर्भर होते हैं- जो कमज़ोरी का प्रतीक हैं।

हाँ, उस दिन दोपहर में जब मैंने दलाई लामा को सुना तो कुछ हुआ। "दूसरों पर हमारी निर्भरता" मेरा पसंदीदा विषय नहीं है, मेरा मन फिर भटकने लगा और मैंने पाया कि मैं अनजाने में अपनी कमीज़ से लटक रहे धागे को खींच रहा था। एक पल के लिए मेरा ध्यान गया तो मैंने उन्हें उन लोगों के बारे में बोलते सुना जो हमारे लिए भौतिक सुविधाओं को जुटाने में योगदान देते हैं। जब वे यह बात कर रहे थे तो मैं सोचने लगा कि कितने लोगों ने मिलकर मेरी कमीज़ बनाई होगी। मैं उस किसान के बारे में सोचने लगा जिसने कपास उगाई होगी। उसके बाद, वह सेल्समैन जिसने उस किसान को खेत जोतने के लिए ट्रैक्टर बेचा होगा। फिर वह सैकड़ों या हज़ारों लोग जिन्होंने वह ट्रैक्टर बनाया होगा और वे लोग जिन्होंने उस ट्रैक्टर के प्रत्येक धातु से बने पुर्जे के लिए ज़मीन से अयस्क का खनन किया होगा। उस ट्रैक्टर की डिज़ाइन बनाने वाले लोग। इसके बाद, वे सब लोग जिन्होंने कपास को संसाधित किया होगा, जिन्होंने कपड़ा बुना होगा और वे लोग जिन्होंने कपड़े को काटा, रंगा और सिला होगा। कार्गो कर्मचारी तथा ट्रक चालक जो उस कमीज को लेकर दुकान तक लाए होंगे और

वह सेल्समैन जिसने वह कमीज़ मुझे बेची होगी। सहसा मुझे लगा कि मेरे जीवन का हर पहलू दूसरों के प्रयासों का ही परिणाम है। आत्म-निर्भरता की मेरी मूल्यवान धारणा सिर्फ़ एक भ्रम है, एक कल्पना। जब मुझे यह बात समझ में आई तो मेरे ऊपर अंतर्संबंधों तथा अंतर्निर्भरता का गहन भाव व्याप्त हो गया। मैं कुछ हल्का महसूस करने लगा। कुछ हुआ। मुझे नहीं पता। मेरा रोने का मन कर रहा था।

घनिष्ठता

हमें दूसरे लोगों की ज़रूरत है, इस बात में विरोधाभास है। जहाँ हमारी संस्कृति भीषण स्वतंत्रता के उत्सव में जकड़ी हुई है, वहीं हम अपने किसी प्रियजन के साथ घनिष्ठता तथा संबंध भी बनाना चाहते हैं। हम अपना सारा ध्यान उस एक व्यक्ति को खोजने में लगा देते हैं जिससे हमें यह उम्मीद होती है कि वह हमारे अकेलेपन को दूर कर देगा और फिर भी हम यह भ्रम पालते हैं कि हम आत्मनिर्भर हैं। हालाँकि एक व्यक्ति के साथ भी यह संबंध बनाना मुश्किल होता है। मैंने पाया कि दलाई लामा अधिक से अधिक लोगों के साथ घनिष्ठता बनाने की सलाह देते हैं और वह स्वयं भी ऐसा करने में सक्षम हैं। वास्तव में, उनका उद्देश्य ही सबके साथ जुड़ना है।

एक दिन दोपहर में, ऐरिज़ोना के उनके होटल के कमरे में उनसे मिलकर मैंने कहा, "कल दोपहर में लोगों से बात करते समय आप दूसरों के महत्त्व के बारे में बता रहे थे और उसे पुण्य की सत्ता कह रहे थे। परंतु दूसरों के साथ अपने संबंधों की जाँच करते समय, ऐसे बहुत-से तरीके हैं जिनसे हम एक-दूसरे से जुड़ सकते हैं, अनेक तरह के संबंध बना सकते हैं..."

"बिल्कुल ठीक है," दलाई लामा ने कहा।

"उदाहरण के लिए, एक ख़ास तरह का संबंध, जिसका पश्चिम में बहुत महत्त्व है," मैंने कहा। "यह ऐसा संबंध है जिसमें दो लोगों के बीच बहुत गहरी घनिष्ठता का भाव शामिल है, इसमें एक विशेष व्यक्ति के साथ आप अपने अत्यंत निजी भाव जैसे भय, आदि भी साझा कर सकते हैं। लोगों को लगता है कि अगर उनका इस तरह का संबंध नहीं है तो उनके जीवन में किसी चीज़ की कमी है... वास्तव में, पाश्चात्य मनोचिकित्सा प्रायः लोगों को यह सीखने में मदद करती है कि इस तरह का घनिष्ठ संबंध कैसे बनाया जाए ..."

"हाँ, मैं मानता हूँ कि इस प्रकार की घनिष्ठता को सकारात्मक ढंग से देखा जा सकता है," दलाई लामा ने माना। "मुझे लगता है यदि कोई इस तरह की घनिष्ठता से वंचित रहता है तो उससे समस्याएँ हो सकती हैं..."

"फिर तो मैं यह सोच रहा हूँ...," मैंने कहा, "जब आप तिब्बत में रह रहे थे तो आपको न सिर्फ़ राजा माना जाता था बल्कि लोग आपको देवता समझते थे। मैं यह मानता हूँ कि लोग आपसे विस्मित थे, शायद आपकी मौजूदगी में वे कुछ घबराए या डरे हुए रहते थे। क्या इसके कारण आप दूसरों से भावनात्मक ढंग से दूर नहीं हो गए, अलगाव का भाव?

अपने परिवार से अलग होना, बचपन से भिक्षु की तरह बड़े होना, विवाह न करना आदि- क्या इन सब बातों से दूसरों से दूर होने का भाव प्रबल नहीं होता? क्या आपको कभी लगता है कि आप दूसरे लोगों के साथ या किसी विशेष व्यक्ति, जैसे: पत्नी के साथ घनिष्ठता का गहन भाव विकसित नहीं कर सके?"

उन्होंने बिना संकोच उत्तर दिया, "नहीं। मुझे कभी घनिष्ठता का अभाव महसूस नहीं हुआ। बहुत साल पहले मेरे पिता का निधन हो गया था, किंतु मैं अपनी माँ, अपने शिक्षकों, अपने गुरुओं और अन्य लोगों के बहुत निकट रहा हूँ। इनमें से बहुत-से लोगों के साथ मैं अपनी भावनाएँ, भय और चिंताएँ साझा कर सकता था। जब मैं तिब्बत में था तो राजकीय और सार्वजनिक कार्यक्रमों में थोड़ी औपचारिकता रहती थी, कुछ हद तक नवाचार का ध्यान रखा जाता था किंतु हमेशा ऐसा नहीं होता था। उदाहरण के लिए, अन्य मौकों पर मैं अपना समय रसोईघर में बिताता था और इसलिए रसोईघर के कर्मचारियों के साथ मेरी घनिष्ठता हो गई थी तथा हम लोग मज़ाक, गपशप और बातें साझा कर लिया करते थे। यह सब औपचारिकता या दूरी के भाव के बिना बहुत आराम से हो जाता था।"

"मैं जब तिब्बत में था या मैं जब से शरणार्थी बना, मुझे बात करने के लिए लोगों की कमी कभी महसूस नहीं हुई। मुझे लगता है कि इसका एक बड़ा कारण मेरा स्वभाव है। मेरे लिए लोगों के साथ बातचीत करना आसान है; मैं कुछ छिपा कर नहीं रख पाता!" वह हँसने लगे। "निश्चित ही, कभी-कभी यह हानिकारक भी होता है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि कशाग (तिब्बत की निर्वासित सरकार का मंत्रिमंडल) में कुछ गोपनीय मुद्दों पर चर्चा हो रही हो और मैं बाद में उन बातों को दूसरों के साथ साझा कर बैठूँ। परंतु व्यक्तिगत स्तर पर खुलापन होना और बातचीत करना बहुत उपयोगी हो सकता है। अपने इस स्वभाव के कारण मैं बहुत आराम से मित्र बना लेता हूँ और यह सिर्फ़ लोगों को जानने या ऊपरी तौर पर बातचीत करने का प्रश्न नहीं है, बल्कि अपनी बेहद ज़रूरी समस्याओं व कष्टों को साझा करने की बात है। यही बात कोई ख़ुशख़बरी सुनने पर होती है। मैं उसे तुरंत दूसरों के साथ बाँट लेता हूँ। इससे मुझे अपने मित्रों के साथ घनिष्ठता और जुड़ाव महसूस होता है। निश्चित तौर पर, कभी-कभी मेरे लिए लोगों के साथ यह संबंध स्थापित करना सरल हो जाता है क्योंकि वे लोग 'दलाई लामा', 'परम पावन दलाई लामा' के साथ अपने सुख-दुख बाँटने में ख़ुशी महसूस करते हैं।" अपनी उपाधि पर ज़ोर देते हुए वे हँसने लगे। "जो भी हो, मैं यह संबंध और लगाव का भाव बहुत-से लोगों के साथ महसूस करता हूँ। उदाहरण के लिए, पहले जब मैं तिब्बती सरकार की नीतियों से उदास या नाख़ुश होता था या मैं अन्य समस्याओं, यहाँ तक कि चीनी आक्रमण को लेकर चिंतित होता था, तो मैं अपने कमरे में लौटकर इस बात को अपना कमरा साफ़ करने वाले व्यक्ति से भी बाँट लेता था। एक दृष्टिकोण से कुछ लोगों को यह बहुत मूर्खतापूर्ण लग सकता है कि तिब्बती सरकार के प्रमुख, दलाई लामा, राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को किसी सफ़ाई कर्मचारी के साथ साझा कर रहे थे।" वह एक बार फिर हँसे। "परंतु निजी तौर पर यह बहुत उपयोगी है क्योंकि फिर सामने वाला व्यक्ति भी चर्चा में भाग लेता है और हम मिलकर उस समस्या या कष्ट का सामना कर सकते हैं।"

घनिष्ठता की परिभाषा का विस्तार

मानवीय संबंधों के क्षेत्र में काम करने वाले लगभग सभी शोधकर्त्ता इस बात को स्वीकार करते हैं कि घनिष्ठता हमारे अस्तित्व का केंद्र है। प्रभावशाली ब्रिटिश मनोविश्लेषक जॉन बोलबाय ने लिखा, "अन्य मनुष्यों के साथ घनिष्ठ लगाव ही वह केंद्र है जिसके इर्द-गिर्द हर व्यक्ति का जीवन घूमता है... इन्हीं घनिष्ठ संबंधों से व्यक्ति शक्ति और ख़ुशी प्राप्त करता है और वह जो योगदान देता है, उसी से वह दूसरों को शक्ति और आनंद प्रदान करता है। इन मुद्दों पर मौजूदा विज्ञान और पारंपरिक समझ एकमत हैं।"

यह स्पष्ट है कि घनिष्ठता से शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। घनिष्ठ संबंधों के स्वास्थ्य लाभ को देखने के दौरान चिकित्सा शोधकर्त्ताओं ने पाया कि जिन लोगों के घनिष्ठ मित्र होते हैं, जिनसे उन्हें समर्थन, सहानुभूति और स्नेह मिलता है, उनके लिए हृदयाघात और बड़ी शल्य-चिकित्सा जैसी स्वास्थ्य चुनौतियों को झेलना अधिक सहज होता है और उन्हें कैंसर तथा श्वास संक्रमण जैसे रोग होने की संभावनाएँ कम होती हैं। उदाहरण के लिए, ड्यूक युनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर में हज़ार से ज़्यादा हृदय रोगियों पर हुए अध्ययन से पता लगा कि जो लोग विवाहित थे या जिनका कोई नज़दीकी मित्र था, उनकी तुलना में जिन लोगों के जीवन साथी या कोई नज़दीकी विश्वासपात्र नहीं था, उनके हृदय रोग का पता लगने के पाँच वर्ष के भीतर मर जाने की संभावना तीन गुना अधिक थी। अलमेदा काउंटी, कैलिफोर्निया के हज़ारों निवासियों पर नौ वर्षों की अवधि में हुए एक अन्य अध्ययन से पता लगा कि ज़्यादा सामाजिक सहयोग और घनिष्ठ संबंधों वाले लोगों में कुल मृत्यु दर और कैंसर की दर कम थी। नेब्रासाका स्कूल ऑफ़ मेडिसन में अनेक वृद्ध लोगों पर हुए एक अध्ययन से पाया गया कि जिनके घनिष्ठ संबंध थे, उनकी रोग-निरोधक क्षमता अधिक तथा कोलेस्ट्रोल की मात्रा कम थी। पिछले कई वर्षों में बहुत-से विभिन्न शोधकर्त्ताओं ने कम से कम आधा दर्जन बड़े स्तर के अन्वेषण किए हैं जिनमें उन्होंने घनिष्ठता और स्वास्थ्य के बीच के संबंध को समझा है। हज़ारों लोगों से बात करने के बाद सभी अन्वेषकों का एक ही मत है: घनिष्ठ संबंधों से निश्चित तौर पर स्वास्थ्य बेहतर होता है।

घनिष्ठता भी अच्छे भावनात्मक स्वास्थ्य जितनी ही महत्त्वपूर्ण है। मनोविश्लेषक और सामाजिक दार्शनिक एरिक फ्ऱॉम ने दावा किया कि मनुष्य के डर के मूल में दूसरे मनुष्य से अलग हो जाने का डर है। उनका मानना था कि अलग होने का अनुभव, जो सबसे पहले शैशव अवस्था में महसूस होता है, मनुष्य के जीवन की समस्त उत्कंठा का स्रोत है। जॉन बोलबाय ने बहुत-से प्रयोगात्मक प्रमाण और शोध के ज़रिये इस बात को सही माना और इस बात का समर्थन किया कि जीवन के प्रथम वर्ष के उत्तरार्द्ध में अपना ध्यान रखने वालों- प्रायः माता या पिता- से अलग होना निश्चित रूप से शिशुओं में डर और उदासी पैदा करता है। उनका कहना था कि मनुष्य के भय, उदासी और दुख के मूल में अलग होना और व्यक्तिगत हानि है।

अतः घनिष्ठता के महत्त्व को देखते हुए, हम अपने दैनिक जीवन में घनिष्ठता को कैसे

प्राप्त कर सकते हैं? पिछले अध्याय में बताए गए दलाई लामा के तरीके को मानें तो घनिष्ठता क्या है, यह समझते हुए- घनिष्ठता की कारगर परिभाषा और मॉडल को तलाश करना सीखना तर्कसंगत लगता है। हालाँकि इसके उत्तर के लिए विज्ञान की ओर देखते हुए, ऐसा लगता है कि घनिष्ठता के महत्त्व को लेकर शोधकर्त्ताओं की सार्वभौमिक सहमति के बावजूद, यह सहमति इसी जगह समाप्त भी हो जाती है। घनिष्ठता पर किए विभिन्न शोध कार्यों पर एक उड़ती नज़र भी डाली जाए तो घनिष्ठता के बारे में इतनी तरह की परिभाषाएँ और सिद्धांत बन जाना शायद इसकी एक अत्यंत विशेष बात है।

इस प्रतिबिंब के सबसे ठोस सिरे पर लेखक डेसमंड मॉरिस हैं जो आचार शास्त्र में प्रशिक्षित जीव-विज्ञानी के दृष्टिकोण से घनिष्ठता के विषय में लिखते हैं। अपनी पुस्तक इंटीमेट बिहेवियर में मॉरिस घनिष्ठता को परिभाषित करते हैं: "घनिष्ठ होने का अर्थ है नज़दीकी होना... मेरे हिसाब से, दो लोगों में घनिष्ठता तब स्थापित होती है जब उनके बीच शारीरिक संबंध बनता है।" घनिष्ठता को विशुद्ध रूप से शारीरिक संपर्क के संदर्भ में समझाने के बाद, वह उन तमाम तरीकों का उल्लेख करते हैं जिनके द्वारा मनुष्य परस्पर पीठ थपथपाने से लेकर बेहद कामुक संभोग करने तक शारीरिक संपर्क स्थापित करते हैं। वह गले मिलने या हाथ पकड़ने, और जब हमें ऐसा करने के अवसर नहीं मिल पाते तो नख प्रसाधन जैसे परोक्ष शारीरिक संपर्क द्वारा, स्पर्श को एक-दूसरे को आराम पहुँचाने के माध्यम के रूप में दर्शाते हैं। वह तो यह भी कहते हैं कि सिगरेट और जेवर आदि से लेकर जल शैया तक अपने आस-पास की चीज़ों से हमारा संपर्क घनिष्ठता की प्रतिस्थापन है।

अधिकतर अन्वेषकों की घनिष्ठता की परिभाषाएँ इतनी ठोस नहीं होतीं और वह कहते हैं कि घनिष्ठता शारीरिक निकटता से कुछ ज़्यादा है। घनिष्ठता (इंटीमेसी) शब्द के मूल में देखें तो यह लैटिन शब्द इंटीमा से बना है जिसका अर्थ है "भीतरी" या "सबसे भीतरी" है। इसकी परिभाषा काफ़ी व्यापक है जैसा कि घनिष्ठता पर अनेक पुस्तकें लिखने वाले डॉ. डैन मैकएडम्स ने बताई है: "घनिष्ठता की इच्छा किसी दूसरे व्यक्ति से अपनी सबसे भीतरी बातें साझा करने की इच्छा है।"

परंतु घनिष्ठता की परिभाषाएँ यहाँ समाप्त नहीं हो जातीं। डेसमंड मॉरिस के समक्ष प्रतिबिंब के विपरीत छोर पर डॉ. थॉमस पैट्रिक मैलोन और पैट्रिक थॉमस मैलोन की पिता-पुत्र मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ जोड़ी है। अपनी पुस्तक, दि आर्ट ऑफ़ इंटीमेसी में उन्होंने घनिष्ठता को "संयोजकता का अनुभव" बताया है। घनिष्ठता के विषय में उनकी समझ लोगों के साथ हमारी "संयोजकता" की पूर्ण जाँच से शुरू होती है, लेकिन वह घनिष्ठता की अवधारणा को मानवीय संबंधों तक सीमित नहीं रखते। उनकी परिभाषा इतनी व्यापक है कि उसमें निर्जीव वस्तुओं- पेड़, तारे, यहाँ तक कि अंतरिक्ष के साथ भी हमारे संबंध शामिल हैं।

विश्व व इतिहास में घनिष्ठता की सबसे आदर्श धारणाएँ भी बदलती रहती हैं। उस "एक विशिष्ट व्यक्ति" की रोमानी धारणा जिसके साथ हमारा बहुत प्रेम-भरा तथा घनिष्ठ संबंध होता है, हमारे समय व संस्कृति का परिणाम है। परंतु घनिष्ठता का यह मॉडल सभी संस्कृतियों द्वारा समान रूप से नहीं अपनाया गया है। उदाहरण के लिए, जापानी लोग

घनिष्ठता के लिए मैत्री पर अधिक निर्भर रहते हैं जबकि अमेरिकी लोग इसके लिए अपने पुरुष या महिला मित्र या जीवनसाथी के साथ रोमानी संबंध में अधिक विश्वास रखते हैं। इस अध्ययन के दौरान कुछ शोधकर्त्ताओं ने यह बताया है कि एशियाई लोग जो अनुराग जैसी व्यक्तिगत भावनाओं पर कम ध्यान देते हैं और सामाजिक लगाव के व्यावहारिक पहलुओं से अधिक संबंधित होते हैं, इस तरह के भ्रम में ज़्यादा नहीं पड़ते जिसके कारण संबंध विच्छेद होते हैं।

संस्कृतियों में बदलाव के अतिरिक्त, घनिष्ठता की धारणाओं में भी समय के साथ बहुत परिवर्तन आया है। आज की तुलना में, प्राचीन अमरीका के समय शारीरिक घनिष्ठता और नज़दीकी ज़्यादा थी क्योंकि परिवार के सदस्य और अजनबी एक ही कमरे में सो जाया करते थे तथा एक ही जगह स्नान करने, खाना खाने और नींद लेने जैसे काम कर लेते थे। फिर भी पति-पत्नी के बीच संपर्क का सामान्य स्तर आज की तुलना में बहुत औपचारिक था- और वह आपस में परिचित लोगों या पड़ोसियों की तरह बातचीत करते थे। एक शताब्दी बाद, प्रेम और विवाह में रोमांस आया तथा किसी भी प्रेम संबंध में स्वयं के बारे में खुलकर बताना महत्त्वपूर्ण अंश माना जाता था।

निजी व घनिष्ठ व्यवहार की अवधारणा में भी समय के साथ बहुत बदलाव आया है। उदाहरण के लिए सोलहवीं शताब्दी में जर्मनी में, नव-दंपत्ति को अपने विवाह को बिस्तर पर पूरा करना पड़ता था और यह कार्य किसी साक्षी की उपस्थिति में होता था जो फिर उस विवाह को वैध क़रार देता था।

लोगों द्वारा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के तरीके में भी परिवर्तन हुआ है। मध्य युग के दौरान अपनी भावनाओं- खुशी, ग़ुस्सा, डर, श्रद्धा और शत्रु को तड़पाने या मार डालने पर होने वाले सुख- को सार्वजनिक तौर पर व्यक्त करना सामान्य बात थी। उन्मत्त हँसी, ज़ोर से रोना और हिंसक ढंग से क्रोध करना आज के मुकाबले पहले ज़्यादा व्यक्त किए जाते थे। परंतु उस समय भावनाओं की साधारण अभिव्यक्ति में भावनात्मक घनिष्ठता की अवधारणा स्वीकार्य नहीं थी; यदि कोई अपनी भावनाओं को खुलकर व बिना भेद विचार के व्यक्त करना चाहे तो कुछ विशिष्ट लोगों के सामने व्यक्त करने को निजी भावनाएँ नहीं बचेंगी।

स्पष्ट है, घनिष्ठता के बारे में हमारी अवधारणाएँ सार्वभौमिक नहीं हैं। ये समय के साथ बदलती रहती हैं और प्रायः आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक स्थितियों द्वारा प्रभावित होती हैं। घनिष्ठता की विभिन्न समकालीन पाश्चात्य परिभाषाओं- जिनकी अभिव्यक्ति हजामत से लेकर नेपच्यून के चंद्रमाओं से हमारे संबंध तक होता है- के कारण दुविधा में पड़ जाना सहज बात है। घनिष्ठता क्या है, इसे समझने के प्रयास में हम कहाँ पहुँचे हैं? मुझे लगता है कि इसका आशय स्पष्ट है: मनुष्य के जीवन में अविश्वसनीय विविधताएँ हैं, लोगों के बीच नज़दीकी के भाव को लेकर असंख्य विभिन्नताएँ हैं। सिर्फ़ इसी बोध से हमें बड़ी संभावनाएँ उपलब्ध हो जाती हैं। इसका अर्थ है कि इस क्षण में हमारे पास घनिष्ठता के व्यापक संसाधन मौजूद हैं। घनिष्ठता हमारे चारों ओर व्याप्त है।

आज हम में से बहुत-से लोग इस बात से परेशान हैं कि हमारे जीवन में किसी चीज़ की कमी है और हम घनिष्ठता के अभाव से बुरी तरह ग्रस्त हैं। यह उस समय सत्य होता है जब हम अपने जीवन के ऐसे अपरिहार्य पलों से गुजरते हैं जब हमारा किसी के साथ रोमानी संबंध नहीं होता या फिर किसी संबंध में अनुराग कम हो जाता है। हमारी संस्कृति में यह व्यापक धारणा है कि हम दूसरों से अलग किसी ख़ास व्यक्ति के साथ प्रेमपूर्ण रोमानी संबंध द्वारा ही घनिष्ठता को पा सकते हैं। यह एक अत्यंत सीमित नज़रिया है जो हमें घनिष्ठता के अन्य संभावित स्रोतों से दूर कर देता है और उस ख़ास व्यक्ति के निकट न होने पर यह हमारे लिए कष्ट व दुख का कारण बन जाता है।

परंतु हमारे भीतर, हमारे पास इससे बचने की ताकत मौजूद है; हमें सिर्फ़ घनिष्ठता की धारणा को विस्तार देने की ज़रूरत है ताकि दैनिक जीवन के सभी रूप इसमें शामिल हो जाएँ। घनिष्ठता की परिभाषा का विस्तार करने से हम दूसरों के साथ जुड़ने के नए और संतोषजनक तरीकों को खोजने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसी के साथ मैं दलाई लामा के साथ अकेलेपन पर चल रही अपनी आरंभिक चर्चा पर लौट आता हूँ। यह चर्चा अख़बार में संयोगवश “पर्सनल्स” (व्यक्तिगत) पन्ना देखने के बाद शुरू हुई थी। ठीक उसी पल में जब वे लोग अपने जीवन में रोमांस को वापस लाने और अकेलेपन को दूर करने के लिए सही शब्द खोज रहे थे, उनमें से कितने लोगों के आस-पास पहले से ही मित्र, परिवार व परिचित मौजूद थे- ऐसे संबंध जिन्हें आसानी से सच्चे और अत्यंत संतोषदायक घनिष्ठ संबंधों में विकसित किया जा सकता था? मेरे विचार से, ऐसे बहुत-से लोग थे। यदि हम जीवन में ख़ुशी तलाश कर रहे हैं और घनिष्ठता इस ख़ुशहाल जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है तो यही उचित है कि हम अपना जीवन घनिष्ठता के मॉडल के अनुरूप जिएँ जिसमें अधिक से अधिक लोगों के साथ संबंध शामिल किए जा सकें। दलाई लामा का बनाया हुआ घनिष्ठता का मॉडल इस बात की इच्छा पर आधारित है कि हम दूसरों के समक्ष, परिवार, मित्रों और यहाँ तक कि अजनबियों के साथ भी खुलकर रहें और अपनी सामूहिक मानवता पर आधारित सच्चे एवं गहरे रिश्ते स्थापित करें।

अध्याय 6

दूसरों के साथ अपने संबंधो की प्रगाढ़ता

एक दिन मैं एक सार्वजनिक सभा के बाद दोपहर में उनके साथ रोज़ के समय दलाई लामा के होटल के कमरे में उनसे मिलने आया। मैं थोड़ा जल्दी पहुँच गया था। उनका एक अनुचर यह बताने हॉल में आया कि परम पूज्य उस समय किसी के साथ निजी वार्ता में व्यस्त हैं और उन्हें अभी थोड़ी देर और लगेगी। मैं उनके कमरे के बाहर अपनी परिचित जगह पर बैठ गया और उनके साथ होने वाली बातचीत की तैयारी करने लगा और साथ ही सुरक्षाकर्मी की संदेहपूर्ण नज़र से बचने का प्रयास करता रहा जैसे कोई स्टोर पर बैठा क्लर्क मैगज़ीन रैक के पास घूमते स्कूल के लड़कों पर नज़र रखता है।

कुछ ही देर में दरवाज़ा खुला और अच्छे कपड़ों में एक अधेड़ युगल बाहर निकला। मुझे वे दोनों परिचित लगे। मुझे याद आया कि कुछ दिन पहले मेरा उनसे परिचय करवाया गया था। मुझे बताया गया था कि वह महिला एक विख्यात राजपुत्री थी और उसका पति मैनहटन का एक अत्यंत धनी व समृद्ध अधिवक्ता था। परिचय के दौरान उनके साथ मेरी बहुत कम बात हुई थी लेकिन उसी दौरान वे दोनों मुझे बहुत ज़्यादा घमंडी लगे थे। जब वे दलाई लामा के कमरे से बाहर निकले तो उनमें ज़बर्दस्त बदलाव नज़र आ रहा था। उनका घमंडी और अहंकारी स्वरूप अब नज़र नहीं आ रहा था और उसके स्थान पर दोनों के चेहरों पर दया एवं सद्भाव झलक रहा था। वे दोनों बच्चों की तरह सहज दिख रहे थे। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। हालाँकि अन्य लोगों पर दलाई लामा का प्रभाव इतना नाटकीय नहीं होता था, लेकिन मैंने गौर किया था कि निश्चित ही उनसे मिलने के बाद लोगों में भावनात्मक परिवर्तन होता था। उनसे मिलने वाले लोग किसी भी क्षेत्र के हों, दलाई लामा की मिलने-जुलने की प्रवृत्ति और लोगों के साथ गहरा और सार्थक व भावनात्मक संबंध स्थापित करने

की क्षमता मुझे सदा ही हैरान करती थी।

परानुभूति स्थापित करना

ऐरिज़ोना में हमने जब मानवीय आत्मीयता और दया के महत्त्व के बारे में बात की थी, तो उसके कुछ ही समय बाद उनके घर धर्मशाला में मुझे उनके साथ मानवीय संबंधों को गहराई से जानने का मौका मिला। उस समय तक मैं यह जानने के लिए बहुत उत्सुक हो चुका था कि क्या हम ऐसे सिद्धांतों को समझ सकते हैं जिनका प्रयोग वह अन्य लोगों के साथ करते हैं- ऐसे सिद्धांत जिनके द्वारा किसी संबंध को बेहतर बनाया जा सकता है, वह चाहे अजनबी, परिवार, मित्र के साथ हो या फिर प्रेमियों के बीच में। उत्सुकतावश मैं उस बहस में कूद पड़ा:

"अब मानवीय संबंधों के विषय में... आपके अनुसार दूसरे लोगों के साथ सार्थक संपर्क स्थापित करने और उनके साथ झगड़ों को कम करने का सबसे प्रभावशाली तरीका क्या है?"

उन्होंने एक पल लिए मेरी ओर देखा। उनका देखने का तरीका निष्ठुर नहीं था लेकिन उससे मुझे ऐसा लगा मानो मैंने उनसे चंद्रमा की मिट्टी का रासायनिक संयोजन पूछ लिया हो।

क्षण भर ठहरने के बाद, उन्होंने उत्तर दिया, "देखो, दूसरों के साथ व्यवहार करना बहुत पेचीदा मामला होता है। ऐसा कोई तरीका नहीं है जिससे आपको सभी समस्याओं का एक ही हल मिल सके। यह खाना पकाने जैसा है। यदि आप कुछ बहुत स्वादिष्ट या ख़ास पकवान बना रहे हैं तो इस कार्य को कई चरण में किया जाता है। हो सकता है कि आपको पहले अलग से सब्जियाँ उबालनी पड़ें और फिर उन्हें तलना पड़े और फिर किसी विशेष ढंग से उन्हें मिलाकर उनमें मसाले आदि डालने हों। अंत में आपको स्वादिष्ट भोजन मिलता है। इसी तरह दूसरों के साथ व्यवहार-कुशल होने के लिए आपको कई चीज़ों की ज़रूरत होती है। आप सिर्फ़ यह नहीं कह सकते, 'इसका यह तरीका है' अथवा 'इसकी यह तकनीक है।'"

यह वो जवाब नहीं था जिसकी मुझे प्रतीक्षा थी। मुझे लगा वह जवाब देने से बच रहे थे और ज़रूर उनके पास कहने के लिए कुछ विशेष होगा। मैंने ज़ोर देते हुए कहा: "यदि अपने संबंधों को सुधारने का कोई एक तरीका नहीं है तो क्या कुछ और ऐसे सामान्य दिशानिर्देश हैं जो इसमें उपयोगी साबित हो सकें?"

दलाई लामा ने उत्तर देने से पहले एक पल सोचा, "हाँ। हमने पहले भी दूसरों से बात करते समय दिमाग़ में दया का भाव रखने के महत्त्व पर बात की थी। वह ज़रूरी है। निश्चित ही, किसी को यह कहना, 'ओह, दयालु होना बहुत ज़रूरी है। आपके मन में और ज़्यादा प्यार होना चाहिए' काफ़ी नहीं है। इस तरह का सामान्य तरीका काम नहीं करेगा। किसी को अधिक आत्मीय और दयालु होना सिखाने का एक प्रभावी तरीका यह है व्यक्ति को तर्क द्वारा दया भाव के महत्त्व और उसके व्यावहारिक लाभ के बारे में बताया जाए और उन्हें यह

भी सोचना सिखाया जाए कि जब कोई उनके साथ दयापूर्ण व्यवहार करता है तो उन्हें कैसा लगता है आदि। एक तरीके से इससे शुरुआत हो जाती है और जैसे-जैसे व्यक्ति अधिक दयालु होने के मार्ग पर आगे बढ़ता है तो उसका प्रभाव भी बढ़ता है।"

"दया विकसित करने के विभिन्न तरीकों पर विचार करते हुए मुझे लगता है कि परानुभूति एक महत्त्वपूर्ण बात है। किसी दूसरे की पीड़ा को समझने की क्षमता। वास्तव में, पारंपरिक रूप से बुद्ध धर्म में दया भाव विकसित करने का तरीका यह है कि किसी ऐसी स्थिति की कल्पना की जाए जिसमें कोई जीव पीड़ा भोग रहा हो- जैसे: कसाई के हाथों काटी जाने वाली बकरी। अब बकरी की पीड़ा को महसूस करने की कोशिश कीजिए..." दलाई लामा अपनी पूजा की माला पर उंगलियाँ फेरते हुए सोचने के लिए ज़रा रुके। वह बोले, "मुझे यह लगता है कि यदि हमें किसी भाव-विहीन व्यक्ति से बात करनी हो तो यह तरीका ज़्यादा कारगर नहीं होगा। यह ऐसा ही है मानो आप कसाई से उस बकरी की पीड़ा की कल्पना करने के लिए कह रहे हों: कसाई की भावनाएँ इतनी कठोर हो जाती हैं कि उसके ऊपर इस बात का कोई असर नहीं होगा। इसलिए, यह तकनीक उन पश्चिमवासियों को बताना या समझाना बहुत कठिन है जो सिर्फ़ मनोरंजन और मस्ती के लिए शिकार करते या मछली पकड़ते हैं..."

"ऐसी स्थिति में," मैंने सुझाव दिया, "किसी शिकारी को शिकार की पीड़ा महसूस करने के लिए कहना प्रभावी तकनीक नहीं है, किंतु आप उसे यह कल्पना करवाकर कि उसका पालतू कुत्ता एक पिंजरे में फँस गया है और दर्द से चिल्ला रहा है, उस शिकारी के भीतर दया के भाव को जगाने की शुरुआत अवश्य कर सकते हैं..."

"हाँ, बिल्कुल..." दलाई लामा ने सहमति जताई। "मेरे विचार से स्थिति के अनुसार इस तकनीक में परिवर्तन किया जा सकता है। जैसे: हो सकता है कि किसी व्यक्ति में पशुओं के प्रति परानुभूति का भाव अधिक प्रबल न हो लेकिन किसी परिवार के सदस्य या मित्र के लिए तो उसके मन में कुछ भावना अवश्य होगी। ऐसे में वह व्यक्ति ऐसी परिस्थिति की कल्पना कर सकता है जिसमें उसका कोई प्रियजन दर्द में है या किसी बुरी स्थिति से गुज़र रहा है और फिर यह कल्पना करे कि ऐसे में वह क्या करेगा। इस तरह किसी दूसरे की भावना या उसके अनुभव के साथ जुड़कर दया भाव में वृद्धि की जा सकती है।"

"मुझे लगता है कि परानुभूति का महत्त्व सिर्फ़ दया भाव बढ़ाने में नहीं है बल्कि मेरे विचार से सामान्य तौर पर दूसरों के साथ किसी भी स्तर पर व्यवहार करते समय अगर आपको कुछ परेशानी हो रही है तो स्वयं को दूसरे के स्थान पर रखना और तब अपनी प्रतिक्रिया पर विचार करना बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है। अगर आपको दूसरे व्यक्ति के साथ कोई साझा अनुभव नहीं है या आपकी जीवनशैली उससे भिन्न है तो आप कल्पना द्वारा ऐसा करने का प्रयास कर सकते हैं। इसके लिए आपको थोड़ा रचनात्मक होना पड़ेगा। इस तकनीक में आपको अपने दृष्टिकोण को कुछ समय के लिए छोड़कर दूसरे के नज़रिए से चीज़ों को देखना पड़ता है कि अगर आप उस स्थिति में होते तो आपको कैसा लगता और आप तब क्या करते। इससे आपके मन में दूसरे की भावनाओं के लिए जागरूकता एवं

सम्मान पैदा होता है जो कि दूसरे लोगों के साथ होने वाले झगड़े और परेशानियों को कम करने के लिए महत्त्वपूर्ण है।"

उस दिन हमारा संवाद जल्दी खत्म हो गया। मुझे आख़िरी समय पर दलाई लामा के व्यस्त कार्यक्रम में कुछ जगह दी गई थी और हमारे अन्य संवादों की तरह यह भी देर से हुआ था। बाहर, सूरज अस्त होने को था जिससे शाम का हल्का धुँधलका कमरे के भीतर आ रहा था और उससे कमरे की हल्के पीले रंग की दीवारें अंगारों-सी लग रही थीं। कमरे में रखीं भगवान बुद्ध की प्रतिमाएँ सुनहली रोशनी से प्रकाशमान हो रही थीं। दलाई लामा के अनुचर ने धीरे से कमरे में प्रवेश किया और संवाद खत्म करने का संकेत किया। बातचीत समाप्त करते हुए मैंने उनसे पूछा, "मुझे पता है कि हमें अब बातचीत बंद करनी है, लेकिन क्या आप कुछ और सलाह या तरीका बता सकते हैं जिससे आप दूसरों के साथ परानुभूति का भाव स्थापित करते हैं?"

कई माह पूर्व ऐरिज़ोना में बोले अपने शब्दों को सौम्य सादगी से दोहराते हुए उन्होंने कहा, "मैं जब भी लोगों से मिलता हूँ तो हमेशा उन मूल चीज़ों को ध्यान में रखकर मिलता हूँ जो हम लोगों में समान हैं। हम सबके पास एक शारीरिक रूप है, दिमाग़ है और भावनाएँ हैं। हम सब एक ही तरह से पैदा होते हैं और हम सबकी मृत्यु होती है। हम सब ख़ुश रहना चाहते हैं और कोई कष्ट नहीं झेलना चाहते। मैं अन्य गौण बातों को सोचने के बजाय कि मैं तिब्बती हूँ या मेरा वर्ण, धर्म या संस्कृति अलग है, मैं अपनी समान बातों पर ध्यान देता हूँ। इससे मेरे अंदर यह भाव बना रहता है कि मैं अपने ही जैसे किसी व्यक्ति से मिल रहा हूँ। मुझे लगता है कि लोगों से इस स्तर पर बात करने से एक-दूसरे से बातचीत और संपर्क करना आसान हो जाता है।" इन शब्दों के साथ वह उठे, मुस्कराए, मेरे हाथ को धीरे से पकड़ा और फिर चले गए।

अगले दिन सुबह हमने दलाई लामा के घर पर अपनी बातचीत को आगे बढ़ाया।

"ऐरिज़ोना में हमने मानवीय संबंधों में दया के महत्त्व के बारे में काफ़ी बातचीत की थी और कल हमने एक-दूसरे के साथ मिलने-जुलने की क्षमता को बेहतर बनाने में परानुभूति की भूमिका पर चर्चा की..."

"हाँ," दलाई लामा ने सिर हिलाकर कहा।

"इसके अतिरिक्त क्या आप दूसरों के साथ अधिक प्रभावी ढंग से व्यवहार करने का कोई और विशिष्ट तरीका या तकनीक बता सकते हैं?"

"जैसा कि मैंने कल कहा था ऐसा कुछ नहीं है जिससे आप अपनी सभी समस्याओं को सुलझाने के कोई एक या दो तरीके ढूँढ़ सकते हैं। हालाँकि मुझे लगता है कि कुछ और बातें हैं जिनसे दूसरों के साथ व्यवहार करने में आपको मदद मिल सकती है। सबसे पहले आप जिन लोगों से बात कर रहे हैं, उनके बारे में जानना ज़रूरी है। साथ ही, ज़्यादा उदार

और ईमानदार होना भी इसके लिए उपयोगी गुण साबित हो सकते हैं।"

मैंने प्रतीक्षा की किंतु उन्होंने और कुछ नहीं कहा।

"क्या आप संबंधों को सुधारने के कोई अन्य तरीके बता सकते हैं?"

दलाई लामा एक क्षण के लिए सोचने लगे। "नहीं," वह हँस दिए।

मुझे लगा कि यह छोटी-छोटी बातें बहुत सरल व सामान्य थीं। फिर भी, उस समय उन्हें उस विषय पर और कुछ नहीं कहना था, इसलिए हमने अन्य विषयों पर चर्चा शुरू कर दी।

उस दिन शाम को मुझे धर्मशाला में अपने कुछ तिब्बती मित्रों के घर रात्रि-भोज का निमंत्रण मिला था। मेरे मित्रों ने उस शाम को जीवंत बना दिया था। खाना बहुत अच्छा था, जिसमें अनेक स्वादिष्ट व्यंजन थे और तिब्बती मोमोज़ तो बहुत ही बढ़िया बने थे। खाना ख़त्म होने के साथ, बातचीत में रंग जमने लगा। शीघ्र ही सभी मेहमान नशे की हालत में अपने पुराने शर्मनाक किस्से सुनाने लगे। बैठक में बहुत-से लोगों को आमंत्रित किया गया था जिनमें जर्मनी का एक विख्यात दंपत्ति भी शामिल था। वह महिला वास्तुकार थी तथा उसका पति लेखक था जो दर्जन-भर पुस्तकें लिख चुका था।

पुस्तकों में रुचि होने के कारण मैं उस लेखक से बातचीत करने लगा। मैंने उसके लेखन के बारे में पूछा। उसके उत्तर संक्षिप्त व नीरस थे और बातचीत का तरीका अत्यंत रूखा व घमंड-भरा था। मुझे वह बड़ा अस्नेही व अहंकारी लगा तथा मुझे बिल्कुल पसंद नहीं आया। मैं खुद को समझाने लगा कि मैंने कम-से-कम उससे बात करने की कोशिश तो की और मुझे लगा कि वह सिर्फ़ एक अप्रिय व्यक्ति था। यह सोचकर मैंने कुछ अन्य सौम्य मेहमानों से बातचीत शुरू कर दी।

अगले दिन, गाँव में चाय की दुकान पर मेरी भेंट एक मित्र से हो गई और उसके साथ चाय पीते हुए मैंने उसे पिछले दिन की घटना के बारे में बताया।

"... मुझे कल उस लेखक, रॉल्फ़ को छोड़कर सबसे मिलकर सचमुच बहुत मज़ा आया... मुझे वह बहुत घमंडी लगा... बिल्कुल मिलनसार नहीं है।"

"मैं उसे बहुत वर्षों से जानता हूँ," मेरे मित्र ने कहा, "... मुझे पता है कि वह ऐसा करता है, किंतु वह शुरू में थोड़ा शर्माता है और कम बोलता है। परंतु उसे जानने के बाद लगता है कि वह बहुत बढ़िया व्यक्ति है..." मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। मेरे मित्र ने समझाते हुए कहा, "... हालाँकि वह एक सफल लेखक है, उसने जीवन में बहुत ज़्यादा परेशानियाँ झेली हैं। रॉल्फ़ ने सचमुच बहुत कष्ट देखे हैं। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान उसके परिवार को नाज़ियों ने बहुत तंग किया था। उसके दो बच्चे थे जो अनुवांशिक तौर पर शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकलांग थे किंतु रॉल्फ़ उन दोनों के प्रति बहुत ज़्यादा समर्पित था। अपने जीवन में कड़वाहट भरने या खुद को शहीद मानने के बजाय उसने दूसरों से सहायता ली और विकलांग लोगों के साथ स्वयंसेवक के रूप में काफ़ी काम किया। उसे

ठीक से जानने के बाद तुम्हें पता लगेगा कि वह सचमुच ख़ास है।"

संयोग से उसी सप्ताह के अंत में एक ख़ाली पड़े मैदान में, जो उन दिनों स्थानीय हवाई अड्डे की तरह प्रयोग किया जाता था, मेरी मुलाकात फिर से रॉल्फ़ और उसकी पत्नी से हुई। हम लोग एक ही जहाज से दिल्ली जा रहे थे लेकिन वह उड़ान किसी कारण से रद्द हो गई। दिल्ली के लिए अगले कई दिनों तक कोई उड़ान नहीं थी, तो हमने मिलकर एक गाड़ी से दिल्ली जाने का फ़ैसला किया जो कि दस घंटे का बहुत थकाने वाला सफर था। मेरे मित्र द्वारा दी गई थोड़ी-सी जानकारी के कारण रॉल्फ़ के बारे में मेरे विचार बदल गए थे और दिल्ली तक उस लंबे सफर के दौरान मैंने उसके साथ खुलकर बात की। इसके फलस्वरूप मैंने उसके साथ बातचीत करने का सिलसिला बनाए रखा। शुरू में, उसका व्यवहार पहले जैसा ही था। परंतु थोड़े-से खुलेपन और प्रयास के बाद मैंने जल्द ही पाया कि रॉल्फ़ के घमंडी स्वभाव का कारण उसका दंभ नहीं, बल्कि उसका संकोची स्वभाव था। उत्तरी भारत के धूल-भरे ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलते हुए, जैसे-जैसे हम लोगों की बातचीत गहन होने लगी, मुझे वह अत्यंत सौम्य और अच्छा इंसान होने के साथ-साथ यात्रा के लिए एक बढ़िया साथी भी लगा।

दिल्ली पहुँचने तक, मुझे लगा कि दलाई लामा द्वारा "लोगों के बारे में जानने" सबंधी सलाह उतनी सामान्य या सतही नहीं थी जितनी वह पहले प्रतीत हुई थी। हाँ, वह सरल थी किंतु एकतरफ़ा नहीं थी। कभी-कभी बहुत सामान्य और सीधी सलाह, जिसे हम अत्यंत सरल समझकर नज़रअंदाज़ कर देते हैं, वही संपर्क को साधने और बढ़ाने वाला सबसे प्रभावशाली ज़रिया बन जाती है।

मैं घर जाने से पहले दिल्ली में सिर्फ़ दो दिन रुकने वाला था, लेकिन मुझे वहाँ कई दिन हो चुके थे। धर्मशाला की शांति से दूर यह जगह बहुत शोरगुल वाली थी और मुझे यहाँ बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था। घुटन-भरी गर्मी, प्रदूषण और भीड़-भाड़ के अलावा गलियों पर ठगी करने वाले शहरी पर-भक्षियों की सामान्य प्रजातियों से वहाँ की सड़कें भरी पड़ी थीं। दिल्ली की गर्म गलियों में मुझे एक पश्चिमवासी, विदेशी, शिकार समझने वाले आधा दर्जन लोग मेरे साथ धक्का-मुक्की कर रहे थे मानो मेरे माथे पर "मूर्ख" लिखा हुआ था। इससे मेरा उत्साह ठंडा हो गया।

उस दिन सुबह मैं एक नुक्कड़ पर दो लोगों की बदमाशी का शिकार बन गया। उनमें से एक ने, जिस समय मेरा ध्यान नहीं था, मेरे जूतों पर लाल पेंट गिरा दिया। तभी पास खड़े उसके दूसरे साथी ने, जो अत्यंत भोला-सा जूते पॉलिश करने वाला लड़का लग रहा था, मेरा ध्यान इस ओर दिलाया और मैंने सामान्य दर पर मेरे जूते साफ़ करने के लिए हाँ कर दी। उसने कुछ ही मिनटों में मेरे जूते साफ़ कर के चमका दिए। काम ख़त्म करने के बाद उसने बहुत पैसे माँगे जो शायद दिल्ली जैसी जगह पर किसी की दो महीने की तनख़्वाह होगी। जब मैंने मना किया तो वह बोला कि उसने जूते साफ़ करने के इतने पैसे पहले ही बता दिए थे। मैंने दोबारा आपत्ति की तो उसने रो-चिल्लाकर भीड़ जमा कर ली और लोगों से कहने

लगा कि काम करवाने के बाद मैं उसे पैसे देने से इंकार कर रहा था। शाम को मुझे यह पता लगा कि यह अनजान पर्यटकों के साथ होने वाली सामान्य धोखाधड़ी थी; पैसे माँगने के बाद पॉलिश वाला लड़का जानबूझकर शोरगुल करता है, पर्यटक को शर्मनाक स्थिति में डालने और उससे पैसे ऐंठने के इरादे से भीड़ जमा करता है।

मैंने उस दिन दोपहर में अपनी एक मित्र के साथ होटल में खाना खाया। सुबह की वह घटना जल्द ही दिमाग़ से निकल गई जब उसने दलाई लामा के साथ मेरे साक्षात्कारों के बारे में पूछा। हम लोग परानुभूति और दूसरे व्यक्ति के नज़रिए को जानने के महत्त्व पर दलाई लामा के विचारों पर बातचीत में डूब गए। खाने के बाद हमने टैक्सी ली और कुछ अन्य मित्रों से मिलने के लिए निकल गए। गाड़ी में मुझे सुबह हुई जूते वाली धोखाधड़ी याद आ गई और जब मुझे उस बारे में बुरे विचार आ रहे थे तो मेरी नज़र गाड़ी के मीटर पर गई।

"गाड़ी रोको!" मैं चिल्लाया। मेरी मित्र मेरे इस तरह चिल्लाने से घबरा गई। ड्राइवर ने मुझे शीशे से देखा लेकिन उसने गाड़ी नहीं रोकी।

"गाड़ी को साइड में लगाओ!" मैंने काँपती आवाज़ से कहा। मेरे मित्र को बहुत हैरानी हुई। गाड़ी रुक गई। मैंने हवा में हाथ लहराते हुए मीटर की ओर इशारा किया। "तुमने मीटर को दोबारा चालू नहीं किया! जब हम चले थे, तभी इसमें बीस रुपये से ज़्यादा आ रहे थे!"

"माफ़ करना सा'ब," उसने लापरवाही से कहा, जिससे मुझे और ज़्यादा ग़ुस्सा आ गया, "मैं दोबारा चालू करना भूल गया... मैं अब कर देता हूँ..."

"तुम कुछ चालू नहीं करोगे!" मैंने चिल्लाकर कहा। "मैं तुम लोगों से थक गया हूँ। तुम किराया ज़्यादा लेते हो, गोल-गोल घुमाते रहते हो या लोगों को लूटने के लिए जो चाहे करते हो... मैं बस... बस... थक चुका हूँ!" मैंने ज़ोर से दिखावटी अंदाज़ में कहा। मेरे मित्र को शर्म महसूस हो रही थी। टैक्सी ड्राइवर मुझे उसी विद्रोही ढंग से देख रहा था जैसे दिल्ली की व्यस्त सड़कों के बीचों-बीच पवित्र गाय सड़कों के यातायात को रोकने के उद्देश्य से खड़ी रहती हैं। उसने मुझे ऐसे देखा मानो मेरे गुस्से से उसे थकान और निराशा हो रही थी। मैंने आगे वाली सीट पर कुछ रुपये फेंके और कुछ कहे बिना गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर अपनी मित्र के साथ गाड़ी से बाहर निकल गया।

कुछ ही मिनटों में हमने दूसरी टैक्सी ली और चल पड़े। परंतु मैं उस बात को छोड़ नहीं पाया। दिल्ली की सड़कों पर चलते हुए, मैं शिकायत करता रहा कि दिल्ली में "हर कोई" किस तरह पर्यटकों को लूटने में लगा था और यह कि हम उनके लिए किसी शिकार से ज़्यादा कुछ नहीं थे। मेरी मित्र मेरी गुस्से भरी बातें चुपचाप सुनती रही। अंत में उसने कहा, "अरे, बीस रुपये बस एक चौथाई ही तो है। इतना परेशान क्यों हो रहे हो?"

मैं क्रोध से उबलने लगा। "यह उसूल की बात है!" मैंने कहा। "मुझे समझ नहीं आ रहा कि तुम इस बात को लेकर इतनी शांत कैसे हो जबकि ऐसा हर समय होता है। क्या इससे तुम्हें परेशानी नहीं होती?"

"देखो," वह बोली, "मैं भी एक मिनट के लिए परेशान हुई थी लेकिन फिर मैंने उस बारे में सोचना शुरू कर दिया जिस बारे में हम लंच में बात कर रहे थे कि दलाई लामा कहते हैं कि किसी भी चीज़ को दूसरे के नज़रिए से देखना चाहिए। जिस समय तुम्हें ग़ुस्सा आ रहा था, उस समय मैं सोच रही थी कि उस कार ड्राइवर और मेरे बीच क्या समानता है। हम दोनों अच्छा खाना खाकर आराम से सोना चाहते हैं। हम दोनों अच्छा महसूस करना चाहते हैं, हम चाहते हैं कि लोग हमें प्यार करें आदि। फिर मैं खुद को ड्राइवर समझने लगी। मैं सारा दिन घुटन-भरी गाड़ी में बिना एसी के बैठी रहती हूँ। हो सकता है मुझे अमीर सैलानियों से ईर्ष्या होती हो... और चीज़ों को 'ठीक' करने का और ख़ुश रहने का मुझे सबसे आसान ढंग यही लगता है कि लोगों से किसी भी तरह पैसा ऐंठ लिया जाए। परंतु सही बात यह है कि अगर मैं ऐसा कर भी लूँ और किसी अनजान सैलानी से कुछ पैसे ऐंठने में कामयाब भी हो जाऊँ तो भी मुझे नहीं लगता कि यह ख़ुश रहने या संतुष्ट जीवन जीने का कोई बहुत अच्छा तरीका है... जो भी हो, मैं जितना ज़्यादा उस ड्राइवर की तरह सोच रही थी, मुझे उसके ऊपर ग़ुस्सा उतना ही कम आ रहा था। वह अपने जीवन से उदास है... मेरा मतलब है, उसने जो किया मैं उससे सहमत नहीं हूँ और हमने उसकी गाड़ी से उतरकर ठीक ही किया, लेकिन मुझे उसके ऊपर इतना ग़ुस्सा नहीं आया कि मैं उससे नफ़ रत करने लग जाऊँ..."

मैं चुप हो गया। दरअसल, मुझे हैरानी हो रही थी कि मैं दलाई लामा से कितना कम सीख पाया था। उस समय तक मुझे उनकी सलाह का व्यावहारिक महत्त्व समझ में आने लगा था, जैसे: "दूसरे को समझना" और निश्चित ही, उनके द्वारा मुझे इन सिद्धांतों के अनुप्रयोग के उदाहरण भी काफ़ी प्रेरणादायक लगे। परंतु जब मैंने उनके ऐरिज़ोना में शुरू हुई और भारत में जारी रही बातचीत पर दोबारा विचार किया तो मुझे समझ में आया कि शुरू से ही हमारे साक्षात्कार का ढंग भावशून्य था, मानो मैं उनसे मानव शरीर के विज्ञान के बारे में पूछ रहा था और सिर्फ़ इस एक मामले में यह मनुष्य के दिमाग़ और उसकी आत्मा के विज्ञान की बात हो रही थी। हालाँकि, उस क्षण तक मुझे उनके विचारों को अपने जीवन में प्रयोग करने की बात दिमाग़ में नहीं आई- मुझे हमेशा महसूस होता था कि मैं उनके विचारों को अपने जीवन में भविष्य में कभी, जब मेरे पास ज़्यादा समय होगा, प्रयोग करूँगा।

किसी संबंध के मूल आधार को समझना

ऐरिज़ोना में दलाई लामा के साथ मेरी बातचीत ख़ुशी के स्रोत पर चर्चा से शुरू हुई थी। बावजूद इसके कि उन्होंने एक भिक्षु की तरह रहने का निर्णय किया, अध्ययन यह बताते हैं कि शादी भी एक निमित्त है जिससे ख़ुशी मिल सकती है और स्वास्थ्य एवं जीवन में संतोष बढ़ाने के लिए आवश्यक घनिष्ठता और नज़दीकी संबंध उपलब्ध हो सकते हैं। अमेरिकी और यूरोपीय लोगों पर हज़ारों सर्वे हुए हैं जो यह बताते हैं कि सामान्य तौर पर विवाहित लोग अकेले रहने वाले अथवा वैधव्य झेल रहे लोगों- या तलाक़शुदा या अलग रहने वालों की अपेक्षा अपने जीवन में अधिक ख़ुश व संतुष्ट होते हैं। एक सर्वे से पता लगता है कि दस में से

छह अमेरिकी जो अपनी शादी से "बहुत ख़ुश" हैं, वे अपने जीवन से भी "बहुत ख़ुश" हैं। मानवीय संबंधों के विषय पर चर्चा करने के दौरान मुझे लगा कि ख़ुशी के उस समान स्रोत के विषय पर बात करना भी ज़रूरी होगा।

दलाई लामा के साथ एक नियत साक्षात्कार से कुछ मिनट पहले, मैं होटल टूसान के बाहरी दलान में एक मित्र के साथ बैठा ठंडा शर्बत पी रहा था। रोमांस और शादी के विषय पर, मैं जिनके बारे में अपने साक्षात्कार में चर्चा करने पर विचार कर रहा था, के संबंध में मेरा मित्र और मैं अकेले रहने वालों के प्रति सहानुभूति व्यक्त कर रहे थे। बात करते समय, शायद गोल्फ़ खेलने वाला एक स्वस्थ युवा जोड़ा, जो सैलानी मौसम के अंत में छुट्टियाँ बिताने आया था, हमारे निकट एक टेबल पर बैठा था। उनके चेहरे पर मध्यम श्रेणी के विवाहित का भाव था- शायद वह हनीमून तो नहीं मना रहे थे, लेकिन अब भी युवा थे और निश्चित ही एक-दूसरे से प्यार करते थे। मुझे लगा, यह निश्चित ही बहुत अच्छा लगता होगा।

अभी वो ठीक से बैठे भी नहीं थे कि आपस में लड़ने लगे।

"...मैंने तुमसे कहा था कि हमें देर हो जाएगी!" उस महिला ने शिकायत भरे तीखे लहज़े में कहा। उसकी आवाज़ भारी थी, शायद इतने वर्षों तक सिगरेट और शराब पीने से उसका गला भारी हो गया था। "अब हमारे पास खाने तक का समय नहीं है। मैं ठीक से खाना भी नहीं खा सकती!"

"...अगर तुमने तैयार होने में इतनी देर न लगाई होती..." पुरुष के मुँह से अपने आप निकल गया। उसका स्वर शांत था लेकिन एक-एक अक्षर में चिढ़ और शत्रुता झलक रही थी।

इस बात का खंडन करते हुए युवती बोली। "मैं आधा घंटा पहले ही तैयार हो गई थी। तुम्हें ही अख़बार पढ़कर खत्म करना था..."

यह सिलसिला चलता रहा और रुका नहीं। यूनानी नाटककार यॉरिपिडीज़ ने कहा था, "विवाह करो, हो सकता है वह ठीक चल जाए। परंतु जब विवाह असफल होता है तो लोगों के लिए घर नरक बन जाता है!"

उस दंपत्ति के बीच चल रहे विवाद ने जल्द ही हमारे बीच अकेले रहने वालों के दुख पर हो रही चर्चा का अंत कर दिया। मेरे मित्र ने आँखें घुमाते हुए सीनफ़ेल्ड की एक पंक्ति उद्धृत करते हुए कहा, "हाँ! मैं सचमुच जल्दी विवाह करना चाहता हूँ!"

कुछ ही क्षण पहले, मैं दलाई लामा के साथ चर्चा के समय रोमांस और विवाह के आनंद और फ़ायदों पर उनकी राय लेने के बारे में सोच रहा था। इसके बजाय, मैं उनके होटल के कमरे में प्रवेश करने के बाद अभी बैठा भी नहीं था कि मैंने उनसे पूछा, "आपको क्या लगता है कि विवाह में इतनी जल्दी-जल्दी झगड़े क्यों होते हैं?"

"झगड़ों के बारे में कहें तो यह बहुत जटिल बात है," दलाई लामा ने समझाते हुए कहा। "इसके बहुत-से कारण हो सकते हैं। इसलिए जब हम संबंधों में आई समस्याओं पर बात करते हैं तो इसका पहला चरण यह है कि हम उस संबंध की प्रकृति और उसके आधार के बारे में विचार करें।"

"इसलिए, सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि संबंध कई तरह के होते हैं और हमें उनके बीच के अंतर को भी जानना होगा। जैसेः यदि हम कुछ देर के लिए विवाह के मुद्दे को एक तरफ़ छोड़ दें तो सामान्य मित्रता के अंतर्गत भी अनेक प्रकार के मैत्री संबंध होते हैं। कुछ मैत्री संबंध धन, सत्ता और पद पर आधारित होते हैं। ऐसे मामलों में आपकी मित्रता तभी तक रहती है जब तक आपके पास धन, सत्ता और पद बने रहते हैं। इन चीज़ों के न रहने पर मित्रता भी समाप्त होने लगती है। दूसरी ओर, एक अन्य तरह की मित्रता होती है। ऐसी मित्रता जो धन, सत्ता या पद पर आधारित न होकर सच्ची मानवीय भावनाओं पर आधारित होती है। इसमें निकटता होती है और चीज़ों को साझा करने और आपसी संबंध रखने का भाव होता है। मैं इस तरह की दोस्ती को सच्ची दोस्ती मानता हूँ क्योंकि यह व्यक्ति के धन, सत्ता या पद की स्थिति के घटने या बढ़ने से प्रभावित नहीं होती। इस सच्ची दोस्ती को बनाए रखने के लिए इसमें स्नेह का भाव होता है। यदि यह न हो तो आपको सच्ची मित्रता नहीं मिल सकती। हमने यह बात पहले कही है और यह अत्यंत स्पष्ट भी है, किंतु यदि आपके साथ किसी संबंध में कोई समस्या आती है तो थोड़ा रुककर उस संबंध के बारे में विचार करना काफ़ी उपयोगी हो सकता है।"

"इसी तरह यदि किसी को अपने पति या अपनी पत्नी के साथ समस्या है तो उस संबंध के मूल आधार को समझना चाहिए। उदाहारण के लिए, आपको ऐसे बहुत-से संबंध देखने को मिल जाएँगे जो तत्काल जगी कामुकता पर आधारित होते हैं। जब किसी युगल की नई-नई मुलाकात होती है और वह कुछ ही मौकों पर एक-दूसरे से मिले होते हैं तो वे बहुत ख़ुश रहते हैं," दलाई लामा ने हँसकर कहा, "परंतु उसी क्षण विवाह का निर्णय लेना चंचलता हो सकती है। जिस तरह कोई व्यक्ति किसी संदर्भ में, अत्यधिक क्रोध या घृणा के कारण पागल हो जाता है, उसी तरह व्यक्ति के लिए प्रेम या वासना के कारण पागल हो जाना भी संभव है। कभी-कभी आपको ऐसी स्थिति भी देखने को मिल सकती है जब उसे ऐसा लगे, 'अरे, मेरा पुरुष या मेरी महिला दोस्त बहुत अच्छा या अच्छी इंसान तो नहीं है लेकिन फिर भी मैं उसके प्रति आकर्षित हूँ।' इसलिए इस तरह के आरंभिक आकर्षण पर आधारित संबंध पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता और यह बहुत अस्थायी होता है क्योंकि यह पूरी तरह अस्थायी घटनाओं पर आधारित है। यह मनोभाव क्षणिक होता है और कुछ ही समय बाद गायब हो जाता है।" यह कहकर उन्होंने अपनी उँगलियाँ चटकाईं। "इसलिए यदि वह संबंध बिगड़ता है तो इसमें ज़्यादा हैरानी की बात नहीं है, और इस पर आधारित विवाह में भी परेशानियाँ आएँगी... लेकिन तुम्हें क्या लगता है?"

"हाँ, मैं आपसे इस बात पर सहमत हूँ," मैंने जवाब दिया। "ऐसा लगता है किसी भी संबंध में, वह कितना ही प्रबल क्यों न हो, शुरू की गर्मजोशी धीरे-धीरे ठंडी पड़ ही जाती है।

कुछ सर्वे बताते हैं कि जो लोग अपने संबंध में आरंभिक आवेश और रोमांस को ज़रूरी मानते हैं, उन्हें बाद में निराशा होती है और वे अलग हो जाते हैं। मिनीसोटा युनिवर्सिटी के एक सामाजिक मनोविज्ञानी, ऐलेन बर्किड ने शायद इस मुद्दे पर विचार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि जो लोग भावुक प्रेम के सीमित अर्द्ध-जीवन को मानने में असफल रहते हैं, उनके संबंध का बिगड़ना तय होता है। उसे और उसके मित्रों को लगा कि पिछले बीस वर्षों में तलाक़ के मामलों में वृद्धि का आंशिक रूप से संबंध इस बात से है कि लोग अपने जीवन में – रोमांस युक्त प्रेम जैसे गहन सकारात्मक भावुक अनुभवों को बहुत ज़्यादा महत्त्व देते हैं। परंतु एक समस्या यह है कि इस तरह के अनुभवों को लंबे समय तक बनाए रखना बहुत मुश्किल होता है..."

"यह बात ठीक है," वे बोले। "इस तरह आप देख सकते हैं कि संबंधों से जुड़ी समस्याओं पर बात करते समय उस संबंध की मूल प्रकृति को समझना और जानना कितना ज़रूरी है।"

"जहाँ कुछ संबंध तत्काल कामुक आकर्षण पर आधारित होते हैं, वहीं कुछ अन्य तरह के संबंध भी संभव हैं, जिनमें ठंडे दिमाग़ वाला व्यक्ति यह जानता है कि मेरा साथी बेशक देखने में शारीरिक रूप से ज़्यादा आकर्षक नहीं है लेकिन वह एक अच्छा और नेक इंसान है। इस तरह के आधार पर बने संबंध अधिक समय चलते हैं क्योंकि उनमें दोनों लोगों के बीच मानवीय एवं निजी स्तर पर वास्तविक संपर्क होता है..."

दलाई लामा कुछ रुके मानो उस मुद्दे पर विचार कर रहे हों और फिर बोले, "निश्चित रूप से, मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि व्यक्ति एक अच्छा और स्वस्थ संबंध भी बना सकता है जिसमें कामुक आकर्षण भी एक तत्त्व होता है। इससे लगता है कि कामुक आकर्षण के आधार पर दो तरह के संबंध हो सकते हैं। एक पूरी तरह कामेच्छा पर आधारित होता है। इस मामले में उस संबंध के पीछे का मुख्य उद्देश्य अस्थायी संतोष और तत्काल तुष्टि है। इस तरह के संबंध में दोनों लोग एक-दूसरे को मनुष्य कम और वस्तु अधिक मानते हैं। इस तरह का संबंध ज़्यादा मज़बूत नहीं होता। यदि कोई संबंध, परस्पर सम्मान के बिना, सिर्फ़ काम वासना पर आधारित है तो वह संबंध वेश्यावृत्ति जैसा माना जाएगा जिसमें दोनों में किसी भी पक्ष के मन में दूसरे के लिए सम्मान का भाव नहीं होता। मुख्य रूप से काम वासना पर आधारित संबंध बर्फ़ पर बने घर की तरह होता है जब बर्फ़ पिघलती है, तो वह घर भी गिर जाता है।"

"हालाँकि कामुकता पर आधारित एक और तरह का संबंध होता है लेकिन उसमें शारीरिक आकर्षण उस संबंध का प्रमुख आधार नहीं होता। इस तरह के संबंध में आपकी भावना के आधार पर सामने वाले व्यक्ति का अपना यह महत्त्व होता है कि वह अच्छा, नेक और सौम्य व्यक्ति है और आप उसका सम्मान करते हैं। इस भाव पर आधारित कोई भी संबंध अधिक स्थायी, विश्वसनीय होगा और ज़्यादा उचित भी। इस तरह का संबंध स्थापित करने के लिए साथ में कुछ समय बिताकर एक-दूसरे को जानना और एक-दूसरे की विशेषताओं को समझना ज़रूरी होता है।"

“इसलिए जब मेरे मित्र मुझसे उनके विवाह के बारे में पूछते हैं तो मैं सामान्य तौर पर उनसे यही पूछता हूँ कि वह एक-दूसरे को कितने समय से जानते हैं। अगर वह कुछ महीनों की बात करते हैं तो मैं कहता हूँ, ‘अरे, यह तो बहुत कम समय है।’ यदि वे कहते हैं कि कुछ सालों से जानते हैं तो यह थोड़ा बेहतर लगता है। इतने समय में वह एक-दूसरे के चेहरे आदि को ही नहीं, बल्कि शायद उस व्यक्ति के स्वभाव को जान जाते हैं...”

“यह तो मार्क ट्वेन के उद्धरण जैसा लगता है कि ‘कोई पुरुष या स्त्री शादी के एक शताब्दी के चौथाई भाग तक साथ रहे बिना यह नहीं समझ सकता कि सच्चा प्यार क्या होता है...”

दलाई लामा ने हामी भरी और आगे कहा, “हाँ... इसलिए मुझे लगता है कि बहुत-सी समस्याएँ सिर्फ़ इस कारण पैदा होती हैं क्योंकि एक-दूसरे को जानने के लिए उन्होंने पर्याप्त समय नहीं बिताया होता है। खैर, मेरे विचार से यदि कोई सचमुच संतोषजनक संबंध बनाना चाहता है तो इसका सबसे अच्छा तरीका सामने वाले व्यक्ति की सिर्फ़ ऊपरी विशेषताओं को नहीं बल्कि उसके स्वभाव को समझना है। इस तरह के संबंध में सच्ची करुणा की बड़ी भूमिका होती है।”

“मैंने बहुत-से लोगों को यह दावा करते सुना है कि उनके विवाह में सिर्फ़ शारीरिक संबंध नहीं बल्कि उसका बहुत गहरा अर्थ है। इस संबंध में दो लोग अपने-अपने जीवन को आपस में जोड़ने का प्रयास करते हैं, एक-दूसरे के सुख-दुख के साथी बनते हैं और उनमें काफ़ी घनिष्ठता होती है। यदि यह दावा सच्चा है तो मेरा यह मानना है कि किसी संबंध को स्थापित करने का यही उचित आधार है। एक अच्छे संबंध में एक-दूसरे के प्रति जिम्मेदारी तथा प्रतिबद्धता का भाव होना चाहिए। निश्चित तौर पर, उस युगल के बीच शारीरिक संपर्क, उचित या सामान्य शारीरिक संबंध कुछ हद तक संतोष प्रदान कर सकता है जिससे व्यक्ति का मस्तिष्क शांत रहता है। परंतु आख़िर में तो यदि जीव-विज्ञान की दृष्टि से देखें तो संभोग का मुख्य उद्देश्य प्रजनन होता है और इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए व्यक्ति को अपने बच्चों के लिए प्रतिबद्ध होना पड़ता है ताकि वह जीवित रह सकें और बड़े हो सकें। इसलिए ज़िम्मेदारी और निष्ठा की क्षमता विकसित करना ज़रूरी है। उसके बिना किसी भी संबंध से सिर्फ़ अस्थायी संतोष मिलता है। यह सिर्फ़ मज़े के लिए रह जाता है।” वह हँसने लगे। उनकी हँसी में मानव स्वभाव की विस्तृत संभावना पर उनका आश्चर्य झलक रहा था।”

रोमांस पर आधारित संबंध

साठ वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्ति से, जो स्वयं पूरी उम्र ब्रह्मचारी रहा हो, संभोग और विवाह के बारे में बात करना अटपटा लग रहा था। उन्हें इस विषयों पर बात करने से परहेज़ नहीं था लेकिन उनकी टिप्पणियों में उनका वैराग्य दिखाई दे रहा था।

उनके साथ हुई बातचीत के बारे में शाम को सोचते समय मुझे ध्यान आया कि संबंधों का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू था जिसके बारे में हमने कोई बात नहीं की थी और मैं इस

विषय पर उनके विचार जानने को उत्सुक था। मैंने उस बारे में अगले दिन बात की।

"कल हमने संबंधों पर तथा गहरे संबंध या विवाह को सिर्फ़ संभोग पर आधारित न करने के महत्त्व पर चर्चा की थी," मैंने अपनी बात कहना आरंभ किया। "परंतु पाश्चात्य संस्कृति में सिर्फ़ शारीरिक संबंध की बात नहीं होती बल्कि वहाँ रोमांस की एक संपूर्ण अवधारणा है – प्रेम करना, अपने साथी से बहुत गहरा प्रेम होना – इसे वहाँ बहुत अच्छा माना जाता है। फ़िल्म, साहित्य और लोकप्रिय संस्कृति में इस तरह के रोमांस-भरे प्रेम को लेकर काफ़ी उमंग रहती है। इस बारे में आपका क्या विचार है?"

दलाई लामा ने निस्संकोच कहा, "मेरे विचार में, अगर हम इस बात को बिल्कुल छोड़ दें कि रोमांस-भरे प्रेम की अनंत तलाश हमारे गहन आध्यात्मिक विकास को किस तरह प्रभावित करती है, और यदि हम पारंपरिक जीवन शैली के दृष्टिकोण से भी देखें तो रोमानी प्रेम के आदर्शीकरण को चरम स्थिति के रूप में देखा जा सकता है। देखभाल और सच्चे स्नेह पर आधारित संबंधों से अलग, यह अलग तरह की बात है। इसे सकारात्मक ढंग से नहीं देखा जा सकता," उन्होंने निश्चयपूर्वक कहा। "यह कल्पना पर आधारित है, इसे पाया नहीं जा सकता और इसलिए यह कुंठा का कारण बन सकता है। इस आधार पर इसे सकारात्मक नहीं माना जा सकता है।"

दलाई लामा के स्वर में निश्चयात्मकता थी जिससे पता लग गया कि उन्हें इस विषय में और कुछ नहीं कहना था। हमारा समाज रोमांस पर जितना ज़ोर देता है, उसे देखते हुए मुझे लगा कि उन्होंने रोमानी प्रेम के आकर्षण को बहुत हल्के अंदाज़ में समाप्त कर दिया। चूंकि दलाई लामा का पालन-पोषण मठ में हुआ था, इसलिए मुझे लगा कि उन्हें रोमांस के आनंद की पूरी समझ नहीं थी। उनसे रोमांस से संबंधित विषय के बारे में और प्रश्न करना ऐसा था जैसा उन्हें बाहर गाड़ी की पार्किंग में ले जाकर उनसे अपनी गाड़ी के चलाने में आ रही समस्या के बारे में पूछना! मुझे थोड़ी-सी निराशा हुई और मैं कुछ देर अपने कागज़ों को सँभालता रहा और फिर दूसरे विषयों पर चला गया।

वह क्या है जो रोमांस को इतना आकर्षक बनाता है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए हमें यह पता लगता है कि काम – रोमानी, कामुक, आवेशपूर्ण प्रेम – चरम आनंद, सांस्कृतिक, जैविक और मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का मिश्रण है। पाश्चात्य संस्कृति में रोमानी प्रेम की अवधारणा पिछले दो सौ सालों में रूमानियत, जिसने संसार के बारे में हमारी धारणा को बहुत हद तक एक रूप दिया है, के प्रभाव में समृद्ध हुई है। पूर्ववर्ती युगों में बोध में विचार को अस्वीकार करने के फलस्वरूप रूमानियत विकसित हुआ जिसका ज़ोर मानवीय तर्क पर अधिक था। इस नए दौर ने अंतर्प्रेरणा, मनोभाव, भावनाओं और आवेश को बढ़ाया। इसने व्यक्ति के आत्मगत अनुभव यानी संवेदी जगत के महत्त्व पर ज़ोर दिया और इसका झुकाव कल्पना जगत, दिवास्वप्न तथा ऐसे संसार की ओर था जो वास्तव में मौजूद नही है – आदर्श अतीत अथवा आदर्श भविष्य! इस विचार का न सिर्फ़ कला और साहित्य पर बल्कि राजनीति एवं आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति के विकास के सभी पहलुओं पर गहरा प्रभाव पड़ा।

रोमांस की तलाश का सबसे ज़्यादा बाध्य करने वाला तत्त्व किसी से प्रेम हो जाने का भाव है। हमें इस भाव की ओर खीचने में बहुत प्रभावशाली शक्तियाँ काम करती हैं जो कि सिर्फ़ रोमानी प्रेम के गुणगान से ज़्यादा हैं और जिन्हें हम अपनी संस्कृति से ग्रहण करते हैं। अनेक शोधकर्त्ताओं का मानना है कि ये शक्तियाँ जन्म से ही हमारे अंदर आनुवांशिक तौर पर समाहित की जाती हैं। प्रेम में पड़ जाने के साथ कामुक आकर्षण का भाव संभोग व्यवहार का सहजबोध युक्त तत्त्व है जिसे शायद आनुवांशिक तौर पर ही हमारे भीतर निर्धारित किया जाता है। विकास प्रक्रिया के नज़रिए से देखें तो किसी भी प्राणी का सबसे पहला काम होता है जीवित बचना, प्रजनन करना तथा अपनी जाति के अबाधित जीवन को सुनिश्चित करना। ऐसा करना प्रजातियों के सर्वाधिक हित में होता है, इसलिए यदि हम प्रेम में पड़ने के लिए बने हैं तो इस बात की संभावना बहुत बढ़ जाती है कि हम संभोग और प्रजनन करेंगे। इसलिए हमारे अंदर ऐसा करवाने का तरीका पहले से मौजूद है; कुछ विशेष परिस्थिति पैदा होने पर हमारा मस्तिष्क ऐसे रसायन तैयार करता और बाहर निकालता है जो सुख का एहसास जगाते हैं, वह "सुखद भाव" जो प्रेम में पड़ने से संबंधित है। जिस समय हमारा मस्तिष्क उन रसायनों का मिश्रण बना रहा होता है, उस समय वह एहसास हमारे ऊपर इतना ज़्यादा हावी हो जाता है कि हमें कुछ और दिखाई नहीं देता।

प्रेम में पड़ने के लिए प्रेरित करने वाली मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ शारीरिक शक्तियों जितनी ही प्रबल होती हैं। प्लेटो के सिम्पोज़ियम में सुकरात अरिस्टोफ़ैनिस के मिथक की कथा सुनाता है जो कामुक प्रेम के आरंभ से संबंध रखती है। इस मिथक के अनुसार, पृथ्वी के मूल निवासियों की आकृति गोल थी। उनके चार हाथ व चार पैर थे और उनका पिछला हिस्सा एवं कमर से मिलकर वृत्त बनाता था। ये आत्म-निर्भर लिंगरहित जीव बहुत अहंकारी थे तथा देवताओं पर आक्रमण करते रहते थे। उन्हें दंड देने के उद्देश्य से ज़ियूस उनके ऊपर वज्रपात करके उनके टुकड़े कर देता था। अब वे जीव दो हिस्सों में विभाजित हो गए तथा एक-दूसरे से मिलने के लिए तरसने लगे।

अपने दूसरे हिस्से के साथ मिल जाने की इसी प्रचीन इच्छा को आवेशपूर्ण, रोमानी प्रेम – काम – के रूप में देखा जाता है। यह सार्वभौमिक और अचेतन मानवीय ज़रूरत है। इसमें एक-दूसरे से मिलने, सीमाओं को तोड़ने और अपने प्रेमी के साथ एक हो जाने का भाव समाहित है। मनोवैज्ञानिक इसको अहंकार-परिधि का ढहना कहते हैं। कुछ का मानना है कि यह प्रक्रिया हमारे आरंभिक अनुभव के मूल में हैं और यह हमारे शैशव-काल के अनुभव को पुनर्जीवित करने का अचेतन प्रयास है, एक ऐसी आदिम अवस्था जिसमें शिशु पूरी तरह अपने अभिभावक या अपनी देखभाल करने वाले में लीन होता है।

प्रमाण बताते हैं कि शिशु स्वयं को शेष ब्रह्मांड से अलग नहीं मानते। उनमें निजता का कोई भाव नहीं होता या फिर वे अपने अस्तित्व को अपनी माँ, अन्य लोगों एवं अपने आस-पास की चीज़ों से जोड़कर देखते हैं। उन्हें पता नहीं होता कि वे स्वयं कहाँ समाप्त होते हैं और "अन्य" कहाँ से आरंभ होते हैं। उनके भीतर वस्तु स्थायित्व का अभाव होता है: वस्तुओं का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता; यदि वे किसी वस्तु से संबंधित नहीं है तो उनके

लिए उस वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है! उदाहरण के लिए, यदि किसी बच्चे के हाथ में झुनझुना है तो बच्चा उस झुनझुने को भी अपना अंश मानता है और यदि वह झुनझुना छिपाकर उससे दूर रख दिया जाए तो बच्चे के लिए उस झुनझुने का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।

जन्म के समय, मस्तिष्क "कच्चा" होता है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है और उसका मस्तिष्क परिपक्व होता जाता है, वैसे-वैसे बाहरी संसार के साथ बच्चे का व्यवहार परिष्कृत हो जाता है और बच्चे के अंदर "अन्य" की तुलना में "मैं" का निजी भाव प्रबल होने लगता है। इसके साथ, धीरे-धीरे अकेलेपन का भाव विकसित होता है और बच्चा अपनी सीमाओं से अवगत होने लगता है। निश्चित ही, संसार के साथ संपर्क में आने से बचपन और किशोरावस्था में व्यक्तित्व का विकास जारी रहता है। वे कौन हैं – लोगों में इस बात की समझ आंतरिक प्रस्तुतिकरण के फलस्वरूप विकसित होती है जब वे अपने जीवन में महत्त्वपूर्ण लोगों के साथ हुई बातचीत और समाज में सामान्य तौर पर अपनी भूमिका के बारे में सोचते हैं। धीरे-धीरे निजी अस्तित्व और अंतर-मनोवैज्ञानिक ढाँचा अधिक जटिल हो जाता है।

परंतु हमारे भीतर का कोई अंश फिर भी अपने अस्तित्व की आरंभिक सुखदायक अवस्था में लौटना चाहता है जिसमें अकेलेपन और अलग होने का भाव नहीं होता। बहुत-से समकालीन मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि आरंभिक "अकेलेपन" का अनुभव हमारे अवचेतन मन में समाहित होता है और वयस्क होने पर वह हमारे अचेतन मन एवं निजी कल्पनाओं में प्रवेश कर जाता है। वे मानते हैं कि "प्रेम" होने की स्थिति में अपने प्रेमी से मिलने पर उसी अनुभव की पुनरावृत्ति होती है जो शैशवकाल में अपनी माँ के साथ लीन होने पर होती है। वह उस जादुई भावना को, सर्वशक्तिशाली होने के भाव को फिर से जीवित कर देता है, मानो सब कुछ संभव है। इस भाव को परास्त करना बहुत कठिन होता है।

इस कारण रोमानी प्रेम की तलाश अत्यंत शक्तिशाली होती है। तो फिर समस्या क्या है और दलाई लामा ऐसा क्यों कहते हैं कि रोमांस की तलाश करना नकारात्मक चीज़ है?

मैं किसी संबंध को रोमानी प्रेम पर आधारित करने, और प्रेम की शरण में जाने की इस समस्या को ख़ुशी का स्रोत मानता हूँ। मुझे एक पुराने मरीज़ डेविड की याद आ रही है। चौंतीस वर्षीय डेविड प्रकृति का चित्रकार था। वह शुरू में जब मेरे क्लीनिक पर आया तो उसमें डिप्रेशन के भयानक लक्षण थे। उसने बताया कि शायद उसे अपने काम के तनाव के कारण डिप्रेशन हो रहा था, किंतु "अधिकांश मौकों पर बस ये ऐसा ही हो जाता है।" हमने डिप्रेशन की दवा पर बात की क्योंकि वह उसके पक्ष में था और इसलिए हमने डिप्रेशन दूर करने वाली दवा शुरू कर दी। दवा बहुत कारगर साबित हुई और तीन सप्ताह में वह अपने काम पर लौट आया। हालाँकि उसके मामले की थोड़ी जाँच करने पर यह समझने में देर नहीं लगी कि भयंकर डिप्रेशन के अलावा वह कई सालों से डिस्थीमिया से भी ग्रस्त था जो कि एक तरह का छली और हल्का किंतु ख़तरनाक किस्म का डिप्रेशन होता है। जब उसका भयंकर डिप्रेशन दूर हो गया तो हमने उसकी निजी जाँच शुरू की जिससे हमें उसकी भीतरी

मनोवैज्ञानिक गति का अंदाज़ा लग पाता जिसके कारण उसे इतने सालों से डिस्थीमिया की शिकायत थी।

कुछ ही मुलाकातों के बाद, एक दिन डेविड बहुत ख़ुशनुमा अंदाज़ में क्लीनिक पर आया। "मुझे बहुत अच्छा लग रहा है!" वह बोला। "मुझे बहुत सालों से इतना अच्छा कभी महसूस नहीं हुआ!"

इस ख़ुशख़बरी पर मेरी प्रतिक्रिया यह थी कि मैंने तुरंत उसकी मूड में विकार की उन्मादी अवस्था की संभावना की जाँच शुरू कर दी। हालाँकि, वह बात नहीं थी।

"मुझे प्यार हो गया है!" उसने मुझे बताया। "मैं उससे पिछले सप्ताह एक जगह मिला जहाँ पर मैं बोली लगा रहा हूँ। मैंने उसके जैसी सुंदर लड़की आज तक नहीं देखी... हम इस सप्ताह लगभग हर रात्रि को बाहर घूमने जा रहे हैं और मुझे नहीं पता, पर ऐसा लगता है कि हम जीवनसाथी हैं – एक-दूजे के लिए बने हैं। मुझे विश्वास नहीं हो रहा! मैं पिछले दो या तीन साल में किसी के साथ बाहर घूमने नहीं गया और मुझे ऐसा लगने लगा था कि मुझे कोई नहीं मिलेगा; और फिर एक दिन अचानक मुझे वह मिल गई।"

उस दिन अधिकांश समय डेविड अपनी नई महिला साथी का गुणगान करता रहा। "मुझे लगता है कि हम दोनों हर दृष्टिकोण से एक-दूसरे के लिए आदर्श हैं। इसमें कोई कामुक पक्ष भी नहीं है; हम लोगों की रुचि भी एक-सी चीज़ों में है और यह सोचकर डर लगता है कि हम लोग कितना ज़्यादा एक-सा सोचते हैं। निश्चित रूप से, मैं यथार्थवादी हो रहा हूँ और मुझे पता है कि कोई मनुष्य आदर्श नहीं होता... जैसे: मुझे एक दिन थोड़ा बुरा लग रहा था क्योंकि मुझे लगा कि वह क्लब में कुछ लड़कों के साथ हँसी-मज़ाक कर रही थी... लेकिन हम दोनों ने काफ़ी पी ली थी और वह सिर्फ़ मज़ाक कर रही थी। हमने बाद में इस विषय पर बात की और फिर सब ठीक हो गया।"

अगले सप्ताह डेविड फिर आया और उसने मुझे बताया कि उसने इलाज बंद करने का निर्णय कर लिया था। "मेरे जीवन में सब कुछ बढ़िया चल रहा है। मुझे अब इस इलाज का फ़ायदा समझ नहीं आ रहा," वह बोला। "मेरा डिप्रेशन ठीक हो गया है, मैं बच्चे की तरह सोता हूँ, मैं समय से काम पर जाता हूँ, अच्छा काम करता हूँ और मैं इस शानदार संबंध से ख़ुश हूँ जो प्रतिदिन और बेहतर होता जा रहा है। मैं मानता हूँ कि इलाज से मुझे बहुत लाभ हुआ है लेकिन मैं इस समय इलाज पर पैसे ख़र्च नहीं करना चाहता क्योंकि मुझे इसकी ज़रूरत ही नहीं है।"

मैंने उससे कहा कि मुझे उसे देखकर बहुत ख़ुश हो रही थी लेकिन मैंने उसे याद दिलाया कि अभी तो हमने उसके कुछ पारिवारिक मसलों को समझा है जो उसके डिस्थीमिया का कारण हो सकते हैं। इस बीच मेरे दिमाग़ में, ""प्रतिरोध" और "प्रतिरक्षा" जैसे सामान्य मनोविज्ञानी शब्द आ रहे थे।

उसने मेरी बात नहीं मानी। "मैं शायद इन बातों पर बाद में विचार करना चाहूँगा," वह बोला, "लेकिन मुझे लगता है कि इसका मुख्य कारण अकेलापन था, यह भाव कि जीवन में

किसी की कमी थी, कोई विशेष व्यक्ति जिसके साथ मैं अपनी बातें कर सकूँ और अब मुझे वह मिल गई है।"

वह उसी दिन इलाज को बंद करने की ज़िद्द पर अड़ा हुआ था। हमने उसके पारिवारिक चिकित्सक से चर्चा करके उसके दवा के नियमों का ध्यान रखने की बात की, उसके साथ समीक्षा की और इलाज बंद कर दिया और उसे यह आश्वासन दिया कि उसके लिए मेरे दरवाज़े हमेशा खुले रहेंगे।

कुछ महीनों बाद, डेविड फिर से मेरे ऑफ़िस में आया:

"मैं बहुत दुखी हूँ," उसने हताशा भरे स्वर में कहा। "पिछली बार जब मैं आपके पास आया था तो सब कुछ बहुत बढ़िया चल रहा था। मुझे सचमुच लगता था कि मुझे अपना आदर्श जीवनसाथी मिल गया है। यहाँ तक कि मैंने उससे शादी की बात भी की। परंतु मुझे ऐसा लगा कि मैं जितना उसके नज़दीक जाने का प्रयास कर रहा था वह उतनी मुझसे दूर जा रही थी। अंत में उसने मेरे साथ अपना संबंध तोड़ लिया। उसके कुछ सप्ताह बाद मुझे फिर से डिप्रेशन होने लगा। मैं उसे फोन करता और उसकी आवाज़ सुनकर फ़ोन बंद कर देता था और उसके ऑफ़िस के पास से गुज़रकर उसकी गाड़ी को देखता हुआ जाता था। लगभग एक महीने बाद मैं यह सब करते-करते ऊब गया – यह बहुत हास्यास्पद था – और इससे कम-से-कम मेरे डिप्रेशन के लक्षण ठीक होने लगे। मेरा मतलब मैं अब ठीक से खा-पी और सो रहा हूँ और अपना काम भी कर रहा हूँ और मुझे थकान आदि भी नहीं होती, लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मेरे भीतर किसी चीज़ का अभाव है। ऐसा लगता है कि मैं वापस पहले वाली स्थिति में लौट आया हूँ और मुझे वही महसूस होता है जो इतने सालों से हो रहा था..."

हमने फिर से इलाज शुरू कर दिया।

यह साफ़ है कि ख़ुशी के स्रोत के रूप में देखें तो रोमांस बहुत-सी इच्छाएँ छोड़ जाता है। शायद दलाई लामा ने रोमांस को रिश्ते का आधार न मानकर और रोमांस को सिर्फ़ "एक ऐसी कल्पना... जिसे पाया नहीं जा सकता" और प्रयास न करने योग्य मानकर कोई भूल नहीं की थी। नज़दीक से देखें तो अपने भिक्षु जीवन के प्रशिक्षण के आधार पर शायद वह रोमांस को नकारात्मक मूल्य न बतलाकर, बल्कि तटस्थ भाव से उसकी व्याख्या कर रहे थे। यहाँ तक कि शब्दकोश जैसे निष्पक्ष संदर्भ ग्रंथ में, जिसमें "रोमांस" और "रोमानी" शब्द की दर्जनों परिभाषाएँ होती हैं, अनेक वाक्यांश दिए हुए हैं जैसे: "एक कल्पित कथा," "एक अत्युक्ति", "एक झूठ", "उमंग-भरा और कल्पित, अव्यावहारिक", "बिना तथ्य व आधार का", "आदर्श संभोग अथवा प्रणय निवेदन से युक्त" आदि। यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य सभ्यता के साथ कुछ बदलाव आया है। एक हो जाने, एक-दूसरे में समा जाने से संबंधित काम के प्राचीन संदर्भ का अर्थ बदल गया है। रोमांस में, छल और धोखे के साथ, बनावटी गुण समा गया है, जिसके कारण ऑस्कर वाइल्ड ने निराश होकर लिखा है, "जब किसी को प्रेम हो जाता है तो वह पहले खुद को और फिर अंत में दूसरों को धोखा देता है। दुनिया इसी को रोमांस कहती है।"

इससे पहले हमने देखा था कि मनुष्य की ख़ुशी में निकटता व घनिष्ठता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसमें संदेह की कोई बात नहीं है। परंतु यदि व्यक्ति किसी रिश्ते में स्थायी संतोष खोज रहा है तो उस रिश्ते की नींव मज़बूत होनी चाहिए। यही कारण है कि दलाई लामा हमें रिश्ते का मूल आधार समझने के लिए प्रेरित करते हैं ताकि ऐसा न हो कि हमें बाद में उस रिश्ते में कटुता महसूस होने लगे। शारीरिक आकर्षण या प्रेम के गहन भाव के कारण, दो लोगों के बीच आरंभ में रिश्ता बन सकता है, जो उन्हें नज़दीक ले आता है, परंतु एक अच्छे एपॉक्सी गोंद की भांति उस आरंभिक रिश्ते में भी कई और तत्वों का होना आवश्यक है ताकि वह स्थायी संबंध का रूप ले सके। इन तत्वों की पहचान हेतु, हमें फिर से दलाई लामा द्वारा बताए मज़बूत रिश्ते बनाने के तरीके को देखना होगा – यानि अपने संबंध को स्नेह, दया और आपसी सम्मान पर आधारित करना होगा। रिश्तों को इन गुणों का आधार देकर हम न सिर्फ़ अपने प्रेमी या जीवनसाथी के साथ बल्कि अपने मित्रों, परिचितों या अजनबियों – यहाँ तक कि किसी भी अन्य मनुष्य के साथ गहरा और सार्थक संबंध बना सकते हैं। इससे संबंध स्थापित करने की असीमित संभावनाएँ और अवसर बनते हैं।

अध्याय 7

करुणा का मूल्य एवं उसके लाभ

करुणा की परिभाषा

जैसे-जैसे हमारी बातचीत आगे बढ़ी, मैंने पाया कि दलाई लामा के जीवन में करुणा के विकास की बहुत बड़ी भूमिका है और वह उनके लिए सिर्फ़ आत्मीयता व स्नेह पैदा करने तथा दूसरों के साथ अपने रिश्ते सुधारने का माध्यम नहीं है। यह स्पष्ट हो गया कि व्यावसायिक बौद्ध धर्मी होने के नाते, करुणा को विकसित करना उनके आध्यात्मिक मार्ग का अनिवार्य अंग है।

मैंने पूछा, “बौद्ध धर्म द्वारा व्यक्ति के आध्यात्मिक उत्थान में करुणा के महत्त्व पर ज़ोर को ध्यान में रखते हुए, क्या आप ‘करुणा’ की परिभाषा को थोड़ा अधिक स्पष्ट कर सकते हैं?”

दलाई लामा ने उत्तर दिया, “करुणा को मोटे तौर पर ऐसी मानसिक अवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो अहिंसक, हितकारी और अनाक्रामक हो। यह ऐसा मानोभाव है जो दूसरों के कष्टमुक्त होने की इच्छा पर आधारित है तथा दूसरों के प्रति निष्ठा, जिम्मेदारी और सम्मान के भाव से संबंध रखता है।”

“करुणा, जो तिब्बती शब्द त्से-वा का रूप है, की परिभाषा पर चर्चा के दौरान यह भाव भी आता है कि यह मस्तिष्क की ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने लिए अच्छी चीज़ों की कामना करता है। करुणा विकसित करने के लिए शायद व्यक्ति सबसे पहले स्वयं को कष्टों से मुक्त करने की कामना करता है और फिर उस स्वाभाविक विचार को विकसित करके, उसमें वृद्धि द्वारा, उस भाव का विस्तार कर उसे दूसरों तक पहुँचा सकता है।”

"अब, जब लोग करुणा के बारे में बात करते हैं तो मुझे लगता है कि वे प्रायः करुणा को आसक्ति समझ लेते हैं। इसलिए हम जब करुणा पर बात करते हैं तो हमें दोनों प्रकार के प्रेम या करुणा में फ़र्क़ समझना चाहिए। एक प्रकार की करुणा में आसक्ति का पुट है – किसी को नियंत्रित करने या किसी से प्रेम करने का भाव ताकि व्यक्ति आपको बदले में प्रेम कर सके। इस तरह का सामान्य प्रेम या करुणा या तो आंशिक होता है या फिर पूर्वाग्रह से ग्रस्त। सिर्फ़ इस पर आधारित रिश्ता अस्थिर होता है। उस व्यक्ति को मित्र मानने पर आधारित इस तरह का आंशिक रिश्ता कुछ हद तक भावनात्मक लगाव और निकटता का भाव पैदा कर सकता है। परंतु यदि परिस्थिति में थोड़ा-सा भी बदलाव आ जाए, जैसे कोई असहमति या फिर आपका दोस्त कुछ ऐसा कर दे जिससे आपको ग़ुस्सा आ जाए तो आपकी मानसिक अवस्था बिल्कुल बदल जाती है और फिर 'मेरा मित्र' वाली धारणा समाप्त हो जाती है। फिर आपका वह भावनात्मक लगाव गायब होता महसूस होगा और उस प्रेम और स्नेह के भाव के बजाय आपके मन में घृणा का भाव भी उत्पन्न हो सकता है। इस तरह, आसक्ति पर आधारित प्रेम, घृणा के साथ भी जुड़ सकता है।"

"परंतु एक और तरह की करुणा होती है जो इस तरह की आसक्ति से रहित होती है। यही सच्ची करुणा है। इस तरह की करुणा का भाव इस बात पर निर्भर नहीं करता कि मुझे यह व्यक्ति अथवा वह व्यक्ति प्रिय है। सच्ची करुणा इस तर्क पर आधारित होती है कि सभी मनुष्यों में, मेरी तरह, ख़ुश रहने और कष्टों से मुक्त होने की जन्मजात इच्छा मौजूद होती है, और मेरी तरह इस मूल इच्छा को पूरा करने का उन्हें स्वाभाविक अधिकार है। इस समानता और एकरसता की पहचान के आधार पर, आप दूसरों के साथ लगाव और निकटता का भाव विकसित करते हैं। इसी आधार पर आप करुणा को महसूस कर पाते हैं, चाहे सामने वाला व्यक्ति आपका मित्र हो अथवा शत्रु। यह आपके अपनी सोच पर आधारित न होकर दूसरे के मूल अधिकार पर निर्भर होती है। इस आधार पर आप प्रेम और करुणा को विकसित कर सकते हैं। यह सच्ची करुणा होती है।"

"इस तरह हम देख सकते हैं कि इन दो प्रकार की करुणा के भावों में अंतर समझना और सच्ची करुणा विकसित करना हमारे रोज़मर्रा के जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, विवाह में प्रायः भावनात्मक लगाव का भी एक तत्त्व होता है। परंतु मेरे विचार से अगर इसमें दो लोगों के बीच परस्पर सम्मान पर आधारित सच्ची करुणा का तत्त्व भी शामिल हो जाए तो विवाह अधिक समय तक चल सकता है। सिर्फ़ भावनात्मक लगाव के मामले में, बिना करुणा के, विवाह संबंध में अस्थिरता रहती है और इसके टूटने की संभावना बढ़ जाती है।"

भिन्न किस्म की करुणा, यानि ज़्यादा सार्वभौमिक करुणा और निजी भावना से विलग एक तरह की जातीय करुणा विकसित करने का विचार कठिन काम प्रतीत हो रहा था। अपने दिमाग़ में दोहराते हुए, मानो मैं ज़ोर से सोच रहा था, मैंने पूछा, "परंतु प्रेम अथवा करुणा व्यक्तिपरक भाव हैं। ऐसा लगता है कि भावनात्मक स्वर अथवा प्रेम या करुणा का भाव एक-सा ही होगा, उसमें चाहे 'आसक्ति' का पुट हो या फिर वह 'सच्ची' करुणा हो। तो

यदि व्यक्ति को दोनों मामलों में एक-सा भाव महसूस हो तो फिर दोनों में अंतर करने की क्या ज़रूरत है?"

दलाई लामा ने निर्णायक स्वर में जवाब दिया, "मेरे विचार से सच्चे प्रेम या करुणा में तथा आसक्ति पर आधारित प्रेम में गुणात्मक अंतर होता है। यह एक-सा भाव नहीं है। सच्ची करुणा का भाव कहीं अधिक मज़बूत और व्यापक होता है; उसकी विशेषता बहुत गहरी होती है। सच्ची करुणा और सच्चा प्रेम ज़्यादा स्थिर, ज़्यादा विश्वसनीय होता है। उदाहरण के लिए, अगर आप किसी प्राणी को बहुत कष्ट में देखते हैं, जैसे काँटे में फँसी कोई मछली, तो हो सकता है कि आपके मन में ऐसा भाव उठे कि आप उसका दर्द बर्दाश्त नहीं कर पा रहे। यह भाव उस प्राणी विशेष के साथ किसी ख़ास संबंध पर आधारित नहीं है, जैसे: 'अरे, वह प्राणी मेरा दोस्त है।' इस मामले में आपकी करुणा सिर्फ़ इस बात पर आधारित है कि उस प्राणी में भी एहसास है, वह भी दर्द महसूस कर सकता है और उसको भी उस दर्द से मुक्त होने का अधिकार है। इच्छा अथवा आसक्ति से मुक्त इस तरह की करुणा आगे चलकर अधिक दृढ़ और स्थायी सिद्ध होती है।"

करुणा के विषय पर और आगे बात करते हुए, मैंने कहा, "आपके दिए मछली वाले उदाहरण में आपने एक महत्त्वपूर्ण बात उठाई है – कि वह अपना दर्द बर्दाश्त नहीं कर पाती।"

"हाँ," दलाई लामा ने कहा, "दरअसल, एक लिहाज़ से करुणा को ऐसे परिभाषित किया जा सकता है कि वह ऐसा भाव है जिसमें दूसरे अन्य प्राणियों का कष्ट सहन नहीं होता। इस भाव को जागृत करने के लिए व्यक्ति को दूसरों के कष्ट की तीव्रता या उसकी गंभीरता को समझना ज़रूरी है। तो, मुझे ऐसा लगता है कि व्यक्ति जितना ज़्यादा कष्ट और उसके विभिन्न प्रकारों को समझेगा, उसका करुणा का भाव उतना ही गहरा होगा।"

मैंने प्रश्न उठाया,"मैं इस बात को मानता हूँ कि दूसरों के कष्ट की ज़्यादा समझ होने से करुणा भाव में वृद्धि होती है। वास्तव में, करुणा का अर्थ ही दूसरों के कष्ट और भावनाओं को समझना है। परंतु इससे भी मूल प्रश्न एक और है: जब हम स्वयं अपने कष्ट से दूर रहना चाहते हैं तो फिर हम किसी और के कष्ट में रुचि क्यों लें? मेरा मतलब है कि हम लोग अपने कष्ट और अपनी परेशानियों से बचने के लिए कितना कुछ करते हैं, यहाँ तक कि दवाइयाँ भी खाते हैं। तो फिर हम जान-बूझकर दूसरों के कष्ट से क्यों जुड़ें?"

दलाई लामा ने बेझिझक उत्तर दिया, "मेरे विचार से हमारे अपने कष्ट में और करुणामयी अवस्था में महसूस किए गए दूसरों के कष्ट में बहुत अंतर – गुणात्मक अंतर होता है।" वह रुके और फिर मानो बिना प्रयास किए मेरी ही भावनाओं को लक्ष्य बनाते हुए उन्होंने आगे कहा, "जब आप अपने कष्ट के बारे सोचते हैं तो वह आपके उपर हावी हो जाता है। वह आपके ऊपर बोझ बन जाता है – आप उसके नीचे दबा हुआ – असहाय महसूस करते हैं। इसमें व्यक्ति निराश हो जाता है और आपकी अपनी संवेदनाएँ क्षीण होने लगती हैं।

"करुणा जागृत करने की स्थिति में, जब आप दूसरे के कष्ट को महसूस करते हैं तो

शुरू में आपको थोड़ा असहज, असुविधाजनक और असहनीय लग सकता है। परंतु करुणा के मामले में, यह भाव काफ़ी अलग होता है; असुविधा के भाव में बहुत उच्च स्तर की सतर्कता और दृढ़ता होती है क्योंकि आप आगे बढ़कर और जान-बूझकर किसी बड़े उद्देश्य के लिए सामने वाले के कष्ट को स्वीकार करते हैं। इसमें लगाव और प्रतिबद्धता का भाव होता है, दूसरों की मदद करने की इच्छा होती है और निराशा की जगह उत्साह होता है। यह बात एक धावक की तरह है। कठोर प्रशिक्षण के दौरान, एक धावक को बहुत कष्ट सहना पड़ता है – वह परिश्रम करता है, पसीना बहाता है। मेरे ख़्याल से उसमें बहुत तकलीफ़ और थकान होती होगी। परंतु धावक के लिए यह अनुभव कष्टप्रद नहीं होता। धावक उसे बड़ी उपलब्धि मानता है, उसे उस अनुभव में ख़ुशी महसूस होती है। परंतु यदि उसी व्यक्ति को कुछ और शारीरिक श्रम करने को दे दिया जाए जो उसके प्रशिक्षण का हिस्सा नहीं है तो वह धावक सोचेगा, 'ओह, मुझे इतना भयानक कष्ट क्यों दिया जा रहा है?' तो इस तरह मानसिक रुख से बहुत फ़र्क़ पड़ता है।"

विश्वास से भरे इन चुने हुए शब्दों ने मुझे दबाव की भावना से उठाकर कष्ट के निवारण और उस कष्ट से ऊपर उठने की संभावना के भाव तक पहुँचा दिया।

"आपने कहा कि इस तरह की करुणा को जागृत करने के लिए पहला क़दम उस कष्ट को समझना है। परंतु करुणा के भाव में वृद्धि करने की क्या कुछ और बौद्ध तकनीकें भी हैं?"

"हाँ। उदाहरण के लिए बौद्ध धर्म के महायान में हमें करुणा विकसित करने के दो तरीके मिलते हैं। इन्हें 'सप्त-बिंदु-कारण-प्रभाव' पद्धति और 'दूसरों के साथ स्वयं का विनिमय एवं समानता' कहते हैं। 'विनिमय एवं समानता' पद्धति आपको शांतिदेव की गाइड टू दि बोधिसत्व वे ऑफ़ लाइफ़ के आठवें अध्याय में मिलेगी।" हमारे समय की समाप्ति को ध्यान में रखकर अपनी घड़ी पर नज़र डालते हुए वे बोले, "परंतु मेरे खयाल से हम सार्वजनिक वार्ता के दौरान करुणा संबंधी कुछ अभ्यास और ध्यान इस सप्ताह के अंत में करेंगे।"

इसी के साथ वह स्नेहपूर्ण ढंग से मुस्कराए और हमारी चर्चा को विराम देते उठ खड़े हुए।

मानव जीवन का सही महत्त्व

अपनी अगली वार्ता में करुणा पर अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहना शुरू किया, "हम लोग करुणा के महत्त्व और आपके इस मत पर विचार करते रहे हैं कि ख़ुश रहने के लिए स्नेह, आत्मीयता, मैत्री आदि बातें ज़रूरी हैं। परंतु मैं सोच रहा हूँ – मान लीजिए, कोई अमीर व्यापारी आपके पास आकर कहता है, 'परम पूज्य, आप कहते हैं कि ख़ुश रहने के लिए आत्मीयता और करुणा ज़रूरी हैं। परंतु मेरे स्वभाव में आत्मीयता और करुणा का अभाव है। सच कहूँ तो मैं ज़्यादा दयालु या परोपकारी नहीं हूँ, बल्कि मैं थोड़ा विवेकी,

व्यावहारिक और बुद्धिमान किस्म का व्यक्ति हूँ और मैं उस तरह के भाव महसूस नहीं कर पाता हूँ। फिर भी, मुझे अच्छा लगता है, मैं अपने वर्तमान जीवन से ख़ुश हूँ। मेरे पास सफल व्यापार है, मित्र हैं, मैं अपनी पत्नी व बच्चों की सभी ज़रूरतें पूरी करता हूँ और उनके साथ मेरे संबंध भी अच्छे हैं। मुझे नहीं लगता कि मुझे किसी बात की कमी है। करुणा, परोपकार, आत्मीयता आदि विकसित करना सुनने में अच्छा लगता है, लेकिन मेरे लिए इसका क्या अर्थ है? यह सब कितना भावुक लगता है..."

"सबसे पहले," दलाई लामा ने उत्तर दिया, "यदि कोई व्यक्ति मुझसे यह सब कहे तो मुझे इस बात पर संदेह होगा कि क्या वह सचमुच ख़ुश है। मैं सच में यही मानता हूँ कि जीने के लिए व्यक्ति में करुणा का होना ज़रूरी है और उसके बिना जीवन में एक बहुत आवश्यक अंश का अभाव हो जाता है। दूसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता ही प्रेम और करुणा का तत्त्व है और उसके बिना, उदाहरण के लिए, मेरे ख़्याल से एक पुरुष को अपनी पत्नी से संबंध निभाने में परेशानी हो सकती है। यदि मनुष्य दूसरों के कष्ट और उसकी भावनाओं के प्रति असंवेदनशील हो तो चाहे वह अरबपति हो, उसके पास अच्छी शिक्षा हो, उसे अपनी पत्नी व बच्चों के साथ कोई परेशानी न हो, उसके बहुत-से मित्र हों और धनी व्यापारियों, राजनेताओं एवं देश के नेताओं से उसके संबंध हों, तो भी मेरे विचार से इन सब चीज़ों के बावजूद इन सबका सकारात्मक प्रभाव सिर्फ़ सतह पर ही महसूस होता है।"

"परंतु यदि उसे ऐसा लगता रहे कि वह दयालु नहीं है, फिर भी उसके पास किसी चीज़ की कमी नहीं है... तो ऐसे व्यक्ति को करुणा का महत्त्व समझाना थोड़ा मुश्किल होगा..."

दलाई लामा रुककर सोचने लगे। हमारी बातचीत के दौरान बीच-बीच में उनके रुक जाने से कोई असहज मौन उत्पन्न नहीं होता था; बल्कि उससे गुरुत्वाकर्षण जैसा बल पैदा होता था जिससे उनके बोलना शुरू करने के बाद उनके शब्दों में ज़्यादा वज़न और अर्थ आता था।

उन्होंने फिर बोलना शुरू किया, "यदि ऐसा हो भी तो ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो मैं कह सकता हूँ। सबसे पहले, मैं उन्हें यह सलाह दूँगा कि उन्हें अपने अनुभव पर विचार करना चाहिए। उन्हें पता है कि यदि कोई उनके साथ स्नेह और दया का व्यवहार करता है तो उन्हें अच्छा लगता है। तो इस अनुभव के आधार पर उन्हें यह समझने में आसानी होगी कि दूसरे लोगों के साथ भी यदि आत्मीय और दयालु व्यवहार किया जाए तो उन्हें भी बहुत अच्छा महसूस होगा। इस तरह, इस बात को समझने से उन्हें दूसरों की भावनात्मक संवेदनशीलता का एहसास होगा और इससे उन्हें दूसरों को स्नेह व करुणा दिखाने का मन करेगा। इसी के साथ उन्हें यह भी पता लगेगा कि आप दूसरों को जितना स्नेह देते हैं, आपको भी बदले में उतना ही स्नेह मिलता है। मुझे नहीं लगता कि उन्हें यह बात समझने में ज़्यादा समय लगेगा। और फलस्वरूप, यह परस्पर विश्वास और मित्रता का आधार बन जाता है।"

अब मान लीजिए कि उस व्यक्ति के पास सभी भौतिक सुविधाएँ हैं, वह जीवन में सफल है और उसके बहुत-से मित्र हैं, वह आर्थिक रूप से संपन्न है, आदि। शायद यह भी

संभव है कि उसका परिवार और बच्चे भी उससे संतुष्ट हैं क्योंकि वह व्यक्ति अपने जीवन में सफल है और उनके पास पर्याप्त धन और सुविधाएँ हैं। मुझे लगता है कि एक सीमा तक मानवीय आत्मीयता और स्नेह के बिना भी उसे किसी बात की कमी महसूस नहीं होगी। परंतु अगर उसे लगता है कि सब कुछ ठीक है और जीवन में करुणा विकसित करने की कोई आवश्यकता नहीं है तो मेरे ख़्याल से उसकी ऐसी सोच का कारण अज्ञानता और अदूरदर्शिता है। अगर ऐसा लग भी रहा है कि लोग उस व्यक्ति के साथ जुड़े हुए हैं तो सच्चाई यह है कि उस व्यक्ति के साथ लोगों का जुड़ाव या संबंध इसलिए है क्योंकि वह सफल और धनवान है। हो सकता है कि वे लोग उसके व्यक्तित्व के बजाय उसके ऐश्वर्य और सत्ता से प्रभावित हों। इसलिए, उन्हें भले ही उससे आत्मीयता और स्नेह नहीं मिल रहा किंतु फिर भी वे संतुष्ट हैं और उन्हें किसी अन्य चीज़ की अपेक्षा नहीं है। परंतु यदि उसकी संपत्ति कम हो जाए तो उसके रिश्तों का आधार कमज़ोर पड़ जाएगा। तब उसे आत्मीयता न होने का प्रभाव दिखाई देगा और उसे बहुत पीड़ा होगी।

"हालाँकि, अगर लोगों में दया का भाव हो तो वे उस पर निर्भर रह सकते हैं; यदि उन्हें आर्थिक कष्ट होता है और उनकी संपत्ति में कमी आती है तो भी वे अपने मित्रों के साथ अपना सुख-दुख बाँट सकते हैं। विश्व की अर्थव्यवस्थाएँ सदैव बहुत क्षीण होती हैं और हमें जीवन में अनेक नुकसान उठाने पड़ते हैं परंतु हमें करुणा का भाव हमेशा अपने साथ रखना चाहिए।"

कमरे में लाल रंग के वस्त्र धारण किए एक सेवक ने प्रवेश किया और चुपचाप प्याली में चाय डालकर चला गया। इसके बाद दलाई लामा फिर बोलने लगे, "निश्चय ही, किसी को करुणा का महत्त्व समझाने के प्रयास में, कुछ मामलों में हो सकता है कि आपका सामना किसी अत्यंत कठोर, व्यक्तिपरक और स्वार्थी से हो, कोई ऐसा जिसे सिर्फ़ अपनी और अपने हितों की परवाह हो। यह भी संभव है कि कुछ ऐसे लोग हों जिनमें अपने प्रियजनों या अपने निकट रहने वाले लोगों के साथ सहानुभूति व्यक्त करने की भी क्षमता न हो। परंतु ऐसे लोगों को भी इस आधार पर करुणा और प्रेम का महत्त्व समझाया जा सकता है कि यह उनके निजी हितों की पूर्ति का सबसे अच्छा तरीका है। वे चाहते हैं कि वे स्वस्थ रहें, दीर्घायु हों, उनका दिमाग़ शांत रहे और वे ख़ुश व प्रसन्न रहें। यदि इन चीज़ों की इच्छा है तो मैंने सुना है कि इस बात का वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध है कि प्रेम व करुणा द्वारा इन चीज़ों में वृद्धि की जा सकती है... परंतु एक डॉक्टर, मनोचिकित्सक होने के नाते शायद आपको इन वैज्ञानिक दावों के बारे में अधिक जानकारी होगी?"

"हाँ," मैंने हामी भरी। "मेरे विचार से मस्तिष्क की करुणामयी अवस्था के शारीरिक तथा भावनात्मक लाभ के बारे में निश्चित ही, इन दावों के वैज्ञानिक प्रमाण मौजूद हैं।"

"तो मुझे लगता है कि किसी को इन तथ्यों और वैज्ञानिक अध्ययनों के बारे में जानकारी देने से कुछ लोगों में ज़्यादा करुणामयी अवस्था को विकसित करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है...," दलाई लामा ने कहा। परंतु मेरे ख्याल से इन वैज्ञानिक अध्ययनों के अलावा भी ऐसे तर्क हैं जिन्हें लोग समझ सकते हैं और अपने रोज़मर्रा के व्यावहारिक या

प्रत्यक्ष अनुभव से जान सकते हैं। उदाहरण के लिए, आप कह सकते हैं कि करुणा की कमी से व्यक्ति निष्ठुर हो जाता है। इस बात को दर्शाने वाले अनेक उदाहरण हैं, कि अंदर किसी स्तर पर, निष्ठुर लोग दुखी और असंतुष्ट रहते हैं, जैसे स्तालिन और हिटलर। ऐसे लोगों में असुरक्षा और डर का भाव होता है। मेरे विचार से सोते समय भी उनमें वह डर बना रहता है... कुछ लोगों के लिए यह सब समझना मुश्किल होगा लेकिन आप एक बात कह सकते हैं कि इन लोगों में किसी चीज़ की कमी होती है जो दयालु लोगों में पाई जाती है – आज़ादी का भाव, परित्याग का भाव जिसके कारण जब आप सोते हैं तो आप चिंता मुक्त रहते हैं। निष्ठुर लोगों में कभी यह भाव नहीं आ पाता। कोई चीज़ उन्हें सदैव जकड़े रखती है; किसी चीज़ की उनके ऊपर पकड़ बनी रहती है और इस कारण वे आज़ादी और चिंतामुक्त होने के भाव को महसूस नहीं कर पाते।"

वह एक पल के लिए रुके, अपना सिर खुजाया और फिर बोलने लगे, "हालाँकि मैं सिर्फ़ अनुमान लगा रहा हूँ, यदि आप ऐसे कुछ निष्ठुर लोगों से पूछेंगे, 'आप कब ज़्यादा ख़ुश थे, बचपन में जब आपकी माँ ने आपकी देखभाल की थी और अपने परिवार से आपकी निकटता हो गई थी या अब, जबकि आपके पास ज़्यादा ताकत, पैसा और सत्ता है?' मेरे ख़्याल से वे कहेंगे कि उन्हें बचपन में ज़्यादा अच्छा महसूस होता था। शायद स्तालिन को भी उसकी माँ ने बचपन में प्यार किया होगा।"

मैंने कहा, "मुझे लगता है कि आपने स्तालिन को बड़ा करने के बारे में कहकर अपनी बात का, करुणारहित जीवन के परिणामों का बिल्कुल सटीक उदाहरण दिया है। यह सब जानते हैं कि निष्ठुरता और संदेह करने की उसकी आदत, उसके स्वभाव की दो मुख्य विशेषताएँ थीं। वह निष्ठुरता को गुण मानता था और उसने अपना नाम जुगाशविलि से बदलकर स्तालिन रख लिया था जिसका अर्थ था 'इस्पात (स्टील) का मानव।' जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ, उसके स्वभाव में कठोरता और संदेहवृत्ति बढ़ती गई। संदेह करने की उसकी आदत विस्मयकारी थी। दूसरों के प्रति भय और संदेह के कारण ही उसने देश के विभिन्न लोगों के विरुद्ध भीषण युद्ध और संहार को अंजाम दिया, जिसके बाद लाखों लोगों को बंदी बनाया गया और मार डाला गया। परंतु इसके बावजूद उसे हर तरफ़ अपने शत्रु दिखाई देते थे। अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले उसने निकिता ख्रुश्चेव से कहा, 'मुझे किसी पर, यहाँ तक कि अपने आप पर भी विश्वास नहीं है। अंत में वह अपने सबसे विश्वासपात्र करुणा का मूल्य एवं उसके लाभ लोगों के भी ख़िलाफ़ हो गया था। साफ़ था कि वह जितना ज़्यादा कठोर और शक्तिशाली होता गया, उतना ही अधिक दुखी होता गया। उसके एक मित्र ने बताया कि अंत में उसके पास दुख के अतिरिक्त कोई मानवीय विशेषता नहीं बची थी। उसकी बेटी स्वेतलाना ने बताया कि किस तरह वह अंत में अकेला और भीतर से खाली हो गया था तथा इस सीमा तक सोचने लगा था कि उसकी नज़र में कोई व्यक्ति पूरी तरह निष्ठावान एवं आत्मीय नहीं था।"

"खैर, मैं जानता हूँ कि स्तालिन जैसे लोगों को और उन्होंने जो किया, वह क्यों किया, इस बात को समझना आसान नहीं होता। परंतु हम इस बारे में बात कर रहे थे कि कठोर

हृदय वाले ऐसे लोग भी अगर अपने अतीत में देखें तो उन्हें भी अपने बचपन में, अपनी माँ से मिले प्रेम-भरे कुछ क्षण याद आ सकते हैं। परंतु उन लोगों का क्या जिनका बचपन अच्छा नहीं बीता या जिन्हें अपनी माँ का प्यार नहीं मिला? ऐसे लोग जिनका शोषण किया गया, इत्यादि? अब हम करुणा के बारे में बात कर रहे हैं। लोगों में करुणा की क्षमता विकसित करने के लिए, क्या आपको नहीं लगता कि उनके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें अपने माता-पिता या देखभाल करने वालों के संरक्षण में बड़ा किया जाना चाहिए जिनसे उन्हें प्यार और स्नेह मिल सके?"

"हाँ, मुझे लगता है यह ज़रूरी है।" वह रुके और फिर अपनी माला के मनके अपनी उँगलियों के बीच घुमाते हुए बोले, "ऐसे कुछ लोग होते हैं जिन्होंने बचपन से कष्ट भोगा होता है और जिन्हें दूसरों से प्रेम नहीं मिल पाता जिसके कारण बाद में ऐसा लगता है जैसे उनके अंदर कोई मानवीयता, किसी तरह की करुणा और स्नेह का भाव नहीं है, और वे अत्यंत कठोर और क्रूर हो जाते हैं..." दलाई लामा फिर से रुके और फिर कुछ पल उस प्रश्न पर ध्यान से विचार करते रहे। जब उन्होंने आगे झुककर चाय का प्याला उठाया तो भी उनके कंधों का आकार बता रहा था कि वह गहराई से चिंतन कर रहे थे। उन्होंने तत्काल अपनी बात को कहने की जल्दी नहीं दिखाई और हम चुपचाप चाय पीते रहे। अंत में उन्होंने कंधे उचकाए मानो वह यह स्वीकार कर रहे थे कि उनके पास इसका कोई समाधान नहीं है।

"क्या आपको लगता है कि परानुभूति और करुणा बढ़ाने के तरीके उस तरह की कठोर पृष्ठभूमि वाले लोगों के लिए उपयोगी नहीं होंगे?"

"अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों के आधार पर किसी भी तरह की पद्धति और तकनीक का पालन करने के अनेक तरह के लाभ होते हैं," उन्होंने समझाते हुए कहा। "यह भी संभव है कि कुछ मामलों में ये तरीके बिल्कुल कारगर न हों..."

अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए मैंने उन्हें टोका, "और करुणा भाव में वृद्धि की वे विशिष्ट पद्धतियाँ जिनका आप उल्लेख कर रहे थे...?"

"हम इसी की बात कर रहे थे। पहले, सीखना और करुणा के महत्त्व को अच्छी तरह समझना – इससे आपके अंदर विश्वास और दृढ़ता पैदा होती है। इसके बाद परानुभूति बढ़ाने के तरीके, जैसे: अपनी कल्पना और रचनात्मकता का प्रयोग करके और स्वयं को दूसरे की परिस्थिति में रखकर देखना। इस सप्ताह के अंत में सार्वजनिक चर्चा भाषण के दौरान हम कुछ अभ्यास आदि पर बात करेंगे जैसे: तॉन्ग-लेन का अभ्यास जिससे करुणा भाव प्रबल होता है। परंतु मेरे विचार से यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि तॉन्ग-लेन जैसी पद्धतियाँ अधिक से अधिक लोगों, या कम-से-कम मानव जनसंख्या के बड़े हिस्से की सहायता के लिए विकसित की गई थीं। परंतु यह अपेक्षा नहीं की गई थी कि इससे संपूर्ण जनसंख्या यानि शत-प्रतिशत लोगों का भला हो सकेगा।

"हालाँकि मुख्य बात यह है... यदि हम करुणा जगाने के विभिन्न तरीकों की बात कर रहे हैं तो महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लोग करुणा की क्षमता विकसित करने की ईमानदारी से

कोशिश करते हैं। वे सचमुच किस सीमा तक करुणा जागृत कर पाएँगे, यह बात अनेक तत्त्वों पर निर्भर करती है, कौन कह सकता है? परंतु यदि वे अपनी ओर से दयालु बनने, करुणा पैदा करने और विश्व को बेहतर जगह बनाने का सच्चा प्रयास करेंगे तो अंत में वे कह सकते हैं, 'कम से कम, मैंने अपना काम ठीक से किया!"

करुणा के लाभ

हाल के वर्षों में ऐसे बहुत से अध्ययन हुए हैं जो इस बात का समर्थन करते हैं कि करुणा और परोपकार का भाव विकसित करने से हमारे शारीरिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य पर सकारात्मक असर पड़ता है। उदाहरण के लिए, एक विख्यात प्रयोग के दौरान, हार्वर्ड युनिवर्सिटी के एक मनोवैज्ञानिक डेविड मेकक्लेलैंड ने विद्यार्थियों के एक समूह को एक फिल्म दिखाई जिसमें मदर टेरेसा को कोलकाता के बीमार और ग़रीब लोगों की सेवा करते दिखाया गया था। विद्यार्थियों ने बताया कि फ़िल्म ने उनके अंदर करुणा का भाव जगाया। बाद में, उन्होंने विद्यार्थियों के थूक की जाँच की तो पाया कि उसमें इमूनोग्ल्ब्यूलिन-ए की मात्रा बढ़ गई थी, जो ऐसा एंटीबॉडी है जिससे श्वसन संक्रमण से लड़ने में मदद मिलती है। युनिवर्सिटी ऑफ़ मिशिगन रिसर्च सेंटर में जेम्स हाउस द्वारा किए गए एक और अध्ययन में शोधकर्त्ताओं ने पाया कि लगातार स्वयंसेवी कार्य से और लोगों के साथ आत्मीय और स्नेहपूर्वक मिलते रहने से जीवनकाल और स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। मस्तिष्क-शरीर चिकित्सा के नए क्षेत्र के बहुत-से शोधकर्त्ताओं ने भी इसी तरह के निष्कर्ष निकाले हैं कि मस्तिष्क की सकारात्मक अवस्था हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को बेहतर बना सकती है।

शारीरिक स्वास्थ्य में होने वाले लाभ के अतिरिक्त इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि करुणा और सौम्य व्यवहार से भावनात्मक स्वास्थ्य में भी सुधार होता है। अध्ययन बताते हैं कि दूसरों की मदद करने से ख़ुशी मिलती है, मन शांत होता है और डिप्रेशन में कमी आती है। हार्वर्ड के विद्यार्थियों के एक समूह द्वारा किए गए तीस साल के शोध में, शोधकर्त्ता जॉर्ज वाइलेंट ने यह निष्कर्ष निकाला कि परोपकारी जीवनशैली अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का महत्त्वपूर्ण अंश है। ऐलेन लुक्स द्वारा हज़ारों समाजसेवी लोगों पर किए गए एक अन्य सर्वे से पता लगा कि इनमें से 90 प्रतिशत स्वयंसेवियों को इस कार्य से एक तरह का "आनंद" मिलता था और वे इससे अच्छा एवं अधिक ऊर्जावान महसूस करते थे। उन्हें उस कार्य से शांति और आत्म-तुष्टि भी प्राप्त होती थी। इस तरह के देखभाल वाले कार्यों से न सिर्फ़ भावनात्मक पोषण मिलता था, बल्कि यह भी पाया गया कि इस "सहायक शांति" का अनेक तनाव संबंधी शारीरिक तकलीफ़ों से मिलने वाले आराम का भी संबंध था।

जहाँ एक ओर वैज्ञानिक प्रमाण स्पष्ट तौर पर करुणा के सच्चे और व्यावहारिक महत्त्व पर दलाई लामा के विचार का समर्थन करते हैं, वहीं व्यक्ति को इस बात की सच्चाई जानने के लिए सिर्फ़ सर्वे और प्रयोगों पर निर्भर रहने की ज़रूरत नहीं है। हम अपने और अपने आस-पास के लोगों के जीवन में देखभाल, करुणा तथा निजी ख़ुशी के बीच नज़दीकी

संबंध को जान सकते हैं। साठ-वर्षीय बिल्डिंग ठेकेदार जोसफ़, जिससे मैं कुछ वर्ष पहले मिला था, इस तथ्य का अच्छा उदाहरण है। तीस सालों तक जोसफ़, ऐरिज़ोना में निर्माण क्षेत्र में आई तेज़ी के चलते, अरबपति हो गया। हालाँकि, 1980 के दशक के अंत में ऐरिज़ोना के इतिहास में स्थावर संपदा के क्षेत्र में सबसे बड़ी गिरावट दर्ज की गई। जोसफ़ ने बहुत ज़्यादा लाभ कमाना चाहा लेकिन वह अपना सब कुछ गँवा बैठा। वह दिवालिया हो गया। उसकी आर्थिक परेशानियों के कारण उसके वैवाहिक संबंध पर असर पड़ने लगा जिसके कारण पच्चीस साल की शादी के बाद उसका तलाक़ हो गया। स्वाभाविक रूप से जोसफ़ यह सब झेल नहीं पाया। वह बहुत ज़्यादा शराब पीने लगा। सौभाग्य से, एए कार्यक्रम की मदद से वह शराब छोड़ने में सफल रहा। अपने एए कार्यक्रम के अंतर्गत वह प्रायोजक बन गया और शराब पीने वाले अन्य लोगों को शराब छोड़ने में मदद करने लगा। उसने पाया कि उसे दूसरों की सहायता में आनंद आने लगा और फिर उसने अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर यही काम शुरू कर दिया। उसने अपने व्यापारिक ज्ञान का लाभ उठाया और आर्थिक रूप से कमज़ोर लोगों की मदद करने लगा। अपने वर्तमान जीवन के बारे में बात करते हुए जोसफ़ ने कहा, “मेरा एक बहुत छोटा रिमॉडलिंग का बिज़नेस है। मेरे इस काम से मेरी आय बहुत कम होती है, परन्तु मैं जानता हूँ कि मैं पहले जैसा अमीर नहीं बन सकूँगा। परंतु मज़े की बात यह है कि मैं अब पहले जैसा धनी बनना भी नहीं चाहता। मुझे अब विभिन्न संस्थाओं के साथ स्वयंसेवी कार्य में, लोगों के साथ प्रत्यक्ष काम करने और दूसरों की मदद करने में अधिक मज़ा आता है। आजकल, मुझे एक दिन में ही उतना सुख मिलता है जितना पहले एक महीने में मिलता था जब मैं बहुत पैसा कमाता था। मुझे इतनी ख़ुशी जीवन में पहले कभी नहीं हुई!”

करुणा पर ध्यान

अपनी वार्ता के दौरान किए वायदे के अनुसार, दलाई लामा ने ऐरिज़ोना में अपने एक सार्वजनिक भाषण के अंत में करुणा पर ध्यान का एक अभ्यास करवाया। वह बहुत सरल था। फिर भी उन्होंने अत्यंत शक्तिशाली और शानदार ढंग से उसके द्वारा करुणा पर पहले हुई चर्चा को सार-संक्षिप्त कर दिया जिसमें उन्होंने पाँच मिनट का अभ्यास करवाया जो बहुत ही सीधा और सटीक था।

“करुणा जागृत करने के दौरान आपको पहले इस बात को समझना होता है कि आप कष्ट नहीं चाहते तथा आपको ख़ुश रहने का अधिकार है। इसे अपने अनुभव द्वारा जाँचा एवं सत्यापित किया जा सकता है। इसके बाद आपको यह समझ में आता है कि आपकी तरह, दूसरे लोग भी कष्ट नहीं चाहते तथा उन्हें भी ख़ुश रहने का अधिकार है। तो यह आपका करुणा जागृत करने की शुरुआत का आधार बन जाता है।”

“तो... आज हम लोग करुणा पर ध्यान लगाने का अभ्यास करते हैं। किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में सोचिए जो सचमुच कष्ट में है, जिसे तकलीफ़ हो रही है या जिसकी स्थिति

दुर्भाग्यपूर्ण है। इस ध्यान से पहले, तीन मिनट उस व्यक्ति के कष्ट के बारे में विश्लेषणात्मक ढंग से सोचिए – उसकी तकलीफ़ और उसकी दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था के बारे में सोचिए। कुछ मिनट उस व्यक्ति के कष्ट के बारे में विचार करने के बाद, अब इससे जुड़ने की कोशिश कीजिए और यह सोचिए, 'इस व्यक्ति में भी कष्ट, ख़ुशी, आनंद और दर्द सहने की उतनी ही क्षमता है जितनी क्षमता मुझमें हैं।' इसके बाद अपनी स्वाभाविक प्रतिक्रिया को बाहर आने दें – उस व्यक्ति के प्रति करुणा का स्वाभाविक भाव। एक निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश कीजिए: सोचिए कि आपकी कितनी प्रबल इच्छा है कि वह व्यक्ति अपनी पीड़ा से मुक्त हो जाए। यह दृढ़ निश्चय कीजिए कि आप उस व्यक्ति की पीड़ा दूर करने में उसकी मदद करेंगे। अंत में, अपने मस्तिष्क को सिर्फ़ इस निष्कर्ष और दृढ़ विश्वास पर केंद्रित कर दीजिए और फिर ध्यान के अंतिम कुछ मिनटों में अपने मस्तिष्क को करुणामय या प्रेमपूर्ण अवस्था में विकसित करने का प्रयास कीजिए।"

इसी के साथ, दलाई लामा पैर मोड़कर ध्यान की मुद्रा में बैठ गए और अपने दर्शकों के साथ ध्यान करते हुए बिल्कुल स्थिर हो गए। पूर्ण शांति छा गई। परंतु उस दिन सुबह सभा में बैठना कुछ असहज लग रहा था। मैं कल्पना कर सकता हूँ कि कठोर से कठोर व्यक्ति के लिए भी पंद्रह सौ लोगों के बीच बैठकर द्रवित हो जाना स्वाभाविक था, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में करुणा का विचार चल रहा था। कुछ मिनटों के बाद, दलाई लामा ने हल्के किंतु गहरे और रागात्मक स्वर में कोई तिब्बती मंत्र बोलना आरंभ कर दिया जो बहुत आरामदायक तथा शामक था।

भाग 3

कष्ट का रूपांतरण

अध्याय 8

कष्ट से सामना

भगवान बुद्ध के समय में, किसागोतमी नाम की एक महिला के एकमात्र पुत्र की मृत्यु हो गई। दुख से परेशान होकर, वह अपने मृत पुत्र को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से दवा पूछती हुई एक घर से दूसरे घर घूमने लगी। किसी ने उसे कह दिया कि भगवान बुद्ध के पास ऐसी दवा है।

किसागोतमी भगवान बुद्ध के पास पहुँची, उन्हें प्रणाम किया और पूछा,“क्या आप ऐसी दवा बता सकते हैं जिससे मेरा मृत पुत्र जीवित हो उठे?”

“मुझे ऐसी दवा के बारे में पता है,” बुद्ध ने कहा। “परंतु उसके लिए मुझे कुछ चीज़ों की ज़रूरत पड़ेगी।”

महिला ने राहत की साँस लेते हुए पूछा, “आपको क्या चाहिए?”

“मुझे एक मुट्ठी सरसों के बीज चाहिए,” बुद्ध ने कहा।

महिला ने बुद्ध को वह सामग्री लाकर देने का वादा किया किंतु ज्यों ही वह जाने लगी, बुद्ध ने कहा, “सरसों के बीज उसी घर से लेकर आना जहाँ कभी किसी संतान, पति-पत्नी, माता-पिता या सेवक की मृत्यु न हुई हो।”

महिला ने हामी भरी और वह सरसों के बीज की तलाश करती हुई एक घर से दूसरे घर भटकने लगी। हर घर में लोग उसे बीज देने के लिए तैयार हो जाते किंतु वह जब पूछती कि उस घर में किसी की मृत्यु हुई है तो उसने पाया कि ऐसा कोई घर नहीं था जहाँ कभी किसी की मृत्यु न हुई हो – कहीं पुत्री, कहीं सेवक, कहीं पति तो कहीं पिता की मृत्यु हो चुकी थी। किसागोतमी को वहाँ एक भी घर ऐसा नहीं मिला जहाँ कभी मृत्यु न हुई हो। यह देखकर कि वह अकेली इस दुख से पीड़ित नहीं थी, उसने अपने मृत पुत्र के शव का मोह छोड़ दिया और बुद्ध के पास लौट आई। तब बुद्ध ने अत्यंत करुण भाव से कहा, “तुमने सोचा कि सिर्फ़ तुम्हारे पुत्र की मृत्यु हुई है; मृत्यु का नियम यही है कि जीवित प्राणियों के बीच कोई भी शाश्वत नहीं है।”

किसागोतामी की तलाश ने उसे यह सिखाया कि कोई व्यक्ति दुख और पीड़ा से मुक्त नहीं इस भयंकर दुख से ग्रस्त होने वाली वह अकेली नहीं थी। इस बोध से अवश्यंभावी दुख तो समाप्त नहीं होता किंतु जीवन के इस कटु सत्य से लड़ने के फलस्वरूप होने वाला दुख अवश्य कम होता है।

हालाँकि पीड़ा और दुख सार्वभौमिक मानवीय घटनाएँ हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि हम इन्हें आसानी से स्वीकार कर लेते हैं। मनुष्य ने पीड़ा से बचने के लिए अनेक तरीके खोज निकाले हैं। कभी-कभी हम बाहरी तरीके इस्तेमाल करते हैं, तथा दवाओं व शराब जैसे रसायनों से अपने भावनात्मक दुख को ठीक करने या उसे दबाने का प्रयास करते हैं। हमारे पास बहुत-से भीतरी तरीके भी हैं – मनोवैज्ञानिक सुरक्षा पद्धतियाँ, जो अत्यधिक समस्याओं के कारण होने वाले भावनात्मक दुख और दर्द से हमें दूर रखते हैं। कभी-कभी यह सुरक्षा पद्धतियाँ बहुत आदिम किस्म की होती हैं, जैसे कि यही न मानना कि हमें कोई समस्या है। अन्य मौकों पर, हम मोटे तौर पर मान लेते हैं कि हमें कुछ समस्या है लेकिन उसके बारे में सोचने से बचने के लिए हम स्वयं को आकर्षण या मनोरंजन के असंख्य साधनों में डुबा लेते हैं ताकि हमें समस्या का विचार ही न आए। या फिर हम यह स्वीकार ही नहीं करते कि हमें कोई समस्या है और हम अचेतन रूप से अपनी पीड़ा के लिए दूसरों को दोषी मान लेते हैं: "हाँ, मैं दुखी हूँ। परंतु मुझे समस्या नहीं है; समस्या किसी और को है। यदि मेरा बॉस मुझे तंग न करता अथवा "मेरा साथी मेरी उपेक्षा न करता" अथवा..., तो मैं ठीक रहता!"

कष्ट से सिर्फ़ अस्थायी तौर पर बचा जा सकता है। परंतु किसी ऐसी बीमारी की तरह जिसका इलाज न करवाया जाए (या ऊपरी तौर पर दवाओं से इलाज हो जिससे उसके लक्षण तो दब जाएँ किंतु असली रोग का निवारण न हो पाए), तो वह बीमारी बढ़ती जाती है। दवाओं आदि से कुछ देर के लिए आराम मिल सकता है लेकिन उनके लगातार प्रयोग से शरीर को होने वाले शारीरिक नुकसान तथा हमारे जीवन को होने वाले सामाजिक नुकसान के कारण उस असंतोष या भावनात्मक दर्द से कहीं अधिक पीड़ा हो सकती है जिसके लिए हमने इन चीज़ों का शुरू में प्रयोग किया था। पीड़ा को अस्वीकार करना या उसे दबाना जैसी भीतरी मनोवैज्ञानिक रक्षा प्रणालियाँ कुछ समय के लिए हमें उस दर्द को सहन करने से बचा सकती हैं किंतु इससे हमारा कष्ट दूर नहीं होता।

लगभग एक साल पहले रैंडल के पिता की कैंसर से मृत्यु हो गई। वह अपने पिता के बहुत निकट था और उस समय सब लोगों को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि उसने अपने पिता की मृत्यु को बहुत अच्छे ढंग से सहन कर लिया। "निश्चय ही, मैं दुखी हूँ," उसने गंभीर स्वर में कहा। "परंतु मैं ठीक हूँ। मुझे उनकी बहुत याद आएगी लेकिन जीवन चलता रहता है। वैसे भी, मैं इस समय उनके बारे में नहीं सोच सकता क्योंकि अभी मुझे उनके अंतिम संस्कार की तैयारी करनी है और अपनी माँ के लिए उनकी ज़ायदाद की देखभाल करनी है... लेकिन सब ठीक हो जाएगा," उसने सब लोगों को समझाते हुए कहा। हालाँकि, अपने पिता की मृत्यु के एक साल बाद रैंडल गंभीर डिप्रेशन का शिकार हो गया। वह मेरे पास आया और बोला, "मुझे समझ नहीं आ रहा कि मुझे डिप्रेशन क्यों हो रहा है। सब कुछ ठीक चल रहा

था। इसका कारण मेरे पिता की मृत्यु नहीं हो सकती क्योंकि उस बात को तो एक वर्ष से भी अधिक हो गया है और मैं उस दुख से उबर चुका हूँ।" हालाँकि कुछ ही दिन के इलाज के बाद यह बात सामने आ गई कि "मज़बूत" बनने की कोशिश में वह अपनी भावनाओं पर कड़ा अंकुश लगाने के लिए संघर्ष करता रहा, जबकि वह उस क्षति और दुख से पूरी तरह उबर नहीं पाया था। ये भावनाएँ प्रबल होती गईं और इन्होंने अंत में भयानक डिप्रेशन का रूप ले लिया जिससे फिर उसे निपटना ही पड़ा।

रैंडल के मामले में जब हमने उसके दुख और उसकी भावनाओं पर ध्यान दिया तो वह जल्द ही उसमें से बाहर निकल आया और वह खुलकर अपने दुख का सामना कर सका। कभी-कभी अपनी समस्याओं से बचने की हमारी अचेतन रणनीतियाँ बहुत गहराई तक समाई होती हैं – ये प्रणालियाँ इतनी गहरी होती हैं कि वे हमारे व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाती हैं और फिर उन्हें बाहर निकालना बहुत मुश्किल हो जाता है। हम सभी किसी न किसी दोस्त, परिचित या परिवार के सदस्य को जानते हैं जो समस्याओं से बचने के लिए दूसरों को दोष देता है – ऐसे दोष जो वास्तव में उसके अपने होते हैं। यह निश्चय ही, समस्याओं के समाधान का प्रभावी तरीका नहीं है, हालाँकि ये लोग जब तक अपने इस स्वभाव को नहीं छोड़ते, जीवन में सदा दुखी रहते हैं।

दलाई लामा ने मनुष्य के कष्ट के प्रति अपना तरीका बताया – ऐसा तरीका जिसमें कष्ट से मुक्ति की संभावना पर विश्वास किया जाता है लेकिन इसकी शुरुआत कष्ट को मनुष्य के अस्तित्व का स्वाभाविक तथ्य मानने और अपनी समस्याओं का सामना करने से होती है।

"हमारे रोज़मर्रा के जीवन में समस्याओं का पैदा होना स्वाभाविक है। हमारे जीवन की सबसे बड़ी समस्याएँ वे हैं जिनका हमें सामना करना पड़ता है, जैसे: बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु। इन समस्याओं से बचने या उनके विषय में न सोचने से अस्थायी आराम तो मिल सकता है लेकिन मेरे विचार से इसका एक और बेहतर तरीका है। अगर आप अपने कष्ट का खुलकर सामना करते हैं तो आप अपनी समस्या को ज़्यादा अच्छे ढंग से समझ सकते हैं। यदि आप कोई युद्ध लड़ रहे हैं तो जब तक आप अपने शत्रु की स्थिति और उसकी सैन्य क्षमता पर ध्यान नहीं देंगे तब तक आपकी तैयारी पूरी नहीं होगी और आप डर के कारण शिथिल हो जाएँगे। परंतु यदि आपको अपने शत्रु की सैन्य क्षमता और उसके हथियारों आदि के बारे में पता लग जाए तो युद्ध के समय आपकी स्थिति बेहतर हो जाएगी। इसी तरह यदि आप अपनी समस्याओं से बचने के बजाय उनका सामना करेंगे तो उनसे निपटने में आपको ज़्यादा आसानी होगी।"

मुझे अपनी समस्याओं से निपटने का यह तरीका साफ़ तौर पर तर्कसंगत लगा, लेकिन बात को आगे बढ़ाते हुए पूछा, "ठीक है, लेकिन अगर आप समस्या का सामना करें और फिर पता लगे कि उसका कोई समाधान नहीं है तो क्या होगा? इस स्थिति से निपटना कठिन होगा।"

"फिर भी मुझे लगता है कि उसका सामना करना ही बहे तर है," उन्होंने किसी वीर की तरह उत्तर दिया। "उदाहरण के लिए, हो सकता है आपको बुढ़ापा और मृत्यु नकारात्मक या अवांछित लगें और आप उन्हें भूलना चाहें। फिर भी ये चीज़ें तो आएँगी। यदि आप इनके बारे में सोचने से बचते रहे तो जिस दिन इनमें से कोई भी घट गई तो आपको सदमा लगेगा जिसके कारण असहनीय मानसिक पीड़ा हो सकती है। परंतु यदि आप बुढ़ापा, मृत्यु और इस तरह की दुर्भाग्यपूर्ण चीज़ों पर सोचने में कुछ समय लगाएँगे तो इनके होने पर भी आपका मस्तिष्क स्थिर रहेगा क्योंकि आपको पहले से ही इन समस्याओं और पीड़ा पर विचार करने की आदत पड़ चुकी है तथा आपके लिए यह सबकुछ पहले से अपेक्षित था।"

"इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि भविष्य में होने वाले अनेक प्रकार के कष्टों के बारे समय से पहले समझ लेना चाहिए। युद्ध नीति की फिर से बात करते हैं। पीड़ा पर विचार करना सैन्य अभ्यास का हिस्सा है। जिन लोगों ने युद्ध, बंदूक, गोलाबारी आदि के बारे में कभी नहीं सुना, उन्हें लड़ाई के मैदान में भेज दिया जाए तो वे वहीं बेहोश हो जाएँगे। परंतु सैन्य अभ्यास द्वारा आप पहले से ही युद्ध के मैदान में होने वाली घटनाओं से परिचित हो सकते हैं। फिर यदि युद्ध हो जाए तो आपको ज़्यादा कठिनाई नहीं होगी।"

"हाँ, मैं समझ रहा हूँ कि होने वाले कष्टों से पहले ही अवगत होकर किस तरह हम अपने भय और संदेह को कम कर सकते हैं, लेकिन फिर भी लगता है, कभी-कभी कुछ दुविधाएँ ऐसी होती हैं जिनसे संबंधित कष्ट को सहने के अतिरिक्त उसका कोई समाधान नहीं होता। ऐसी परिस्थितियों में हम चिंता मुक्त कैसे रह सकते हैं?"

"दुविधा, जैसे?"

मैं सोचने लगा। "उदाहरण के लिए, मान लीजिए, कोई महिला गर्भवती है और एमनियोसेंटेसिस या सोनोग्राम द्वारा वे पता लगा लेते हैं कि गर्भस्थ शिशु में जन्मजात कोई गंभीर दोष होगा। उन्हें पता लगता है कि बच्चे में भयंकर शारीरिक या मानसिक विकलांगता होगी। स्वाभाविक है कि वह महिला दुविधा में फँस जाएगी कि उसे क्या करना चाहिए। वह उस शिशु को आजीवन कष्ट से बचाने के लिए गर्भपात करवा सकती है, लेकिन तब उसे क्षति और दुख का गंभीर भाव महसूस होगा और हो सकता है उसे ग्लानि भी हो। इससे अलग, वह यह भी कर सकती है कि प्रकृति को अपना काम करने दे और बच्चे को जन्म दे। परंतु इससे उसके तथा बच्चे दोनों के लिए जीवन-भर की परेशानी और कष्ट हो जाएगा।"

दलाई लामा मेरी बात को ध्यान से सुन रहे थे। कुछ उदास स्वर में उन्होंने कहा, "व्यक्ति इन समस्याओं को पाश्चात्य या बौद्ध किसी भी नज़रिए से देखें, इस तरह की दुविधाएँ बहुत ज़्यादा कठिनाई पैदा करती हैं। तुमने जो उस जन्मजात दोषयुक्त भ्रूण के गर्भपात का उदाहरण दिया – कोई नहीं जानता कि आगे चलकर कौन-सा निर्णय ठीक साबित होगा। यदि वह बच्चा दोष के साथ ही जन्म ले तो हो सकता है भविष्य में वह माँ और बच्चे दोनों के लिए बेहतर सिद्ध हो। परंतु इसके दूरगामी परिणामों पर विचार करें तो शायद गर्भपात करवाना बेहतर हो और हो सकता है कि यही आगे चलकर बेहतर विकल्प हो। लेकिन इसका निर्णय कौन करेगा? यह बहुत मुश्किल है। बौद्ध धर्म के दृष्टिकोण से भी,

इस तरह का निर्णय हमारी तार्किक क्षमता के परे है।" वे रुके और फिर बोले, "मुझे लगता है उनकी पृष्ठभूमि और उनके विचार इस बात में बड़ी भूमिका निभाएँगे कि इस तरह की मुश्किल परिस्थिति में वे लोग क्या निर्णय लेते हैं..."

हम लोग शांत बैठे रहे।

अपना सिर हिलाते हुए वे बोले, "जिस तरह के कष्ट हमें उठाने पड़ते हैं उन्हें देखते हुए, आप कुछ हद तक इनके लिए पहले से तैयारी कर सकते हैं और अपना ध्यान इस बात की ओर ले जा सकते हैं कि आपको कभी भी इस तरह की दुविधाजनक परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। तो आप मानसिक रूप से तैयार हो सकते हैं। लेकिन आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसा करने से उस स्थिति में कोई सुधार नहीं होगा। इससे आपको मानसिक रूप से निपटने में मदद मिल सकती है, आपका डर कुछ कम हो सकता है, लेकिन इससे समस्या का समाधान नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए यदि किसी जन्मजात दोष युक्त बालक का जन्म होने वाला हो, तो आपने इस बारे में पहले कितना भी सोच-विचार किया हो, आपको फिर भी इससे निपटने का तरीका सोचना होगा। यह अब भी मुश्किल तो है।"

यह बात कहते हुए उनके स्वर में थोड़ी उदासी थी – थोड़ी नहीं, उससे कुछ ज़्यादा। परंतु उसमें निराशा का स्वर नहीं था। पूरे एक मिनट तक दलाई लामा कुछ नहीं बोले और खिड़की से बाहर देखते रहे मानो बाहर के संसार को देख रहे हों और फिर बोले, "इस तथ्य से बचा नहीं जा सकता कि कष्ट जीवन का अभिन्न अंग है। निश्चय ही, हमें कष्ट और पीड़ा पसंद नहीं है। परंतु मेरे विचार से सामान्य व्यक्ति अपने जीवन को कष्टपूर्ण नहीं मानता..." सहसा दलाई लामा हँसने लगे, "मेरा मतलब है आपके जन्मदिन पर लोग आपको कहते हैं, 'जन्मदिन की बधाई!' जबकि आपके जन्म का दिन दरअसल आपके कष्ट के जन्म का दिन था। परंतु यह कोई नहीं कहता, कि कष्ट के जन्मदिवस की बधाई हो!" उन्होंने मज़ाक में कहा।

"कष्ट को अपने रोज़मर्रा का हिस्सा मान लेने से आप उन तत्वों की जाँच शुरू कर सकते हैं जो आपके असंतोष और मानसिक दुख का कारण हैं। उदाहरण के लिए, सामान्य तौर पर, हमें या हमारे नज़दीकी लोगों को प्रशंसा, यश, संपत्ति या अन्य दूसरी चीज़ें मिलती हैं तो अच्छा लगता है। यदि आपको यह सब नहीं मिलता लेकिन आपके प्रतिद्वंद्वी को मिलता है तो आपको असंतोष और दुख होता है। हालाँकि यदि आप अपने सामान्य रोज़मर्रा के जीवन को देखें तो आप पाएँगे कि दर्द, पीड़ा और असंतोष के बहुत-से कारण और स्थितियाँ होती हैं जबकि ख़ुशी और आनंद देने वाली बातें बहुत कम होती हैं। हमें यह पसंद आए या नहीं, लेकिन यह सब हमारे साथ होता है। चूंकि यह हमारे जीवन की सच्चाई है, हमें पीड़ा के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदलने की ज़रूरत है। इसे बदलना इसलिए ज़रूरी है क्योंकि उसका प्रभाव इस बात पर पड़ता है कि हम कष्ट आने के समय उससे किस तरह निपटते हैं। अभी हम कष्ट और पीड़ा से बचते हैं और उसे सहन नहीं कर पाते। हालाँकि, अगर हम कष्ट के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदल लें और उसके प्रति अधिक सहनशील रुख

अपना लें तो यह मानसिक पीड़ा, असंतोष और बेचैनी का प्रतिकार करने में बहुत सहायता कर सकता है।"

"व्यक्तिगत तौर पर मेरे लिए पीड़ा को सहन करने का सबसे शक्तिशाली और प्रभावी तरीका यह देखना और समझना है कि संसार* के, अज्ञानतापूर्ण जीवन के मूल में पीड़ा है। अब जब आपको कोई शारीरिक दर्द या कष्ट होता है तो निश्चय ही उस समय यह भाव उठता है, 'ओह! यह कष्ट कितना बुरा है!' उस पीड़ा के साथ अस्वीकृति का भाव जुड़ा होता है, ऐसा भाव कि 'ओह! मैं यह अनुभव नहीं करना चाहता।' परंतु उस क्षण में यदि आप उस स्थिति को दूसरे दृष्टिकोण से देखेंगे और यह समझ पाएँगे कि यह शरीर..." उन्होंने अपने हाथ पर मारकर दिखाया, "इस कष्ट का आधार है, तो इससे अस्वीकृति का भाव कम हो जाता है – यह भाव कि आप इस पीड़ा के अधिकारी नहीं हैं, कि आप पीड़ित हैं। यह बात समझ में आ जाए और आप इसे स्वीकार कर लें तो फिर आपको पीड़ा बहुत स्वाभाविक चीज़ लगने लगेगी।"

"उदाहरण के लिए, तिब्बती लोगों द्वारा भोगी गई पीड़ा के संदर्भ में, एक तरीके से देखें तो यह आपके ऊपर हावी हो जाएगी और आपको आश्चर्य होगा कि, 'ऐसा कैसे हो गया?' परंतु दूसरे दृष्टिकोण से सोचने पर लगेगा कि तिब्बत भी तो इसी संसार में है," वह हँसे, "जैसे हमारा यह ग्रह और संपूर्ण आकाशगंगा।" वह फिर से हँसे।

"खैर, आप जीवन को समग्र रूप से कैसे देखते हैं, पीड़ा के प्रति आपके दृष्टिकोण में इसी बात की भूमिका होती है। उदाहरण के लिए, यदि आपका मूल नज़रिया यह है कि कष्ट नकारात्मक है, इससे किसी भी क़ीमत पर बचना चाहिए तथा यह असफलता का प्रतीक है, तो इससे कठिन परिस्थितियों में चिंता और असहिष्णुता का विशिष्ट मनोवैज्ञानिक अंश जुड़ जाएगा और यह आपके ऊपर हावी हो जाएगी। दूसरी तरफ़ यदि आप कष्ट को जीवन का स्वाभाविक अंग मानते हैं तो निश्चित रूप से यह नज़रिया आपको जीवन की कठिनाइयों में अधिक सहनशील बना देगा। कष्ट के प्रति थोड़ा सहनशील हुए बिना जीवन दयनीय हो जाता है; यह किसी दुखद रात्रि की तरह लगता है। वह रात्रि भी अनंत मालूम होती है जो कभी समाप्त नहीं होगी।"

"जब आप कष्टपूर्ण और मूल रूप से असंतुष्ट जीवन के बारे में बात करते हैं तो यह मुझे अत्यंत निराशावादी और निरुत्साहित करने वाला नज़रिया लगता है," मैंने कहा।

दलाई लामा ने तुरंत इस बात को स्पष्ट कर दिया, "जब मैं जीवन के असंतुष्ट रूप की बात करता हूँ तो समझने की ज़रूरत है कि यह बात समस्त बौद्धधर्मी मार्ग के संदर्भ में कही गई है। इन विचारों को सही परिप्रेक्ष्य में, यानि बौद्धधर्मी मार्ग के ढाँचे के अंतर्गत समझने की आवश्यकता है। जब कष्ट के इस पहलू को सही संदर्भ में नहीं देखा जाएगा, मैं मानता हूँ कि इस तरह के दृष्टिकोण को निराशावादी और नकारात्मक समझे जाने का खतरा या संभावना है। इस कारण से, कष्ट के संपूर्ण मुद्दे पर बौद्ध धर्म का मूल रवैया जानना ज़रूरी है। हम देखते हैं कि अपने प्रवचनों में बुद्ध सबसे पहले चार आर्यसत्य सिखाते हैं, जिनमें पहला आर्यसत्य दुख है। इसमें जीवन की दुखपूर्ण प्रकृति पर विशेष ज़ोर दिया गया है।"

“एक बात जो व्यक्ति को ध्यान में रखनी है, वह यह है कि कष्ट के बारे में विचार करना बहुत ज़रूरी है क्योंकि इससे बचने की संभावना है; एक विकल्प है। कष्ट से मुक्त होने की संभावना है। कष्ट के कारण को दूर करके मुक्ति की अवस्था को प्राप्त करना संभव है। बौद्ध मतानुसार, कष्ट के मूलतः तीन कारण हैं: अज्ञानता, तृष्णा और घृणा। इन्हें ‘मस्तिष्क के तीन विष’ कहा जाता है। बौद्ध संदर्भ में इन शब्दों के विशिष्ट अर्थ हैं। उदाहरण के लिए, ‘अज्ञानता’ का अर्थ सूचना का अभाव नहीं है, जैसे कि यह रोज़ के संदर्भ में प्रयोग होता है, बल्कि यह स्वयं की तथा समस्त घटनाओं की सही प्रकृति की मूल अनभिज्ञता को दर्शाता है। सच्चाई को जानने और तृष्णा व घृणा जैसी दिमाग़ की दुखदायी अवस्थाओं को दूर करने से व्यक्ति मस्तिष्क को पूरी तरह शुद्ध और कष्ट मुक्त कर सकता है। बौद्ध संदर्भ में जब व्यक्ति इस बात पर विचार करता है कि रोज़मर्रा का जीवन कष्टों से भरा हुआ है तो इससे व्यक्ति को इन दुखों के मूल कारणों को दूर करने की प्रेरणा मिलती है। अन्यथा, यदि कोई आशा न हो, या कष्टों से मुक्त होने की कोई संभावना न हो तो इनके बारे में सोचने से हमारी विचारधारा बीमार और नकारात्मक हो सकती है।”

जब वह बात कर रहे थे तो मुझे समझ में आया कि अपनी “पीड़ा प्रकृति” पर विचार करना जीवन के अपरिहार्य दुखों को स्वीकारने में किस तरह अपनी भूमिका निभा सकता है, और अपनी रोज़ की समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में देखने का महत्त्वपूर्ण तरीका हो सकता है। फिर मैं यह सोचने लगा कि किस तरह कष्ट को बृहद् आध्यात्मिक मार्ग के व्यापक संदर्भ में, विशेषकर बौद्ध मत के दृष्टिकोण से देखा जा सकता है, जिसमें मस्तिष्क के शुद्धकरण और कष्टरहित अवस्था को पाने की संभावना होती है। परंतु इन महान दार्शनिक सिद्धांतों से दूर होकर, मैं यह जानने को उत्सुक था कि दलाई लामा अधिक व्यक्तिगत स्तर पर कष्ट होने पर क्या करते थे, जैसे कि अपने किसी प्रियजन की मृत्यु के अवसर पर खुद को कैसे सँभालते थे।

जब मैं पहली बार बहुत साल पहले धर्मशाला गया तो मेरा परिचय दलाई लामा के बड़े भाई लोबसांग सामदेन से हुआ। मुझे वे बहुत अच्छे लगे और कुछ वर्ष पूर्व उनके अचानक निधन का समाचार सुनकर मुझे बहुत दुख हुआ था। मैं यह जानता था कि उनमें और दलाई लामा में परस्पर काफ़ी निकटता थी। मैंने पूछा, “मैं समझ सकता हूँ कि आपके भाई लोबसांग की मृत्यु से आपको बहुत दुख हुआ होगा...”

“हाँ।”

“मैं सोच रहा था कि आपने इसका सामना कैसे किया होगा?”

“उनकी मृत्यु का समाचार मिलने पर मुझे सचमुच बहुत दुख हुआ,” उन्होंने धीरे से कहा।

“आप उस दुख से कैसे उबरे? मेरा मतलब है कि क्या कुछ ऐसा था जिसकी सहायता से आप उस दुख में से बाहर निकल सके?”

"मुझे नहीं पता," उन्होंने गंभीर स्वर में कहा। "मैं कुछ सप्ताह तक दुखी रहा लेकिन फिर धीरे-धीरे दुख का भाव समाप्त हो गया। उसके बाद भी पछतावा बना रहा..."

"पछतावा?"

"हाँ। उनकी मृत्यु के समय मैं कहीं गया हुआ था और मुझे लगता है कि यदि उस समय मैं वहीं होता तो शायद मैं उनकी सहायता के लिए कुछ कर पाता। मुझे इसी बात का पछतावा है।"

मनुष्य के कष्ट की अवश्यंभाविता पर जीवन भर विचार करने से शायद दलाई लामा को उस नुकसान को स्वीकार करने में कुछ सहायता मिली हो, किंतु उससे किसी निष्ठुर और भावरहित व्यक्ति का गठन नहीं हो गया जो कष्ट के समय खुद को असहाय महसूस कर रहा था – उनके स्वर में छाई उदासी से अत्यंत भावुक व्यक्ति का परिचय मिल रहा था। इसी के साथ, उनके आत्म-करुणा या आत्म-दोषारोपण रहित व्यवहार में स्पष्टता और सरलता से ऐसे व्यक्ति का निश्चित बिंब दिखाई दे रहा था जिसने उस नुकसान को पूरी तरह स्वीकार कर लिया था।

उस दिन, हमारी बातचीत दोपहर देर तक चलती रही। लकड़ी के दरवाज़ों को काटता स्वर्णिम प्रकाश धीरे-धीरे अंधेरे कमरे में प्रवेश कर रहा था। मुझे कमरे में उदासी छाती हुई महसूस हो रही थी और मुझे पता था कि हमारी बातचीत समाप्त होने को थी। फिर भी मैं उनसे उस नुकसान के बारे में विस्तार से पूछना चाहता था और यह जानना चाहता था कि किसी प्रियजन की मृत्यु से उबरने के लिए क्या उनके पास पीड़ा को सिर्फ़ सहन करने के अतिरिक्त देने को कुछ और सलाह थी।

मैं उस विषय को विस्तार देने ही वाला था, परंतु उनका ध्यान थोड़ा भटक रहा था। मैंने उनकी आँखों के पास थकान देखी। जल्द ही, उनके सचिव ने कमरे में प्रवेश किया और मुझे अपने अंदाज़ में देखा: वर्षों के अभ्यास के बाद, उस अंदाज़ का अर्थ था कि अब, जाने का समय हो चुका था।

"हाँ..." दलाई लामा ने क्षमा माँगते हुए कहा, "शायद हमें अब बंद करना चाहिए... मुझे थकान हो रही है।"

अगले दिन, इससे पहले कि मुझे अपनी निजी वार्ता के दौरान उसी विषय पर लौटने का अवसर मिलता, उन्होंने उस बात को अपने सार्वजनिक भाषण में उठाया। एक दर्शक ने, जो साफ़ तौर पर दुखी लग रहा था, दलाई लामा से पूछा, "किसी बड़ी व्यक्तिगत हानि, जैसे कि अपनी संतान की मृत्यु, से निपटने के लिए क्या आपके पास कोई सुझाव है?"

सौम्य और करुण स्वर में दलाई लामा ने कहा, "कुछ सीमा तक यह लोगों की अपनी निजी मान्यताओं पर निर्भर करता है। अगर लोग पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं तो शायद उस दुख या चिंता को कम करने का तरीका है। उन्हें इस बात से सांत्वना मिल सकती है कि उनका प्रिय फिर से जन्म लेगा।"

"जो लोग पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते, उनके लिए भी मुझे लगता है कि कुछ और

भी आसान तरीके हैं जिनकी सहायता से उस दुख से उबरा जा सकता है। सबसे पहले, उन्हें यह सोचना चाहिए कि उस हानि या दुख से ज़्यादा दुखी होना या उसे अपने ऊपर हावी होने देना से या फिर उस दुख के भाव को साथ लेकर चलते रहना, उनके अपने स्वास्थ्य के लिए तो हानिकारक है ही, साथ में ऐसा करने से मृत व्यक्ति को कोई लाभ नहीं होगा।"

"उदाहरण के लिए, मेरे अपने मामले में, मैंने अपनी सर्वाधिक पूज्य शिक्षक, अपनी माँ को और अपने एक भाई को खो दिया है। निश्चय ही, जब उनकी मृत्यु हुई तो मुझे बहुत दुख हुआ। लेकिन फिर मैं यह सोचता रहा कि ऐसे दुखी होने से कोई लाभ नहीं है और यदि मैं उन लोगों से सचमुच प्यार करता हूँ तो मुझे शांत दिमाग़ से उनकी इच्छाओं को पूरा करना चाहिए। इसलिए मैं वही करने का भरपूर प्रयास करता हूँ। मेरे ख़्याल से यदि आपके किसी अतिप्रिय व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो ऐसा करना ही सबसे अच्छा तरीका होता है। देखिए, उस व्यक्ति की यादों को ताज़ा रखने का, उन्हें यादगार बनाने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि उसकी इच्छाओं को पूरा किया जाए।"

"शुरू में, निश्चित तौर पर, किसी भी तरह का नुकसान होने पर दुख और चिंता होना स्वाभाविक बात है। परंतु यदि आप हानि और चिंता के इन विचारों को बने रहने देंगे तो इन्हें अनियंत्रित छोड़ने से व्यक्ति के आत्मलीन होने का ख़तरा हो जाता है। यह ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति सिर्फ़ अपने बारे में सोचता रहता है। ऐसा होने पर यह स्थिति आपके ऊपर हावी हो जाती है और फिर ऐसा लगने लगता है कि यह समस्या सिर्फ़ आपके साथ हो रही है। इससे डिप्रेशन हो जाता है। हालाँकि सच्चाई यह है कि दूसरे लोगों को भी इस तरह की परेशानियाँ होती हैं। यदि आपको चिंता ज़्यादा होती है तो आपको उन लोगों के बारे में सोचने से मदद मिलेगी जिनको इसी तरह की या फिर इससे भी भयानक समस्याएँ भोगनी पड़ती हैं। एक बार यह समझ में आ जाए तो फिर आपको अकेला महसूस नहीं होता और ऐसा नहीं लगता कि आपको चुनकर यह समस्या दी गई है। इससे बहुत सांत्वना मिलती है।"

हालाँकि पीड़ा और कष्ट सभी लोगों के साथ होते हैं, मैंने ऐसा महसूस किया है कि पूर्व की संस्कृति में पले-बड़े लोग इन कष्टों को ज़्यादा आसानी से स्वीकार और सहन कर लेते हैं। इसका एक कारण उनकी अपनी मान्यताएँ हो सकती हैं, किंतु शायद ऐसा इसलिए होता है कि समृद्धि देशों की तुलना में भारत जैसे ग़रीब देषों में कष्ट ज़्यादा होते हैं। भुखमरी, ग़रीबी, बीमारी और मृत्यु यहाँ अधिक देखने को मिलती है। कोई व्यक्ति जब बूढ़ा या बीमार हो जाता है तो उसे दरकिनार नहीं कर दिया जाता या देखभाल के लिए स्वास्थ्य व्यवसायियों के पास नहीं भेज दिया जाता – वह अपने ही समाज में रहता है और उसका परिवार उसकी देखभाल करता है। जीवन की दैनिक सच्चाइयों के संपर्क में रहने वाले लोग आसानी से इस बात को नकार नहीं सकते कि जीवन में कष्ट आते हैं और यही जीवन का स्वाभाविक रूप है।

पश्चिमी समाज ने कठिन परिस्थितियों में कष्ट को कम करने की क्षमता तो विकसित कर ली लेकिन ऐसा लगता है कि शेष रह गई पीड़ा से निपटने की क्षमता उन्होंने खो दी है।

सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा किए अध्ययन इस बात पर ज़ोर देते हैं कि आधुनिक पाश्चात्य समाज के अधिकांश लोग इसी विश्वास के साथ जीते हैं कि संसार रहने के लिए अच्छी जगह है, कि अधिकांश जीवन अच्छा है और यह कि वे स्वयं अच्छे लोग हैं तथा अपने जीवन में अच्छी चीज़ें पाने के अधिकारी हैं। ये विश्वास अधिक ख़ुशहाल और स्वस्थ जीवन जीने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। परंतु कष्ट जिसका होना निश्चित है, इस विश्वास को कमज़ोर कर देता है और ख़ुशी पाना और अच्छे ढंग से जीना कठिन बना देता है। इस संदर्भ में, जब इस दुनिया के न्याय और इसकी दया से व्यक्ति का विश्वास उठ जाता है तो छोटी-सी तकलीफ़ भी बड़ा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाल सकती है। इसके कारण पीड़ा बहुत ज़्यादा महसूस होती है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि पाश्चात्य समाज में प्रौद्योगिक उन्नति के साथ भौतिक सुविधा के स्तर में काफ़ी सुधार हुआ है। यही वह बिंदु है जहाँ से धारणाओं में महत्त्वपूर्ण बदलाव आया है; कष्ट कम नज़र आता है, इसलिए अब इसे मनुष्य की मूल प्रकृति का हिस्सा न मानकर – इसे विसंगति, कोई बड़ी ग़लती, किसी प्रणाली की "असफलता" और ख़ुश रहने के हमारे अधिकार का उल्लंघन माना जाने लगा है!

इस तरह की सोच के अपने खतरे होते हैं। यदि हम कष्ट को अस्वाभाविक मानते हैं और सोचते हैं कि हमें कष्ट नहीं होना चाहिए, तो फिर हम अपने कष्ट के लिए किसी दूसरे को दोष देने से ज़्यादा दूर नहीं हैं। यदि मैं दुखी हूँ तो निश्चय ही मैं किसी व्यक्ति या वस्तु के द्वारा "पीड़ित" हूँ – पश्चिम में यह विचार बहुत सामान्य है। कष्ट देने वाली सरकार हो सकती है, शिक्षा प्रणाली हो सकती है, अत्याचार करने वाले माता-पिता हो सकते हैं, "दुष्क्रियापूर्ण परिवार" हो सकता है, भिन्न लिंग का व्यक्ति हो सकता है या परवाह न करने वाला साथी हो सकता है अथवा हम उस दोष को अपने अंदर ले जा सकते हैं: मुझमें कुछ गड़बड़ है, मैं इस बीमारी से, या शायद दोषयुक्त जीन (वंशाणु) से पीड़ित हूँ। परंतु किसी न किसी को दोष देने और पीड़ित अनुभव करते रहने का ख़तरा हमारे कष्ट को बढ़ाता है – और इससे ग़ुस्सा, कुंठा और रोष बढ़ता जाता है।

निश्चय ही, पीड़ा से मुक्त होने की इच्छा प्रत्येक मनुष्य का जायज़ लक्ष्य होता है। यह ख़ुश रहने की हमारी इच्छा का परिणाम है। यह पूरी तरह उचित है कि हम अपने दुख के कारणों को खोजें और अपनी समस्याओं को कम करने के लिए जो कुछ कर सकते हैं, वह करें तथा सभी स्तरों पर – वैश्विक, सामाजिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत – समाधानों की तलाश करें। परंतु जब तक हम कष्ट को अस्वाभाविक, असामान्य अवस्था मानते रहेंगे और उससे डरेंगे, उससे बचेंगे और उसे अस्वीकार करेंगे, तब तक हम कष्ट के कारणों को दूर कर, कभी सुख से नहीं जी पाएँगे।

---

*संसार (संस्कृत) जीवन की वह अवस्था है जिसमें जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के अनेक चक्र

होते हैं। यह शब्द हमारे रोज़मर्रा के जीवन की सामान्य अवस्था के संदर्भ में भी प्रयुक्त होता है, पीड़ा जिसकी विशेषता है। सभी जीव मस्तिष्क की नकारात्मक "भ्रामक" अवस्थाओं एवं अपने पूर्व जन्मों की कार्मिक छवियों से प्रेरित होकर इसी अवस्था में रहते हैं। यह तब तक चलता है जब तक व्यक्ति मस्तिष्क के समस्त नकारात्मक भावों को दूर करके मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता।

अध्याय 9

आत्म-निर्मित कष्ट

अर्मानी का काले रंग का सीधा-सादा सूट और अच्छे कपड़े पहने हुए, अधेड़ उम्र का वह व्यक्ति जब पहली बार मेरे पास आया तो वह विनम्र किंतु संयमी ढंग से बैठ गया और अपने वहाँ आने का कारण बताने लगा। वह धीरे बोल रहा था और उसका स्वर संयमित व नपा-तुला था। मैंने मानक सवालों की सूची पढ़ी: शिकायत, उम्र, पृष्ठभूमि, वैवाहिक स्थिति...

"बदमाश औरत!" वह अचानक गुस्से में ज़ोर से चिल्लाया। "मेरी बेकार पत्नी! अब पूर्व-पत्नी है। मेरे पीठ पीछे उसका किसी के साथ चक्कर चल रहा था! मैंने उसके लिए सब कुछ किया। वह... वह... वेश्या!" उसकी आवाज़ और ऊँची, ज़्यादा ग़ुस्सैल और ज़्यादा विषैली हो गई। अगले बीस मिनट तक वह एक के बाद एक अपनी पूर्व-पत्नी की शिकायतें करता रहा।

मेरा समय समाप्त हो रहा था। यह देखते हुए कि वह बहुत गुस्से में था तथा घंटों तक ऐसे ही बोल सकता था, मैंने उसकी दिशा बदली। "अधिकतर लोगों को हाल में हुए तलाक़ से उबरने में कठिनाई होती है और हम इस विषय पर निश्चित रूप से आने वाले दिनों में बात करेंगे," मैंने स्नेहपूर्वक कहा। "वैसे, आपका तलाक़ हुए कितना समय हो गया है?"

"पिछले साल मई में सत्रह साल हो गए!"

पिछले अध्याय में हमने कष्ट को मनुष्य जीवन के स्वाभाविक तथ्य के रूप में स्वीकार करने के महत्त्व पर चर्चा की थी। कुछ कष्ट ऐसे होते हैं जिन्हें टाला नहीं जा सकता, लेकिन कुछ को व्यक्ति स्वयं तैयार करता है। उदाहरण के लिए, हमने यह जानना चाहा कि

कष्ट को जीवन का स्वाभाविक अंग मानने से इंकार करके व्यक्ति किस तरह खुद को हमेशा पीड़ित समझता है और अपनी समस्याओं के लिए दूसरों को दोष देता है – दुखी रहने का यह निश्चित तरीका है।

हम खुद भी अपने कष्टों को कई तरीकों से बढ़ाते हैं। हम प्रायः अपनी पीड़ा को बढ़ाते हैं, अपने दिमाग़ में पुराने ज़ख्मों को याद कर-करके उन्हें ताज़ा रखते हैं और इस दौरान अपने साथ हुए अन्याय में वृद्धि करते जाते हैं। हम इस अचेतन इच्छा के साथ अपनी पीड़ादायक यादों को दोहराते हैं कि शायद ऐसा करने से परिस्थिति बदल जाए – लेकिन ऐसा कभी नहीं होता। निश्चित रूप से, अपने दर्द को लगातार याद करने से सीमित उद्देश्य की प्राप्ति तो हो जाती है; इससे हमारे जीवन को थोड़ा नाटकीय प्रभाव और कुछ उत्तेजना मिलती है अथवा दूसरे लोग हम पर ध्यान देते हैं और हमारे साथ सहानुभूति दर्शाते हैं। परंतु यह हमें मिलने वाले दुख के बदले में बहुत बुरा समझौता है।

हम किस तरह अपने दर्द को बढ़ाते हैं, इस विषय पर बोलते हुए दलाई लामा ने समझाया, "हम देख सकते हैं कि ऐसे बहुत-से तरीके हैं जिनके द्वारा हम मानसिक अशांति और कष्ट के अपने अनुभव में सक्रिय योगदान देते हैं। हालंकि, सामान्य तौर पर, मानसिक व भावनात्मक दुख अपने आप स्वाभाविक ढंग से आ सकते हैं, प्रायः उन नकारात्मक भावों की पुनरावृत्ति से ही स्थिति ज़्यादा बिगड़ जाती है। उदाहरण के लिए, जब हमें किसी व्यक्ति के प्रति ग़ुस्सा या द्वेष महसूस होता है, तो अगर हम उस पर ध्यान न दें तो इस बात की संभावना बहुत कम होती है कि वह भाव बढ़ जाएगा। परंतु यदि हम अपने साथ हुए अन्याय या अनुचित व्यवहार को याद करें और बार-बार उसी विषय में सोचते रहें तो उसी से हमारे अंदर द्वेष का भाव पोषित होता है। इससे यह तीव्र घृणा में बदल जाता है। ऐसा तब भी हो सकता है जब हमें किसी व्यक्ति से लगाव हो; हम उस व्यक्ति की सुंदरता के बारे में सोच-सोचकर उस भाव को पुष्ट कर सकते हैं और जब हम उस व्यक्ति के गुणों के बारे में सोचते हैं तो उसके प्रति हमारा लगाव बढ़ता जाता है। यह इस बात को दर्शाता है कि निरंतर मेल-जोल और सोच-विचार से हम किस तरह अपनी भावनाओं को ज़्यादा प्रबल और शक्तिशाली बना सकते हैं।"

"कई बार अधिक संवेदनशील होने, छोटी-छोटी चीज़ों पर प्रतिक्रिया करने और किसी बात को दिल से लगाकर भी हम अपने कष्ट व पीड़ा को बढ़ा लेते हैं। हम छोटी-छोटी बातों को ज़्यादा गंभीरता से लेकर उन्हें बड़ा बना लेते हैं, जबकि कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को हम नज़रअंदाज़ कर देते हैं, जिनका हमारे जीवन पर गहरा असर पड़ता है तथा जिनके दूरगामी परिणाम व प्रभाव होते हैं।"

"मुझे लगता है काफ़ी हद तक, आपको कष्ट होना या न होना इस बात पर निर्भर करता है कि किसी विशेष परिस्थिति में आपकी प्रतिक्रिया क्या होती है। उदाहरण के लिए, आपको पता चलता है कि आपके पीछे कोई आपकी बुराई करता है। अगर आप इस बात का बुरा मानकर या ग़ुस्से से कोई प्रतिक्रिया देंगे तो आप स्वयं अपनी मानसिक शांति को नष्ट कर लेंगे। आपकी पीड़ा आपकी अपनी रचना है। इसके विपरीत, अगर आप कोई

नकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं करते, और उस निंदा को अपने कान के पीछे से हवा के शांत झोंके की तरह निकल जाने देते हैं तो आप स्वयं को आहत और दुखी होने से बचा सकते हैं। हालाँकि मुश्किल परिस्थितियों से हमेशा बच पाना संभव नहीं होता, आप अपनी प्रतिक्रिया द्वारा पीड़ा में बदलाव कर सकते हैं।"

कई बार अधिक संवेदनशील होने, छोटी-छोटी चीज़ों पर प्रतिक्रिया करने और बातों को दिल से लगाकर भी हम अपने कष्ट व पीड़ा को बढ़ा लेते हैं..." इन शब्दों के साथ दलाई लामा ने बहुत-सी दैनिक परेशानियों के मूल का पता लगा लिया जो मिलकर बड़े कष्ट का कारण बन जाती हैं। चिकित्सक कभी-कभी इस प्रक्रिया को पीड़ा का निजीकरण कहते हैं – यह ऐसी प्रवृत्ति है जिसमें हम अपने ऊपर होने वाले हर चीज़ के प्रभाव का सही या ग़लत अर्थ लगाकर अपने मनोवैज्ञानिक दायरे को छोटा कर लेते हैं।

एक दिन शाम को मैं अपने एक साथी के साथ रेस्तरां में खाना खा रहा था। वहाँ सर्विस की गति बहुत धीमी थी और हमारे वहाँ बैठने के समय से ही मेरा साथी लगातार शिकायत कर रहा था: "ज़रा देखो! यह वेटर कितना सुस्त है! वह है कहाँ? मुझे लगता है कि वह जान-बूझकर हमारी उपेक्षा कर रहा है!"

हालाँकि हम दोनों में से किसी को ज़रूरी काम नहीं था, फिर भी वहाँ की धीमी सर्विस को लेकर मेरे साथी की शिकायतें पूरे भोजन के दौरान जारी रहीं और उसने भोजन, बर्तन और उसे पसंद न आने वाली हर बात से संबंधित शिकायतों की सूची बना डाली। भोजन के अंत में, वेटर ने हमें दो मिष्ठान्न निःशुल्क दिए और कहा, "मैं आज शाम धीमी सर्विस के लिए क्षमा चाहता हूँ। दरअसल आज हमारे यहाँ कर्मचारी कम आए हैं। एक रसोइए के परिवार में किसी की मृत्यु हो गई है इसलिए वह छुट्टी पर है और एक व्यक्ति आख़िरी समय पर बीमार हो गया। मुझे उम्मीद है आपको असुविधा नहीं हुई होगी..."

"फिर भी मैं दोबारा यहाँ नहीं आऊँगा," मेरे साथी ने चिढ़ते हुए धीरे से कहा। तब तक वेटर जा चुका था।

यह इस बात का छोटा-सा उदाहरण है कि हम किस तरह प्रत्येक कष्टप्रद स्थिति का निजीकरण करके अपनी पीड़ा को बढ़ा लेते हैं, मानो हमारे साथ जान-बूझकर ऐसा किया गया हो। इस मामले में, कुल परिणाम यह हुआ कि भोजन का मज़ा खराब हो गया और एक घंटे तक परेशानी होती रही। परंतु जब इस तरह की सोच इतनी व्यापक हो जाती है कि हम संसार में होने वाली हर घटना और परिवार या दोस्तों द्वारा कही गई हर बात को इससे जोड़ देते हैं तो यह हमारे लिए दुख का प्रमुख स्रोत बन जाता है।

इस तरह की संकीर्ण सोच के व्यापक प्रभावों को समझाते हुए जॅक लॉसिरन ने एक पैनी दृष्टि वाला विचार सामने रखा। आठ साल की उम्र से नेत्रहीन लॉसिरन दूसरे विश्व युद्ध के एक प्रतिरोधक समूह का संस्थापक था। बाद में उसे जर्मनीवासियों ने पकड़ लिया और बुशेनवॉल्ड के बंदी-शिविर में बंद कर दिया। शिविर में अपने अनुभवों को याद करते हुए

लॉसिरन ने कहा, "...मैंने उस समय देखा कि हम सबको दुख इसलिए महसूस होता है क्योंकि हम स्वयं को संसार का केंद्र-बिंदु समझते हैं, क्योंकि हम इस कष्टप्रद विश्वास को लेकर चलते हैं कि अकेले हमें ही असहनीय दुख मिलता है। खुद को सदा अपने भीतर, अपने दिमाग़ में क़ैद करके रखना ही दुख है।"

"लेकिन यह उचित नहीं है!"

रोज़ हमारे जीवन में समस्याएँ आती हैं। परंतु उन समस्याओं से हमें कष्ट नहीं होता। यदि हम अपनी समस्या का सामना करें और अपनी ऊर्जा को समाधान खोजने में लगा दें तो हम उस समस्या को चुनौती में रूपांतरित कर सकते हैं। परंतु यदि हम उसमें यह भाव मिला दें कि हमारी समस्या "अनुचित" है, तो यह ऐसे ईंधन का काम करता है जिससे मानसिक अशांति और भावनात्मक पीड़ा होने लगती है। अब हमारे पास एक नहीं बल्कि दो समस्याएँ हो जाती हैं, और साथ ही "अनुचित" वाला भाव हमारा ध्यान भटका देता है, हमें लील जाता है और अपनी समस्याओं से निपटने के लिए हमें जो ऊर्जा चाहिए होती है, उसे हमसे छीन लेता है।

एक दिन सुबह इस विषय पर दलाई लामा के साथ बात करते हुए मैंने उनसे पूछा, "किसी समस्या के उत्पन्न होने पर हमें अपने साथ कुछ अनुचित होने का जो भाव इतनी बार मन में उठता है, उससे कैसे निपटा जा सकता है?"

दलाई लामा ने उत्तर दिया, "अपनी पीड़ा को अनुचित समझने की भावना से निपटने के अनेक तरीके हो सकते हैं। मैं कष्ट को मनुष्य जीवन के एक तथ्य के रूप में स्वीकार करने के महत्त्व पर पहले भी बात कर चुका हूँ। मुझे लगता है कुछ मामलों में तिब्बती इस तरह की कठिन परिस्थितियों को बेहतर ढंग से स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि वे कहते हैं, 'यह उनके इस जन्म या पूर्व जन्मों के बुरे कर्मों का फल है।' इसलिए उनके लिए यह स्वीकार करना आसान हो जाता है। मैंने ऐसे अनेक भारतीय परिवार देखे हैं जो अत्यंत कठिन परिस्थितियों में रहते हैं – वे बेहद ग़रीब हैं और उनके बच्चे अंधे या मंदबुद्धि हैं। फिर वे ग़रीब महिलाएँ, सिर्फ़ यह कहकर किसी तरह उनकी देखभाल करती हैं कि, यह उनके कर्मों का फल है, और यही उनकी नियति है।"

"यहाँ कर्मों की बात करते समय शायद यह बताना और समझना ज़रूरी है कि कभी-कभी कर्म सिद्धांत का ग़लत अर्थ निकालकर, हर बात का दोष कर्मों को देने की तथा स्वयं कोशिश करने या जिम्मेदारी से बचने की प्रवृत्ति होती है। व्यक्ति आसानी से यह कह सकता है, 'यह मेरे पूर्व कर्मों का, मेरे बुरे कर्मों का फल है और मैं इसमें क्या कर सकता हूँ? मैं लाचार हूँ।' कर्म के विषय में ऐसा सोचना बिल्कुल ग़लत है, क्योंकि व्यक्ति के अनुभव उसके पूर्व कर्मों का ही परिणाम हैं, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति के पास कोई विकल्प नहीं है या उसमें बदलाव लाने का, कुछ सकारात्मक करने का कोई तरीका नहीं है। यह बात जीवन के हर पहलू पर लागू होती है। व्यक्ति को निष्क्रिय होकर या सब कुछ कर्मों पर छोड़कर निजी प्रयास करने से बचने का बहाना नहीं खोजना चाहिए, क्योंकि यदि व्यक्ति

कर्म के सिद्धांत को ठीक तरह से समझ ले तो उसे यह पता लग जाएगा कि कर्म का अर्थ है 'क्रिया।' कर्म बहुत सक्रिय प्रक्रिया है। जब हम कर्म, या क्रिया, की बात करते हैं तो यह उस क्रिया को दर्शाता है जिसका कोई कर्त्ता हो और जो इस मामले में, अतीत में हम स्वयं रह चुके हैं। हमारा भविष्य कैसा होगा, यह बहतु हद तक हमारे अपने वतर्मान के हाथ में है। यह हमारे द्वारा आज किए जाने वाले कार्यों पर निर्भर करता है।"

"तो, कर्म को निष्क्रिय और गतिहीन न मानकर, इसे सक्रिय समझना चाहिए। यह इस बात को दर्शाता है कि कर्म प्रक्रिया में कोई कर्त्ता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए, कोई साधारण कार्य या साधारण उद्देश्य जैसे भोजन की अपनी ज़रूरत को पूरा करना... इस साधारण उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमें कुछ कार्य करना पड़ेगा। हमें भोजन तलाशना होगा, फिर उसे खाना पड़ेगा और इस बात से यह पता लगता है कि किसी छोटे-से उद्देश्य को पूरा करने के लिए भी कार्य करना पड़ता है..."

"अपने साथ अनुचित होने के भाव को अपने कर्मों का फल मानकर उसके एहसास को कम करना बौद्धधर्मियों के लिए शायद प्रभावी तरीका हो सकता है," मैंने बीच में कहा। "लेकिन उनका क्या जो कर्म के सिद्धांत को नहीं मानते? जैसेः पश्चिम में रहने वाले बहुत-से लोग..."

"रचयिता, या ईश्वर में विश्वास करने वाले लोग कठिन परिस्थितियों को ईश्वर की रचना या उसकी योजना मानकर, उन्हें अधिक सरलता से स्वीकार कर लेते हैं। उनको लगता है, हालाँकि वह स्थिति नकारात्मक है लेकिन ईश्वर बहुत दयालु व शक्तिशाली है, और इसलिए उस परिस्थिति का अवश्य कोई कारण, कोई अर्थ होगा जिसे वे समझ नहीं पा रहे हैं। मुझे लगता है कि इस तरह का विश्वास कष्ट के समय उनकी मदद करता है।"

"और उन लोगों का क्या जो न कर्म के सिद्धांत को मानते हैं और न ही जिनका ईश्वर में विश्वास है?"

"नास्तिक व्यक्ति के लिए..." दलाई लामा उत्तर देने से पहले सोचने लगे, "... शायद व्यावहारिक और वैज्ञानिक तरीका कारगर हो सकता है। मेरे विचार से वैज्ञानिक आम तौर पर किसी भी समस्या पर तटस्थ भाव से सोचते हैं और ज़्यादा भावुक हुए बिना उसका अध्ययन करते हैं। इस तरीके से आप समस्या को यूँ देख सकते हैं, 'यदि समस्या को सुलझाने का कोई तरीका है, तो उसे सुलझाओ, चाहे उसके लिए आपको न्यायालय ही जाना पड़े!'" वह हँसने लगे। "उसके बाद, यदि आपको लगे कि जीतने का कोई तरीका नहीं है तो आप उसे भूल जाइए।"

"कठिन या जटिल स्थितियों का तटस्थ विश्लेषण बहुत आवश्यक होता है क्योंकि इसी तरीके से आप जान सकते हैं कि उसके पीछे कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अगर आपके बॉस ने आपके साथ ऑफ़िस में दुर्व्यवहार किया, तो हो सकता है कि उसके पीछे कुछ और कारण हों; हो सकता है वह किसी और बात से परेशान हो, सुबह अपनी पत्नी से उसका झगड़ा हुआ हो और उसके व्यवहार का आपके साथ कोई

संबंध न हो और न ही वह आपसे नाराज़ हो। निश्चित रूप से, आपको सामने आई परिस्थिति को झेलना पड़ेगा, लेकिन कम से कम इस तरीके से आपको अतिरिक्त चिंता नहीं सताएगी।"

"क्या इस तरह का 'वैज्ञानिक' रवैया, जिसमें व्यक्ति परिस्थिति का निष्पक्ष भाव से आकलन करता है, व्यक्ति की उन तरीकों को जानने में भी मदद कर सकता है जिनके द्वारा वह स्वयं अपनी समस्या में योगदान देता है? और क्या ऐसा करने से उस कठिन परिस्थिति से जुड़ा "अनुचित" के भाव को कम करने में मदद मिलेगी?"

"हाँ!" उन्होंने उत्साहपूर्वक उत्तर दिया। "इससे निश्चित रूप से असर पड़ेगा। सामान्य तौर पर यदि हम किसी परिस्थिति की निष्पक्ष व ईमानदार ढंग से जाँच करें तो हम पाएँगे कि बहुत हद तक हम स्वयं उन घटनाओं के लिए उत्तरदायी होते हैं।"

"उदाहरण के लिए, बहुत-से लोग खाड़ी युद्ध के लिए सद्दाम हुसैन को दोष देते हैं। मैंने बाद में, बहुत-से मौकों पर यह बात कही, 'यह उचित नहीं है!' इस तरह की परिस्थितियों में, मुझे सद्दाम हुसैन के लिए दुख होता है। निश्चय ही, वह तानाशाह था और उसकी कुछ बातें बुरी थीं। अगर आप एक नज़र में देखें तो उसको दोष देना आसान है – वह तानाशाह था, सब अधिकार अपने पास रखता था, यहाँ तक कि उसकी आँखें भी डरावनी थीं!" वह हँसे। "परंतु बिना सेना के, वह अधिक हानि नहीं पहुँचा सकता था और बिना सैन्य उपकरणों के उसकी सेना काम नहीं कर सकती थी। इतने सैन्य उपकरण हवा में से नहीं आ जाते! तो इस ढंग से देखें, तो बहुत-से देश इसमें शामिल हैं।"

"तो," दलाई लामा ने आगे कहा, "प्रायः हम अपनी समस्याओं के लिए दूसरों को या बाहरी कारणों को दोष देते हैं। इसके अतिरिक्त, हम एक ही कारण पर ध्यान देते हैं और फिर स्वयं को उस जिम्मेदारी से मुक्त करने का प्रयास करते हैं। जब भी हम भावुक होते हैं तो चीज़ें जैसी दिखती हैं और वास्तव में जैसी होती हैं, उनमें अंतर महसूस होता है। इस मामले में, अगर आप आगे जाएँ और बहुत ध्यान से स्थिति का आकलन करें तो आप पाएँगे कि सद्दाम हुसैन समस्या का एक हिस्सा था लेकिन उसके अलावा और भी कई कारण हैं। एक बार यह बात समझ में आ जाए तो आपकी पहले वाली सोच कि वही एकमात्र कारण है, अपने आप समाप्त हो जाती है और सच्चाई प्रकट हो जाती है।"

"इसके लिए चीज़ों को उनकी समग्रता में देखना पड़ता है – यह समझना पड़ता है कि किसी स्थिति में अनेक कारणों का योगदान होता है। उदाहरण के लिए, चीन के साथ हमारी समस्या – उसमें, हमारा योगदान भी है। मुझे लगता है कि हमारी पीढ़ी ने इस परिस्थिति में योगदान दिया होगा, लेकिन निश्चित तौर पर हमारी कुछ पहले की पीढ़ियाँ बहुत लापरवाह थीं। इसलिए, मैं मानता हूँ कि हम तिब्बतियों ने इस दुखद स्थिति में अपना योगदान दिया है। चीन को सारा दोष देना उचित नहीं है। यह अनेक स्तरों पर व्याप्त है। हो सकता है कि हमने इसमें योगदान दिया हो, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि सब दोष हमारा है। उदाहरण के लिए, तिब्बती कभी चीनी आक्रमण के सामने नहीं झुके और उन्होंने लगातार उसका विरोध किया है। इसकी वजह से चीनी लोगों ने नई नीति अपना ली – बड़ी संख्या में लोगों को चीन से तिब्बत भेजना शुरू कर दिया ताकि वहाँ तिब्बती जनसंख्या

नगण्य रह जाए, तिब्बती विस्थापित हो जाएँ और स्वतंत्रता की लड़ाई का प्रभाव कम हो जाए। ऐसे में, हम यह नहीं कह सकते कि चीन की नीति के लिए तिब्बती विरोध जिम्मेदार है।"

"जब आप किसी स्थिति में अपने योगदान को खोजते हैं, तो उन परिस्थितियों का क्या जिनमें आपका कोई दोष नहीं होता, जिनसे आपका कोई संबंध नहीं होता, रोज़ की छोटी-छोटी मामूली बातें, जैसे: जब कोई आपसे जान-बूझकर झूठ बोले?" मैंने पूछा।

"निश्चित ही, जब कोई झूठ बोले तो शुरू में मुझे कुछ थोड़ी निराशा हो सकती है लेकिन यहाँ भी अगर मैं स्थिति को देखूँ तो हो सकता है मुझसे कुछ छिपाने के पीछे उसका उद्देश्य बुरा न हो। हो सकता है, वह मुझपर पूरी तरह विश्वास नहीं करता। इसलिए, इस तरह जब कभी मुझे निराशा होती है तो मैं ऐसी परिस्थिति को भिन्न नज़रिए से देखने का प्रयास करता हूँ; मैं ऐसा सोचूँगा कि शायद वह व्यक्ति मुझे बात बताना नहीं चाहता था क्योंकि उसे संदेह था कि मैं उस बात को गोपनीय नहीं रख सकूँगा। मेरा स्वभाव स्पष्ट बात करने का है तो हो सकता है कि उसने मुझे बताना ठीक नहीं समझा। दूसरे शब्दों में, मैं अपने निजी स्वभाव के कारण उस व्यक्ति के भरोसे के योग्य नहीं हूँ। इस तरह देखने से मुझे वह दोष अपना मालूम होता है।"

दलाई लामा द्वारा कही गई होने के बाद भी मुझे यह बात अतिशयोक्ति जैसी लगी – दूसरे की बेईमानी में "अपना योगदान" खोजना। लेकिन उनके स्वर में सच्चाई थी कि उन्होंने कठिनाई से निपटने के लिए स्वयं अपने निजी जीवन में इस बात का व्यावहारिक प्रयोग किया था। अपने जीवन में इस तकनीक को अपनाते समय, ज़रूरी नहीं, कि हम किसी कठिन परिस्थिति में हमेशा अपना दोष खोजने में सफल न हो पाएँ। हम सफल हों अथवा नहीं, किंतु उस समस्या में अपना दोष खोजने का सच्चा प्रयास हमारे नज़रिए को बदलने में मदद करता है और सामान्य संकीर्ण विचारधारा को खंडित कर, दुखों के बहुत बड़े कारण यानि अनुचित महसूस होने वाले भाव से हमें दूर रखता है।

ग्लानि

अपूर्ण संसार की उपज होने के नाते हम सभी अपूर्ण हैं। हम सबने कोई न कोई ग़लती की है। कुछ बातों का हमें पश्चाताप होता है – वे काम जो हमने किए हैं या वे काम जो हमने नहीं किए। प्रायश्चित की सच्ची भावना के साथ अपनी गलतियों को स्वीकार करना हमें जीवन में सन्मार्ग पर चलने और जब भी संभव हो, अपनी गलतियों को सुधारने तथा भविष्य को ठीक करने के लिए प्रेरित करता है। परंतु यदि हम प्रायश्चित के भाव को विकृत हो जाने दें तो वह ग्लानि में बदल जाता है और फिर अतीत में की गई ग़लतियों की यादें ताज़ा रहती हैं जिससे आत्म-निंदा व आत्म-द्वेष का भाव लगातार बना रहता है। इससे हम स्वयं को सज़ा देने और पीड़ा पहुँचाने का कारण बनने के अतिरिक्त कुछ प्राप्त नहीं कर पाते।

एक बार पहले जब हमने दलाई लामा के भाई की मृत्यु के विषय पर संक्षेप में चर्चा की थी, तो मुझे याद है कि दलाई लामा ने अपने भाई की मृत्यु से संबंधित किसी पश्चाताप की बात की थी। मैं यह जानने के लिए उत्सुक था कि उन्होंने प्रायश्चित के भाव का सामना कैसे किया होगा, इसलिए मैंने यह विषय एक अन्य चर्चा के दौरान उठाते हुए उनसे पूछा, "जब हम लोबसांग की मृत्यु के बारे में बात कर रहे थे तो आपने प्रायश्चित का उल्लेख किया था। क्या आपके जीवन में कोई ऐसी परिस्थिति आई है जिस पर आपको पछतावा हुआ हो?"

"हाँ। अब जैसे: मुझसे उम्र में बड़े एक भिक्षु थे जो संन्यासी की तरह रहते थे। वह मेरे पास शिक्षा लेने आया करते थे हालाँकि मेरे ख़्याल से वह मुझसे ज़्यादा योग्य थे और मेरे पास सिर्फ़ औपचारिकतावश आते थे। खैर, एक दिन वे मेरे पास आए और मुझसे उच्च-स्तर के गूढ़ अभ्यास करने के लिए कहने लगे। मैंने उन्हें हल्के अंदाज़ में कहा कि यदि उस अभ्यास को कोई युवा व्यक्ति करे, तो शायद बेहतर होगा, क्योंकि उस अभ्यास को प्रायः युवावस्था में ही किया जाता है। मुझे बाद में पता लगा कि उस भिक्षु ने आत्महत्या कर ली ताकि उनका पुनर्जन्म हो सके और वह युवावस्था में उस अभ्यास को कर सके..."

मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ और मैंने कहा, "ओह, यह तो बहुत बुरा हुआ! आपको यह सुनकर काफ़ी दुख हुआ होगा..."

दलाई लामा ने उदास होकर हामी भरी।

"आप उस प्रायश्चित की भावना से किस तरह उबर पाए? आपने उस भाव को मन से कैसे दूर किया?"

उत्तर देने से पहले दलाई लामा ने काफ़ी देर विचार किया फिर कहा, "मैं उससे उबर नहीं पाया। वह बात आज भी मेरे मन में है।" उन्होंने रुककर फिर कहा, "हालाँकि उस प्रायश्चित का भाव आज भी मौजूद है, किंतु उसके कारण मेरा मन भारी नहीं होता या वह मुझे पीछे की ओर नहीं खींचता। अगर मैं उस प्रायश्चित के भाव को अपने ऊपर हावी हो जाने दूँ तो उससे किसी को लाभ नहीं होगा, वह बिना मतलब मेरे लिए हताशा और डिप्रेशन का कारण बन जाएगा या फिर मेरे जीवन में हस्तक्षेप करेगा।"

उस समय, मुझे यह असंगत महसूस हुआ कि एक मनुष्य जीवन के दुखों का सामना कर रहा था और गहन पश्चाताप के साथ भावुक भी हो रहा था लेकिन फिर भी उसके मन में कोई ग्लानि या आत्म-तिरस्कार का भाव नहीं था। मनुष्य के अपनी सीमाओं, अपने अवगुणों और न्यायिक त्रुटियों के होते हुए भी स्वयं को पूर्ण मानने की संभावना। किसी बुरी स्थिति को उसके यथावत रूप में स्वीकार करते हुए अति प्रतिक्रिया दिए बिना प्रतिक्रिया देने की संभावना। दलाई लामा को उस घटना पर सच्चा पश्चाताप था लेकिन उन्होंने उस पश्चाताप के भाव को अत्यंत गरिमा व शिष्टता के साथ सँभाला। इस प्रायश्चित को अपने साथ लेकर भी उन्होंने इसे बोझ नहीं बनाया, बल्कि वह इसके साथ आगे बढ़ते गए और अपनी योग्यतानुसार दूसरों की सहायता की।

मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या आत्म-विध्वंसक ग्लानि में डूबे बिना जीने की कला

आंशिक रूप से सांस्कृतिक होती है। दलाई लामा के इस पश्चाताप के बारे में एक तिब्बती विद्वान मित्र से बात करते समय मुझे पता लगा कि अंग्रेज़ी के 'गिल्ट" (ग्लानि) शब्द के लिए तिब्बती भाषा में कोई समतुल्य शब्द ही नहीं है। हालाँकि उसमें "अफ़सोस" या "पछतावा" या "खेद" का अर्थ देने वाले शब्द अवश्य हैं जिनमें "भविष्य में सुधार" करने का भाव नज़र आता है। इसका सांस्कृतिक पहलू कुछ भी हो, मेरा यह मानना है कि अपनी पारंपरिक विचारधारा को चुनौती देकर तथा दलाई लामा के बताए सिद्धांतों के आधार पर भिन्न मानसिक दृष्टिकोण विकसित करने से, हम में से कोई भी बिना ग्लानि भाव के, जिसके कारण हमें जीवन में अनावश्यक कष्ट होते हैं, जीना सीख सकता है।

बदलाव का विरोध

ग्लानि तब होती है जब हम अपने मन को इस बात के लिए राज़ी कर लेते हैं कि हमने कोई ऐसी भूल कर दी है जिसे सुधारा नहीं जा सकता। ग्लानि का असली कष्ट यह सोचने से होता है कि हमारी समस्या स्थायी है। चूंकि ऐसा कुछ नहीं जो बदलता नहीं है, उसी तरह पीड़ा भी शांत हो जाती है – समस्या स्थायी रूप से नहीं रहती। यह बदलाव का सकारात्मक पहलू है। इसका नकारात्मक पक्ष यह है कि हम जीवन के लगभग हर क्षेत्र में बदलाव का विरोध करते हैं। कष्ट से मुक्त होने की शुरुआत जिस मुख्य कारण की जाँच से होती है, वह है: बदलाव का विरोध।

जीवन की परिवर्तनशील प्रकृति के बारे में बोलते हुए दलाई लामा ने समझाया, "कष्ट के कारणों व उसके स्रोत का पता लगाना बहुत ज़रूरी होता है। इसकी शुरुआत जीवन की अस्थायी एवं नश्वर प्रकृति को समझने से होती है। सब चीज़ें, घटनाएँ, परिवर्तनशील हैं और हर पल बदल रही हैं तथा कोई भी चीज़ स्थिर नहीं है। अपने रक्त प्रवाह के बारे में सोचने से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी; हमारा रक्त हमेशा प्रवाहित होता रहता है और कभी एक जगह नहीं रुकता। यह हर पल बदलने वाली चीज़ हमारे भीतर की आंतरिक प्रणाली है। चूंकि हर चीज़ प्रतिपल बदलती रहती है, इससे यह पता चलता है कि चीज़ों में सहन करने और स्थायी बने रहने की क्षमता का अभाव होता है। इस कारण कोई वस्तु स्थायी स्थिति में नहीं रह सकती और अपनी स्वतंत्र शक्ति के साथ भी उसके लिए एक-सी स्थिति में रहना संभव नहीं है। इस तरह प्रत्येक वस्तु किन्हीं अन्य कारणों के प्रभाव में रहती है। इसलिए, आपका अनुभव, कभी भी, चाहे वह कितना भी अच्छा व सुखद क्यों न हो, अधिक समय नहीं टिक सकता। यह एक तरह की पीड़ा का आधार बन जाता है जिसे बौद्ध धर्म में 'परिवर्तन की पीड़ा' कहते हैं।"

बौद्ध विचारधारा में नश्वरता संबंधी अवधारणा की केंद्रीय भूमिका होती है और इस नश्वरता पर चिंतन करना एक महत्त्वपूर्ण अभ्यास माना जाता है। बौद्ध धर्म में नश्वरता का चिंतन करने से दो मुख्य लाभ होते हैं। पारंपरिक या रोज़मर्रा के स्तर पर, बौद्ध कर्त्ता

स्वयं अपनी नश्वरता पर – इस तथ्य पर विचार करता है कि जीवन क्षणिक है और हमें नहीं पता कि हमारी मृत्यु कब हो जाएगी। जब इस विचार के साथ मानव जीवन की विरलता और आध्यात्मिक मुक्ति, कष्ट तथा पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति पाने की संभावना का मिलन होती है तो उससे कर्त्ता के निश्चय को बल मिलता है कि वह मुक्ति दिलाने वाले आध्यात्मिक अभ्यास में लीन होकर अपने समय का बेहतरीन उपयोग करे। इससे गहरे स्तर पर, नश्वरता और समस्त घटनाओं के अस्थायी होने के सूक्ष्म पहलुओं पर विचार करने से सत्य की खोज शुरू हो जाती है तथा इस बात का बोध होने से अज्ञान का नाश होता है जो हमारे समस्त दुखों का कारण है।

इसलिए, बौद्ध धर्म में नश्वरता पर चिंतन करने का बहुत महत्त्व है, किंतु इसके साथ यह प्रश्न उठता है: क्या नश्वरता पर चिंतन और इसके बोध का ग़ैर-बौद्धधर्मियों के दैनिक जीवन में कोई व्यावहारिक लाभ है? यदि हम "परिवर्तन" के दृष्टिकोण से "नश्वरता" की अवधारणा को देखें तो इसका उत्तर निश्चित रूप से 'हाँ' होगा। आख़िरकार, जीवन को बौद्ध या पाश्चात्य, किसी भी नज़रिए से देखा जाए, तो सत्य यही है कि जीवन परिवर्तनशील है। जब तक हम इस सत्य को नकारते और जीवन के स्वाभाविक बदलावों का विरोध करते रहेंगे तब तक हम अपने कष्टों को बढ़ाते जाएँगे।

परिवर्तन को स्वीकार करना हमारे आत्म-निर्मित कष्टों को कम करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए, हम अपने अतीत को पकड़कर रखते हैं जिससे हमारा कष्ट बढ़ता जाता है। यदि हम अपनी छवि को इसी संदर्भ में देखते रहेंगे कि हम पहले कैसे दिखते थे और क्या कुछ कर पाते थे जो हम अब नहीं कर सकते, तो यह निश्चित है कि आयु बढ़ने के साथ हमारी ख़ुशी में वृद्धि नहीं हो सकती। कभी-कभी हम अपने अतीत को जितना याद करते हैं, हमारा जीवन उतना ही विरूपित और विकृत होता चला जाता है।

परिवर्तन की अवश्यंभाविता को स्वीकार करने से, सामान्य सिद्धांत के रूप में, हमें बहुत-सी समस्याओं को सुलझाने में मदद मिलती है। साथ ही, जीवन के सामान्य बदलावों को अधिक सक्रिय ढंग से समझने से हमारी प्रतिदिन की चिंता काफ़ी हद तक कम हो जाती है जो कि हमारी अनेक समस्याओं का प्रमुख कारण है।

जीवन के बदलावों के महत्त्व को प्रकट करते हुए एक महिला ने, जो हाल ही में माँ बनी थी, मुझे रात के दो बजे आपात कक्ष में जाने की एक घटना सुनाई।

"क्या समस्या है?" बाल-चिकित्सक ने उससे पूछा।

"मेरा बच्चा! इसे कुछ हो गया है!" वह व्यग्र होकर चिल्ला रही थी, "मेरे ख़्याल से उसे घुटन या कुछ हो रहा है! वह बार-बार अपनी जीभ बाहर निकाल रहा है; उसे अंदर नहीं कर रहा... बार-बार यही हो रहा है... मानो वह मुँह से कुछ निकालना चाहता हो, लेकिन उसके मुँह में कुछ नहीं है..."

कुछ सवाल पूछने और थोड़ी जाँच करने के बाद डॉक्टर ने उसे भरोसा दिलाया, "चिंता की कोई बात नहीं है। बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता है, वह अपने शरीर को जानने की

कोशिश करता है और देखता है कि वह क्या-क्या कर सकता है। आपके बच्चे को अभी-अभी अपनी जीभ के बारे में पता लगा है!"

इकतीस वर्षीय पत्रकार मार्गरेट व्यक्तिगत संबंधों के संदर्भ में बदलाव को समझने और उसे स्वीकार करने के महत्त्व को दर्शाती है। उसने हाल में हुए अपने तलाक़ को लेकर मुझसे अपनी चिंता व्यक्त की।

उसने कहा, "मुझे लगा कि इस बारे में किसी व्यक्ति से बात करना अच्छा होगा, जो मेरे अतीत को विराम देने में और मुझे अकेले जीने के बदलाव तक लेकर आने में मेरी सहायता कर सके। सच कहूँ तो मुझे थोड़ी घबराहट हो रही है..."

मैंने उससे उनके तलाक़ की परिस्थितियों के विषय में पूछा।

"मैं उसे सौहार्दपूर्ण कह सकती हूँ। हमारा कोई झगड़ा नहीं हुआ। मैं और मेरे पूर्व पति, हम दोनों का काम अच्छा चलता है, इसलिए किसी तरह की आर्थिक परेशानी नहीं थी। हमारा एक बेटा है, जिसने अब हमारे तलाक़ को स्वीकार कर लिया है। मेरे और मेरे पति के बीच संयुक्त संरक्षण समझौता भी ठीक चल रहा है..."

"मेरा मतलब है क्या आप बता सकती हैं कि आपका तलाक़ क्यों हुआ?"

"हम्म्म... मेरे ख़्याल से हमारे बीच में प्यार खत्म हो गया था," उसने आह भरते हुए कहा। "शायद धीरे-धीरे रोमांस समाप्त हो गया था; हमारे संबंधों में वह गरमाहट नहीं रही जो हमारी शादी के समय थी। हम दोनों अपने-अपने काम और अपने बेटे में व्यस्त होते गए और एक-दूसरे से दूर होते चले गए। हमने व्यावसायिक स्तर पर वैवाहिक परामर्श भी लिया, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। हम साथ तो रह रहे थे, लेकिन हमारा रिश्ता भाई-बहन की तरह हो गया था। मुझे प्यार का, शादी का एहसास ही नहीं होता था। खैर, हमने मिलकर यह निर्णय लिया कि तलाक़ लेना बेहतर होगा, हमारे बीच कुछ था जो अब ख़त्म हो गया था।"

उसकी समस्या को समझने के लिए हमने दो बार मुलाकात की और हमने एक अल्पकालिक मनोचिकित्सा से परामर्श लेने का निर्णय लिया। इसमें मेरा पूरा ध्यान उसकी चिंता को दूर करने और उसके जीवन में आए बदलावों से उसका तालमेल बैठाने पर था। कुल मिलाकर, वह बुद्धिमान और भावुक रूप से संतुलित थी। चिकित्सा की उस संक्षिप्त अवधि के दौरान उसमें काफ़ी सुधार हुआ और वह आसानी से अपने एकाकी जीवन में लौट आई।

एक-दूसरे की देखभाल करने के बावजूद, यह स्पष्ट था कि मार्गरेट और उसके पति ने उस रिश्ते में उत्साह की कमी को इस बात से जोड़ लिया कि उन्हें तलाक़ ले लेना चाहिए। हम अक्सर उत्साह में कमी को रिश्ते में आई घातक परेशानी से जोड़ लेते हैं और रिश्ते में बदलाव की पहली आहट से डर जाते हैं और सोचने लगते हैं कि कुछ गड़बड़ है। शायद हमने सही साथी का चुनाव नहीं किया। हमारा साथी हमें फिर वैसा नहीं लगता जिससे हमने कभी प्यार किया था। असहमति होती है – हमारी संभोग की इच्छा होती है लेकिन हमारा साथी थका हुआ होता है, हम कोई फ़िल्म देखना चाहते हैं लेकिन हमारे साथी को उसमें रुचि

नहीं होती या वह हमेशा व्यस्त होता है। हम लोगों के बीच मतभेद प्रकट होने लगते हैं जो हमें पहले दिखाई नहीं देते थे। इससे हम यही निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि सबकुछ ख़त्म हो गया है; आख़िर, हम इस बात से बच नहीं सकते कि हमारे बीच दूरियाँ बढ़ रही हैं। चीज़ें पहले जैसी नहीं हैं; शायद हमें तलाक़ ले लेना चाहिए।

तो हम क्या करते हैं? रिश्तों के विशेषज्ञों ने दर्जनों किताबें लिखी हैं कि जब रोमांस में उत्साह और गरमाहट कम हो जाए तो हमें क्या करना चाहिए। रोमांस को दोबारा जगाने के लिए वह अनेक तरह के सुझाव देते हैं – अपनी दिनचर्या में से रोमांस के लिए समय निकालिए, बाहर जाकर भोजन कीजिए और छुट्टियाँ बिताइए, अपने साथी की प्रशंसा कीजिए और सार्थक बातचीत करना सीखिए। कई बार इन चीज़ों से मदद मिलती है। कभी-कभी इनसे सहायता नहीं भी मिलती है।

परंतु रिश्ते को पूरी तरह समाप्त मान लेने से पहले, हम एक लाभदायक काम कर सकते हैं। जब कभी हमें संबंध में कुछ बदलाव आता दिखाई दे तो हमें ठहर कर उस स्थिति का आकलन करना चाहिए और रिश्तों में आने वाले बदलावों के सामान्य स्वरूपों के बारे में जितनी हो सके जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

जीवन में हम शैशव अवस्था से बाल्यावस्था और फिर युवावस्था के बाद वृद्धावस्था तक जाते हैं। व्यक्तिगत विकास के मार्ग पर ये सारे बदलाव स्वाभाविक माने जाते हैं। परंतु रिश्ता भी एक गतिशील जीवंत तंत्र होता है जिसमें दो जीव उस वातावरण में साथ रहते हैं। जीवंत होने के नाते, यह भी बहुत स्वाभाविक और सही है कि वह संबंध अनेक चरणों से होकर गुज़रता है। किसी भी रिश्ते में, निकटता के शारीरिक, भावनात्मक और बौद्धिक – विभिन्न आयाम होते हैं। हम जिनसे प्रेम करते हैं, उनके साथ शारीरिक स्पर्श होना, भावनाओं एवं विचारों को साझा करना तथा विचारों का आदान-प्रदान करना, ये सभी परस्पर जुड़े रहने के वैध तरीके हैं। बाकी चीज़ों का शांत व कम हो जाना सामान्य बात है; कभी-कभी शारीरिक निकटता कम हो जाती है लेकिन भावनात्मक नज़दीकी बढ़ जाती है; कभी-कभी हम बोलना नहीं चाहते, और सिर्फ़ छूने की इच्छा प्रबल होती है। यदि हम इस बात को लेकर संवेदनशील हैं तो हमें उत्साह के आरंभिक समय में अच्छा महसूस होता है, परंतु यदि उसमें कमी आ जाए तो चिंता या ग़ुस्सा करने के बजाय, हमें अंतरंग होने के नए तरीके सोचने चाहिए जो पहले जैसे – या शायद, उससे भी अधिक – संतोषप्रद हों। हम अपने साथी को मित्र बना, उसके साथ घनिष्ठ प्रेम और ज़्यादा गहरा संबंध स्थापित कर ख़ुश रह सकते हैं।

डेसमंड मॉरिस ने अपनी पुस्तक इंटीमेट बिहेवियर में मनुष्य में घनिष्ठता की ज़रूरत में होने वाले सामान्य बदलावों को समझाया है। वह बताते हैं कि हम सभी तीन अवस्थाओं से गुज़रते हैं: "मुझे कसकर पकड़ो", "मुझे नीचे उतारो" और "मुझे अकेला छोड़ दो।" यह चक्र जीवन के आरंभिक वर्षों में दिखाई देना शुरू होता है जब बच्चा शिशुकाल वाले "मुझे कसकर पकड़ो" अवस्था से निकलकर "मुझे नीचे उतारो" की अवस्था में जाता है और दुनिया को देखता, घुटनों के बल घिसटता, पैदल चलता है और उसे अपनी माँ से अलग कुछ निजी स्वायत्तता मिल जाती है। यह सामान्य विकास का हिस्सा है। हालाँकि, ये अवस्थाएँ

सिर्फ़ एक ही दिशा में आगे नहीं बढ़ती; विभिन्न अवस्थाओं में जब अलग होने की भावना ज़्यादा प्रगाढ़ हो जाती है तो बच्चे को थोड़ी चिंता होती है और फिर वह आराम और नज़दीकी पाने अपनी माँ के पास लौट आता है। किशोर होने पर, "मुझे अकेला छोड़ दो" अवस्था प्रधान हो जाती है तथा बच्चा अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्ष करता है। हालाँकि यह चरण माता-पिता के लिए थोड़ा मुश्किल और पीड़ादायक होता है। अधिकतर विशेषज्ञ इसे बचपन से वयस्कता तक के परागमन का सामान्य और ज़रूरी चरण मानते हैं। यहाँ तक कि इस चरण में भी अन्य अवस्थाओं का मिश्रण होता है। जिस समय किशोर घर में अपने माता-पिता से यह कहता है कि, "मुझे अकेला छोड़ दो!" उस दौरान "मुझे कसकर पकड़ो" वाली उसकी ज़रूरत उसके दोस्त पूरी कर रहे होते हैं।

वयस्क संबंधों में भी यही होता है। घनिष्ठता के स्तर बदलते हैं तथा ज़्यादा नज़दीकियों और ज़्यादा दूरियों का एकांतर दौर चलता रहता है। यह भी विकास और उत्थान की सामान्य प्रक्रिया है। मनुष्य के रूप में अपने सामर्थ्य को प्राप्त करने और व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए, हमें अंतर्मुखी होने के पलों में निकटता और मिलन की आवश्यकता के साथ स्वायत्तता के संतुलन को बनाए रखना पड़ता है।

इस बात को समझने के बाद, जब भी हम अपने साथी से "दूर होंगे" तो हमें सागर-तट पर लहरों को देखने से होने वाली घबराहट से अधिक घबराहट नहीं होगी। निश्चित तौर पर, कभी-कभी रिश्तों में भावनात्मक दूरी के बढ़ने से गंभीर समस्या के संकेत पैदा हो जाते हैं (जैसे अव्यक्त अनदेखा ग़ुस्सा) और संबंध टूट भी सकता है। ऐसे मामलों में चिकित्सा एक अच्छा उपाय है। परंतु ध्यान रखने वाली मुख्य बात यह है कि बढ़ती हुई दूरी का स्वतः यह अर्थ नहीं होता कि सब कुछ समाप्त हो गया। यह उस प्रक्रिया का हिस्सा हो सकता है जिसमें संबंध नए ढंग से परिभाषित होता है और पहले वाली घनिष्ठता लौट सकती है या उससे भी अधिक मज़बूत होकर वापस आ सकती है। तो, यह मानना, और स्वीकार करना कि बदलाव दूसरों के साथ हमारे संबंधों का स्वाभाविक अंश है, रिश्तों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। ऐसा भी होता है कि जिस समय हम अत्यंत निराश हो जाते हैं मानो वह संबंध समाप्त हो गया है, ठीक तभी कोई ज़बर्दस्त बदलाव होता है। बदलाव की इस अवधि में सच्चे प्यार को विकसित और पल्लवित करने में ये क्षण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमारा संबंध चाहे पहले जैसे प्रगाढ़ प्रेम पर आधारित न हो, चाहे हमें सामने वाला व्यक्ति आदर्श न लगता हो, चाहे हमें एक-दूसरे के साथ का एहसास न होता हो। परंतु इसके बदले, हम ऐसी स्थिति में आ जाते हैं जहाँ पर दूसरे को जानने लगते हैं – दूसरे को उसके वास्तविक रूप में, कमियों सहित अलग व्यक्तित्व और अपने जैसे मनुष्य के रूप में देखने लगते हैं। यहाँ पहुँचकर हम एक सच्चा वादा, दूसरे के विकास का वादा करते हैं – जो सच्चे प्यार का रूप है।

यदि मार्गरेट के वैवाहिक संबंध में आए बदलावों को स्वीकार कर लिया जाता और उत्साह एवं रोमांस को छोड़कर अन्य बातों के आधार पर नए ढंग से रिश्ता बनाया जाता तो मार्गरेट की शादी को शायद बचाया जा सकता था।

सौभाग्य से, यह कहानी यहीं खत्म नहीं हो गई। मार्गरेट के साथ मेरी अंतिम भेंट के दो साल बाद, मेरी भेंट उससे एक शॉपिंग मॉल में हुई (किसी सामाजिक स्थल पर अपने किसी पूर्व मरीज़ से भेंट होने की स्थिति में, अधिकतर चिकित्सकों की तरह, मुझे भी बहुत असहज महसूस होता है)।

"कैसी हैं आप?" मैंने पूछा।

"मैं बहुत अच्छी हूँ!" उसने ख़ुश होकर कहा। "पिछले महीने, मैंने और मेरे पूर्व पति ने फिर से शादी कर ली!"

"क्या यह सच है?"

"हाँ, और सबकुछ बहुत अच्छा चल रहा है। संयुक्त संरक्षण के कारण हम लोग मिलते रहते थे। शुरू में थोड़ी मुश्किल हुई... लेकिन तलाक़ के बाद, वह दबाव समाप्त हो गया। हम लोगों को किसी तरह की कोई उम्मीद नहीं थी। फिर हमें लगा कि हम एक-दूसरे को पसंद करते हैं और एक-दूसरे से प्रेम भी करते हैं। हालाँकि चीज़ें हमारे पहले विवाह की तरह तो नहीं हैं लेकिन अब लगता है, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता हम दोनों साथ में बहुत ख़ुश हैं। सबकुछ ठीक लगता है।"

अध्याय 10

दृष्टिकोण में बदलाव

> एक बार एक यूनानी दार्शनिक का शिष्य था जिसे उसके गुरु ने तीन साल तक हर उस व्यक्ति को पैसे देने के लिए कहा जो उसका अपमान करता था। जब परीक्षण की अवधि समाप्त हो गई तो गुरु ने उससे कहा, "अब तुम एथेन्स जाकर ज्ञान प्राप्त कर सकते हो।" जब शिष्य ने एथेन्स में प्रवेश किया तो उसे द्वार पर एक ज्ञानी पुरुष बैठा मिला जो हर आते-जाते व्यक्ति को अपमानित करता था। उसने शिष्य को भी अपमानित किया तो वह शिष्य ज़ोर से हँसा। ज्ञानी पुरुष ने उससे पूछा, "मैं तुम्हारा अपमान कर रहा हूँ तो तुम हँस क्यों रहे हो?" शिष्य ने उत्तर दिया, "क्योंकि मैं इस तरह की बात के लिए लोगों को पैसे देता रहा हूँ और तुम यह मुझे मुफ़्त में दे रहे हो।" "नगर के भीतर प्रवेश करो," ज्ञानी पुरुष ने कहा, "यह नगर तुम्हारा है..."

चौथी शताब्दी में डेज़र्ट फ़ादर्स ने, जो कि सनकी पात्रों का एक संकलन था, स्कीटी के निकट रेगिस्तान में जाकर पूजा और त्याग का जीवन जीते हुए कष्ट एवं परेशानियों के महत्व को दर्शाने वाली यह कथा बताई। हालाँकि वह सिर्फ़ कष्ट नहीं था, उसने शिष्य को "ज्ञान के नगर" में प्रवेश दे दिया। कठिन परिस्थितियों में उतने प्रभावी ढंग से जीने के पीछे दृष्टिकोण में बदलाव लाने की, स्थिति को एक अलग नज़रिए से देखने की उसकी क्षमता मुख्य कारण था।

नज़रिए में बदलाव लाने की क्षमता एक अत्यंत ताकतवर और प्रभावशाली उपकरण है जो हमें जीवन में रोज़मर्रा की परेशानियों से निपटने में मदद करती है। दलाई लामा ने

बताया:

"चीज़ों को अलग नज़रिए से देखने की क्षमता बहुत लाभकारी होती है। इसके अभ्यास से व्यक्ति कुछ अनुभवों, कुछ त्रासदियों की मदद से दिमाग़ को शांत कर सकता है। मनुष्य को समझना चाहिए कि हर बात और हर घटना के विभिन्न पहलू होते हैं। हर चीज़ सापेक्ष होती है। उदाहरण के लिए, मेरे मामले में, मैंने अपना देश खो दिया। उस दृष्टिकोण से यह बहुत दुख की बात है – और इससे भी ज़्यादा दुख की कई बातें हुई हैं। हमारे देश में बहुत तबाही हो रही है। यह अत्यंत नकारात्मक चीज़ है। परंतु अगर मैं इसी बात को अलग नज़रिए से देखूँ तो मुझे लगता है कि एक शरणार्थी होने के दृष्टिकोण से किसी तरह की औपचारिकता, जश्न या नवाचार की ज़रूरत नहीं है। यदि स्थिति यथावत होती, अगर सब कुछ ठीक-ठाक होता तो बहुत-से अवसरों पर आप सिर्फ़ चलते रहते हैं; आप दिखावा करते हैं। परंतु जब आपके सामने निराशाजनक परिस्थितियाँ आती हैं तो दिखावा करने का समय नहीं मिलता। तो उस दृष्टिकोण से वह दुख-भरा अनुभव मेरे लिए बहुत लाभकारी रहा है। शरणार्थी होने के नाते कई नए लोगों से भेंट होने के अवसर मिलते हैं। भिन्न धार्मिक परंपराओं और अलग-अलग व्यवसाय के लोग मिलते हैं जिनसे, यदि मैं अपने देश में रह रहा होता, तो कभी न मिला होता। तो इस नज़र से यह बहुत ज़्यादा लाभदायक रहा है।"

"ऐसा देखने में आता है कि जब कभी समस्याएँ आती हैं तो हमारा दृष्टिकोण संकीर्ण हो जाता है। हमारा पूरा ध्यान उस समस्या के बारे में चिंता करने पर होता है और हमें ऐसा लगता है मानो उस तरह की समस्या सिर्फ़ हमें हो रही है। इससे व्यक्ति अपने आप में डूब जाता है जिसके कारण समस्या और बढ़ जाती है। जब ऐसा होता है, तो मेरे ख़्याल से चीज़ों को अलग नज़रिए से देखने से काफ़ी मदद मिलती है – जैसेः यह सोचना कि ऐसे बहुत-से लोग हैं जिन्होंने इस तरह की समस्या का समना किया है और जिन्हें इससे भी बुरे अनुभव हुए हैं। किसी विशिष्ट बीमारी या पीड़ा के समय इस तरह से अपने दृष्टिकोण को बदलना बहुत लाभकारी हो सकता है। पीड़ा के समय, निश्चित रूप से, दिमाग़ को शांत करने के लिए औपचारिक ध्यान का अभ्यास करना बहुत कठिन होता है। परंतु यदि आप तुलना करें, उस स्थिति को किसी अन्य नज़रिए से देखें तो कैसे भी, कुछ हो ही जाता है। अगर आप सिर्फ़ उस घटना को देखते रहेंगे तो वह और बड़ी लगने लगती है। अगर आप किसी समस्या को बहुत नज़दीक से, बहुत ध्यान से देखने लगेंगे तो वह नियंत्रण से बाहर हो जाती है। लेकिन अगर आप किसी ज़्यादा बड़ी घटना से उसकी तुलना करेंगे तो वह आपको छोटी दिखाई देगी और आपके ऊपर हावी नहीं हो सकेगी।"

दलाई लामा से भेंट से कुछ समय पहले, मैं जहाँ काम करता था, वहाँ के सुविधा प्रशासन अधिकारी से मेरी मुलाकात हो गई। अपने कार्यकाल में मेरी उससे अनेक बार झड़प हुई थी क्योंकि मुझे लगता था कि वह पैसों के लालच में मरीज़ों की देखभाल से समझौता करता था। मैंने उसे बहुत समय से नहीं देखा था लेकिन उसे देखते ही, मुझे उसके साथ हुई सारी पुरानी बातें याद आने लगीं और मुझे अपने मन में उसके प्रति क्रोध और घृणा का भाव

उठता हुआ महसूस होने लगा। उस दिन दलाई लामा से मिलने के लिए जब मुझे भीतर भेजा गया, तब तक मेरा दिमाग़ काफ़ी शांत हो चुका था, किंतु फिर भी, थोड़ी असहजता बनी हुई थी।

"मान लीजिए आपको किसी पर ग़ुस्सा आता है," मैंने बात शुरू की। "आहत होने के बाद स्वाभाविक और तत्काल प्रतिक्रिया ग़ुस्सा आना है। बहुत-से मामलों में, दुख होने के बाद सिर्फ़ ग़ुस्सा आने की बात नहीं है। आप उस घटना के बारे में बाद में सोचते हैं और हर बार उसके विषय में सोचकर आपको ग़ुस्सा आता है। इस तरह की स्थिति से निपटने के लिए आप क्या सुझाव देते हैं?"

दलाई लामा ने सोच-विचार करते हुए हामी भरी और मेरी ओर देखा। मैं सोचने लगा कि क्या उन्हें पता लग गया था कि मैंने इस विषय को सिर्फ़ शैक्षिक कारणों से नहीं उठाया था।

"अगर आप इसे दूसरे दृष्टिकोण से देखें," उन्होंने कहा, "तो जिस व्यक्ति के कारण आपको ग़ुस्सा आता है, उसमें कुछ अच्छी बातें, कुछ गुण भी होंगे। अगर आप ध्यान से देखें तो आप पाएँगे कि जिस बात से आपको ग़ुस्सा आता है, उसी ने आपको कुछ अवसर भी दिए हैं, जो अन्यथा, आपके अपने नज़रिए से मिलने संभव नहीं थे। तो, प्रयास करने से आप एक ही घटना को अलग-अलग दृष्टिकोण से देख सकते हैं। इससे लाभ होता है।"

"परंतु यदि आप उस व्यक्ति की अच्छी बातों को देखना चाहें लेकिन उसमें ऐसा कुछ न हो, तो?"

"यहाँ, मुझे लगता है कि आपको इस परिस्थिति में थोड़ा प्रयास करना पड़ेगा। कुछ समय निकालकर उस परिस्थिति पर किसी अलग नज़रिए से विचार कीजिए। परंतु ऊपरी तौर पर नहीं, बल्कि अत्यंत पैने और प्रत्यक्ष ढंग से। आपको तर्क करने की अपने समस्त सामर्थ्य का उपयोग करके उस स्थिति को, जितना हो सके, निष्पक्ष रूप से देखना होगा। उदाहरण के लिए, आप यह सोचें कि जब आपको किसी व्यक्ति पर ग़ुस्सा आता है तो आपको वह 100 प्रतिशत ग़लत दिखाई देता है। ठीक उसी तरह जब आपको कोई अच्छा लगता है तो उसमें आपको 100 प्रतिशत गुण ही नज़र आते हैं। परंतु यह सोच सच्चाई से मेल नहीं खाती। यदि आपका मित्र, जिसे आप बहुत अच्छा समझते हैं, आपको किसी तरह से हानि पहुँचाने की चेष्टा करे तो अचानक आपको लगेगा आपके मित्र में 100 प्रतिशत अच्छे गुण नहीं हैं। इसी तरह, आपका शत्रु, जिसे आप नापसंद करते हैं, यदि आपसे क्षमा माँगे और अपके साथ अच्छा व्यवहार करे तो शायद आपको वह 100 प्रतिशत बुरा नहीं लगेगा। इसलिए, अगर आप किसी से नाराज़ हैं और आपको लगता है कि उस व्यक्ति में कोई अच्छा गुण नहीं है तो भी सच यह है कि कोई भी व्यक्ति 100 प्रतिशत बुरा नहीं होता। अगर आप कोशिश करें तो आपको उसमें कुछ सद्गुण मिल जाएँगे। किसी को बुरा या नकारात्मक मानने की प्रवृति उस व्यक्ति के असली स्वभाव के कारण नहीं, बल्कि आपकी अपनी मानसिक सोच पर आधारित धारणा के कारण है।"

"इसी तरह जिस परिस्थिति को शुरू में आप 100 प्रतिशत नकारात्मक मान लेते हैं, उसमें भी कुछ सकरात्मक पहलू हो सकता है। परंतु मेरा ख़्याल है कि अगर आपको ख़राब परिस्थिति में कुछ अच्छा मिल भी जाए तो यह काफ़ी नहीं होता। आपको इस विचार को पुष्ट करना चाहिए। आपको स्वयं वह सकारात्मक बात तब तक बार-बार याद दिलानी होगी जब तक आपकी भावना न बदल जाए। सामान्य तौर पर बात करें तो, अगर आपके सामने कोई कठिन परिस्थिति हो, तो किसी विचार को सिर्फ़ एक या दो बार अपनाने से अपने स्वभाव को नहीं बदल सकते। सीखने, प्रशिक्षण लेने और नए दृष्टिकोण से अभ्यस्त होकर ही आप उस कठिन परिस्थिति से बाहर निकल सकते हैं।"

दलाई लामा ने पल भर के लिए सोचा और अपने व्यावहारिक अंदाज़ में बोले, "हालाँकि यदि प्रयास करने के बाद भी आपको उस व्यक्ति के काम में कोई सकारात्मक पहलू या गुण न दिखाई दे तो फिलहाल, उस समय, उस बात को भूल जाना सबसे अच्छा तरीका है।"

दलाई लामा के शब्दों से प्रेरित होकर, उस दिन शाम को मैंने उस प्रशासनिक अधिकारी के कुछ "सकारात्मक पहलुओं" पर विचार किया और उन बातों के बारे में सोचा जहाँ वह "100 प्रतिशत बुरा" नहीं था। यह बहुत मुश्किल काम नहीं था। मैं जानता था कि वह बहुत अच्छा पिता था और वह अपने बच्चों की बहुत अच्छे ढंगे से देखभाल करता था। मुझे यह भी मानना पड़ा कि उसके साथ हुई झड़प से मुझे लाभ हुआ था – उन्हीं के कारण मैं उस जगह को छोड़ने का निर्णय ले पाया जिसके बाद मुझे ज़्यादा संतोषजनक काम मिल गया। हालाँकि इन सब बातों को सोचने से ऐसा नहीं हुआ कि मैं अचानक उस व्यक्ति को पसंद करने लगा, लेकिन उसके लिए घृणा एवं कड़वाहट का भाव मेरे मन से आसानी से चला गया। जल्द ही, दलाई लामा बहुत गूढ़ प्रवचन देने वाले थे: किस तरह शत्रुओं के प्रति अपने व्यवहार को बदलें और उन्हें पसंद करने लगें।

शत्रु के बारे में नया दृष्टिकोण

हमारे शत्रुओं के बारे में हमारे नज़रिए को बदलने के लिए दलाई लामा का प्रमुख तरीका हमारा नुकसान करने वालों के प्रति हमारी परंपरागत प्रतिक्रिया को बदलना है। उन्होंने समझाया:

"हम पहले अपने प्रतिद्वंद्वियों के प्रति अपने व्यवहार का विश्लेषण करते हैं। सामान्य तौर पर, हम अपने शत्रुओं का भला नहीं चाहते। परंतु अगर आपके किसी कार्य से आपका शत्रु दुखी होता है तो इसमें आपके लिए ख़ुश होने की क्या बात है? अगर आप इस बात को ध्यान से सोचें तो इससे बुरा विचार और क्या हो सकता है? अपने मन में बैर और दुर्भावना के बोझ को ढोना। क्या आप सचमुच इतने बुरे बनना चाहते हैं?"

"अगर हम अपने शत्रु से प्रतिशोध लेते हैं तो इससे एक कुचक्र बन जाता है। अगर

आप पलटवार करते हैं तो आपका शत्रु इसे स्वीकार नहीं करेगा – वह भी इसके बदले में आपके ऊपर वार करेगा और फिर आप वही करेंगे और यही चलता रहेगा। जब इस तरह की चीज़ सामुदायिक स्तर पर होती है तो यह शत्रुता पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती है। इसका परिणाम यह होता है कि दोनों ओर के लोगों का नुकसान होता है और जीवन का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। आप इसे शरणार्थी शिविरों में देख सकते हैं जहाँ समूहों में परस्पर घृणा बनी रहती है। यह बचपन से शुरू हो जाता है। यह बहुत दुख की बात है। क्रोध या घृणा मछुआरे के काँटे की तरह है। हमें इस बात के प्रति सजग रहना आवश्यक है कि हम इस काँटे में न फँसे।"

"कुछ लोग मानते हैं कि घृणा का प्रबल भाव राष्ट्रीय हित में है। मुझे यह बात ठीक नहीं लगती। यह बहुत अदूरदर्शी सोच है। अहिंसा और ज्ञान के आधार पर इस तरह की विचारधारा का विरोध किया जा सकता है।"

अपने शत्रु के प्रति अपनी सोच को चुनौती देने के बाद, दलाई लामा ने शत्रु को देखने का एक वैकल्पिक दृष्टिकोण दिखाया, ऐसा नज़रिया जो व्यक्ति के जीवन पर ज़बर्दस्त प्रभाव डाल सकता है। उन्होंने बताया:

"बौद्ध धर्म में, अपने शत्रुओं या प्रतिद्वंद्वियों के प्रति अपने व्यवहार पर काफ़ी ध्यान दिया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि करुणा और ख़ुशी के विकास में घृणा बहुत बड़ी रुकावट बन सकती है। अगर आप अपने शत्रुओं के प्रति धैर्य और सहनशीलता विकसित कर लें तो बाकी सब कुछ आसान हो जाता है – अन्य लोगों के लिए करुणा का भाव अपने आप जागृत हो जाता है।"

"तो, किसी आध्यात्मिक अभ्यास करने वाले व्यक्ति के लिए उसके शत्रु महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मेरे विचार से करुणा आध्यात्मिक जीवन का सार है। जीवन में प्रेमपूर्ण और करुणामयी बनने में सफल होने के लिए धैर्य और सहनशीलता का अभ्यास अनिवार्य है। जिस तरह घृणा करने से बुरा कुछ नहीं है, उसी तरह धैर्य समान गुण कोई नहीं है। इसलिए व्यक्ति को अपने शत्रु के प्रति मन में घृणा नहीं पनपने देनी चाहिए, बल्कि उसके साथ हुए झगड़े को अपने अंदर धैर्य और सहनशीलता बढ़ाने का अवसर मानना चाहिए।"

"वास्तव में धैर्य का अभ्यास करने के लिए शत्रु का होना अनिवार्य शर्त है। शत्रुता के अभाव में धैर्य या सहनशीलता पैदा होने की संभावना ही नहीं है। हमारे मित्र सामान्यतया हमारी परीक्षा नहीं लेते जिसके कारण हमें धैर्य विकसित करने का मौका नहीं मिलता; यह सिर्फ़ हमारे शत्रु कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण से हमारे शत्रु हमारे शिक्षक हैं और हमें इस बात के लिए उनका सम्मान करना चाहिए कि वह हमें धैर्य का अभ्यास करने का मौका देते हैं।"

"संसार में तो बहुत-से लोग हैं लेकिन हम कम लोगों से बात करते हैं और उससे भी कम लोग हमें परेशान करते हैं। इसलिए कभी आपको धैर्य और सहनशीलता का अभ्यास करने का मौका मिले तो आपको इसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। ऐसा बहुत कम होता है। जैसे अचानक अपने ही घर में दबा हुआ खज़ाना मिल जाए, उसी तरह आपको अपने शत्रु के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि उसने आपको यह अवसर दिया। यदि आप धैर्य और

सहनशीलता के अभ्यास में, जो कि नकारात्मक भावनाओं को दूर करने के लिए ज़रूरी हैं, सफल होना चाहते हैं तो यह आपके अपने प्रयासों और शत्रु द्वारा दिए गए अवसर के संयोग से ही संभव है।"

"निश्चित रूप से, व्यक्ति को लग सकता है, 'मैं अपने शत्रु का आदर क्यों करूँ या उसके योगदान को क्यों मानूँ क्योंकि मेरे शत्रु का इरादा मुझे धैर्य और सहनशीलता का अभ्यास करवाने के लिए मौका देना या मेरी मदद करना नहीं था? वैसे भी उसकी मंशा मेरी सहायता करने की नहीं, बल्कि मेरा नुकसान करने की है! इसलिए उनसे घृणा करना ही ठीक है – वह निश्चित ही आदर के योग्य नहीं हैं।' दरअसल, शत्रु का घृणा से भरा दिमाग़ और हमें कष्ट पहुँचाने का इरादा ही शत्रु को विशिष्ट बनाता है। अन्यथा यदि सिर्फ़ पीड़ा पहुँचाने की बात होती तो हम डॉक्टरों से घृणा करते और उन्हें भी अपना शत्रु मानते क्योंकि वह कभी-कभी इलाज के दौरान सर्जरी जैसे अनेक तरीके अपनाते हैं जिनसे हमें दर्द होता है। परंतु हम फिर भी उनके काम को हानिकारक नहीं मानते या उन्हें शत्रु नहीं समझते क्योंकि डॉक्टर का इरादा हमें लाभ पहुँचाने का था। इसलिए, जान-बूझकर नुकसान पहुँचाने का इरादा ही शत्रु को विशिष्ट बनाता है और हमें धैर्य का अभ्यास करने का अवसर प्रदान करता है।"

दलाई लामा का यह सुझाव कि हमें अपने शत्रु का आदर करना चाहिए क्योंकि वह हमें विकास के अवसर देता है, शुरू में गले से नहीं उतरता। परंतु यह स्थिति वैसी ही है जब कोई व्यक्ति वज़न उठाकर अपने शरीर को गठीला और मज़बूत बनाने की कोशिश करता है। शुरू में वज़न उठाना मुश्किल महसूस होता है – वज़न भारी लगता है। व्यक्ति मेहनत करता है, पसीना बहाता है और संघर्ष करता है। परंतु प्रतिरोध के विरुद्ध संघर्ष ही हमारी असली ताकत है। व्यक्ति वज़नदार उपकरणों को उनके द्वारा दिए गए तत्काल आनंद के कारण नहीं, बल्कि उस लाभ के कारण पसंद करता है जो उसे अंत में मिलता है।

शायद शत्रु की "विरलता" और "बहुमूल्यता" के बारे में दलाई लामा के दावे मज़ेदार बौद्धिकता से अधिक गूढ़ हैं। जब मैं अपने मरीज़ों को अपनी परेशानियों के बार में दूसरों से बात करते सुनता हूँ तो यह स्पष्ट हो जाता है – जब सिर पर आ पड़ती है तो कम-से-कम निजी स्तर पर लोगों के शत्रु या विरोधी की सेना नहीं होती। सामान्य तौर पर झगड़ा कुछ ही लोगों के बीच सीमित होता है। शायद बॉस, सहकर्मी, पूर्व-जीवनसाथी या भाई-बहन आदि। उस दृष्टिकोण से शत्रु सचमुच "विरला" होता है – हमारी आपूर्ति ही सीमित होती है। इस संघर्ष को निपटाने या शत्रु के साथ झगड़े को सुलझाने की यही प्रक्रिया – सीखकर, जाँच करके, उनसे निपटने के विकल्प खोजकर – सच्चा विकास, ज्ञान और मनोचिकित्सा के सफल परिणाम दिलाती है।

कल्पना कीजिए कैसा लगेगा यदि हमें जीवन में कभी किसी शत्रु या बाधा का सामना न करना पड़े, यदि जन्म से लेकर मृत्यु तक सब हमसे बहुत प्यार करें, हमारी देखभाल करें और अपने हाथ से हमें (नर्म, तरल भोजन) खिलाएँ, हमें तरह-तरह के चेहरे बनाकर और

"गूँ-गूँ" की आवाज़ करके हँसाए। यदि हमें बचपन से ही गोद में घुमाया जाए और हमें कभी किसी चुनौती का, परीक्षा का सामना न करना पड़े – संक्षेप में, यदि हर कोई हमारे साथ बच्चे की तरह व्यवहार करे। यह शुरू में शायद सुनने में अच्छा लगे। जीवन के शुरू के कुछ सालों में यह उचित हो सकता है। परंतु यदि यही सिलसिला चलता रहे तो इससे व्यक्ति जिलेटिन का लौंदा बन जाएगा और उसकी ज़िन्दगी एक डरावना सच – वह मानसिक व भावनात्मक रूप से बछड़े के माँस जैसा हो जाएगा। जीवन का संघर्ष ही हमें वह बनाता है जो हम वास्तव में हैं। हमारे शत्रु ही हमारी परीक्षा लेते हैं और हमें प्रतिरोध प्रदान करते हैं जो विकास के लिए ज़रूरी है।

क्या आपका रवैया व्यावहारिक है?

अपनी समस्याओं को तर्क से सुलझाने का अभ्यास तथा परेशानियों या अपने शत्रुओं को वैकल्पिक नज़रिए से देखने की समझ निश्चित रूप से सीखने योग्य है, लेकिन मैं यह सोचने लगा कि इससे किस हद तक हमारे व्यवहार में मूलभूत परिवर्तन आ सकता है। मैंने एक बार एक इंटरव्यू में पढ़ा था कि दलाई लामा के रोज़ के आध्यात्मिक अभ्यास के दौरान वह एक प्रार्थना पढ़ते हैं, मस्तिष्क के प्रशिक्षण से संबंधित आठ छंद, जिसे लांगरी थांग्पा नाम के तिब्बती संत ने ग्यारहवीं शताब्दी में लिखा था। यह कुछ इस तरह से है:

> जब भी मैं किसी से मिलूँ, मैं मन में स्वयं को सबसे निम्न और सामने वाले को सबसे श्रेष्ठ मानूँ!...
>
> जब मैं हिंसक पाप और अधर्मी दुष्टों से मिलूँ, मैं इन्हें प्रिय समझूँ मानो मुझे कोई खज़ाना मिल गया हो!...
>
> जब लोग ईर्ष्यावश मुझसे दुर्व्यवहार करें, मेरी निंदा आदि करें, मैं पराजय लूँ और दूसरों को विजय प्रदान करूँ!...
>
> जब कोई, जिसकी मैंने मदद की है, मुझे बुरी तरह चोट पहुँचाए, मैं उसे अपना सर्वश्रेष्ठ गुरु समझूँ!...
>
> संक्षेप में, मैं प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से, सभी को लाभ और ख़ुशी प्रदान करूँ, मैं गुप्त रूप से सभी के कष्ट व परेशानियों को अपने ऊपर ले लूँ!...

मैंने जब इसके बारे में पढ़ा तो मैंने दलाई लामा से पूछा, "मैं जानता हूँ कि आपने इस प्रार्थना पर बहुत चिंतन किया है, लेकिन क्या आपको लगता है कि यह आज के संदर्भ में लागू होती है? मेरा मतलब है कि यह किसी भिक्षु द्वारा मठ में रहते हुए लिखी गई थी – जहाँ ज़्यादा से ज़्यादा कोई आपकी निंदा कर देगा या आपके विषय में झूठ बोल देगा अथवा शायद कोई किसी को थप्पड़ मार देगा। ऐसी स्थिति में 'विजय प्रदान करना' सरल हो सकता है – परंतु

आज के समाज में 'चोट' या दुर्व्यवहार के नाम पर बलात्कार, यातना, हत्या आदि कुछ भी हो सकता है। उस दृष्टिकोण से, प्रार्थना का रुख सही प्रतीत नहीं होता।" मुझे आत्मसंतोष हो रहा था क्योंकि मुझे लगा जैसे मैंने बड़ी सही, सुभाषित बात कह दी थी।

दलाई लामा कुछ देर के लिए चुप हो गए, उनकी भँवें चिंतन में डूब गईं। फिर वह बोले, "आपकी बात में कुछ तथ्य हो सकता है।" उसके बाद उन्होंने कुछ किस्से बताए जहाँ उस रुख में कुछ बदलाव की ज़रूरत थी, जहाँ व्यक्ति को सामने वाले के क्रोध और नुकसान से बचने के लिए कुछ कदम उठाने पड़ सकते हैं।"

उस दिन शाम को मैं उस संवाद के बारे में सोचने लगा। दो बातें बहुत साफ़ हो गईं। पहली, मैं उनके अपने ही मतों और सिद्धांतों पर पुनर्विचार करने की उनकी असाधारण तत्परता को देखकर हैरान था – इस संदर्भ में, वह अपनी पसंद की प्रार्थना का फिर से आकलन करने के लिए उत्सुक थे जो इतने वर्षों की पुनरावृत्ति के बाद उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बन चुकी थी। दूसरी बात निराशाजनक थी। मेरा घमंड मुझ पर हावी हो रहा था! मुझे महसूस हुआ कि मैंने उन्हें यह कह दिया था कि प्रार्थना शायद ठीक नहीं थी क्योंकि वह आज की दुनिया की सच्चाई से मेल नहीं खाती थी। मुझे जल्द ही यह एहसास हो गया कि मैं किससे बात कर रहा था – ऐसा व्यक्ति जो इतिहास के सबसे नृशंस आक्रमण में अपना देश गँवा चुका था। ऐसा व्यक्ति जिसने चार दशक अज्ञातवास में बिताए थे जबकि समस्त देश की आशाएँ और सपने उसके ऊपर टिके थे। ऐसा व्यक्ति जिसमें निजी उत्तरदायित्व का गहन भाव था जिसने करुणापूर्वक शरणार्थियों से चीनी लोगों के हाथों तिब्बतियों की हत्या, बलात्कार, यातना और अपमान के अनगिनत किस्से सुने थे। मैंने अनेक बार उनके चेहरे पर असीमित दया और उदासी के भाव देखे थे, जब सिर्फ़ उनकी एक झलक पाने को हिमालय से पैदल चलकर आए (दो साल की यात्रा) लोग उन्हें ये किस्से सुनाते थे।

ये किस्से सिर्फ़ शारीरिक हिंसा के नहीं थे। बहुत-से ऐसे थे जिनमें तिब्बतियों की आत्मा को नष्ट करने का प्रयास किया गया था। एक तिब्बती शरणार्थी ने मुझे चीनी "स्कूल" के बारे में बताया जहाँ उसे पढ़ने जाना पड़ता था। सुबह के समय वहाँ के अध्यक्ष माओ की "छोटी लाल किताब" पढ़ाई जाती थी। दोपहर के समय विभिन्न तरह के गृहकार्य करने के लिए दिए जाते थे। यह "गृहकार्य" सामान्यतया तिब्बती लोगों के अंदर से बौद्ध धर्म की अंतस्थ आत्मा को समाप्त करने के इरादे से दिया जाता था। उदाहरण के लिए, यह जानते हुए कि बौद्ध धर्म में हत्या की मनाही है और प्रत्येक जीव को "चैतन्य प्राणी" माना जाता है, एक शिक्षक बच्चों को प्रतिदिन कुछ मारकर अगले दिन स्कूल लाने के लिए कहता था। इसी आधार पर बच्चों को ग्रेड दिए जाते थे। हर मृत प्राणी के लिए कुछ अंक निर्धारित थे – मक्खी को एक अंक, कीड़े को दो, चूहे को पाँच, बिल्ली को दस आदि। (जब मैंने यह बात अपने एक मित्र को बताई तो उसने घृणापूर्वक कहा, "मैं सोच रहा हूँ कि उस बेवकूफ़ शिक्षक को मारने पर कितने अंक मिलते?")

मस्तिष्क के प्रशिक्षण से संबंधित आठ छंद प्रार्थना को पढ़ने से, दलाई लामा सच्चाई के साथ तालमेल बैठा पाए हैं और चालीस सालों से वह तिब्बत में प्रभावी ढंग से आज़ादी

और मानवाधिकार की लड़ाई लड़ रहे हैं। इसी के साथ वह चीन के लोगों के प्रति विनम्रता और दया का भाव भी बनाए रखते हैं जिसने विश्वभर में लाखों लोगों को प्रेरित किया है। और मैं उन्हें यह सुझाव दे रहा था कि उनकी वह प्रार्थना आज की दुनिया की "सच्चाई" के अनुरूप नहीं थी। आज भी उस संवाद को याद करके मुझे अपने ऊपर शर्म आती है।

नए दृष्टिकोण की खोज

"शत्रु" के बारे में अपना नज़रिए बदलने के लिए दलाई लामा के तरीके को अपनाते समय, एक दिन दोपहर में मेरा परिचय एक नई तकनीक से हुआ। इस पुस्तक को तैयार करने के दौरान, मैंने ईस्ट कोस्ट में दलाई लामा के कुछ प्रवचन सुने थे। घर लौटते समय मैंने सीधे फ़ीनिक्स तक हवाई सफर किया था। हमेशा की तरह मैंने वीथिका वाली सीट चुनी थी। आध्यात्मिक प्रवचन सुनने के बावजूद, मैं जब उस भरे हुए हवाई जहाज़ में चढ़ा तो उस समय मेरा मिज़ाज़ कुछ ठीक नहीं था। मुझे तब पता लगा कि मुझे ग़लती से बीच की सीट दे दी गई थी और मैं दो लोगों के बीच में फँस गया था – एक तरफ़ एक मोटा आदमी था जिसके अंदर मेरी तरफ़ वाले हत्थे पर अपना भारी-भरकम हाथ टिकाने की बुरी आदत थी और दूसरी तरफ़ एक अधेड़ महिला बैठी थी जो मुझे इसलिए पसंद नहीं आ रही थी क्योंकि उसने मुझसे मेरी वीथिका वाली सीट छीन ली थी। उस महिला में कुछ ऐसा था जो मुझे परेशान कर रहा था – उसकी आवाज़ कुछ कर्कश थी और उसका व्यवहार, शायद कुछ शाही किस्म का था। जहाज़ के उड़ते ही वह अपने आगे वाली सीट पर बैठे व्यक्ति से लगातार बोलती जा रही थी। वह व्यक्ति उसका पति था और मैंने "बहादुरी" दिखाते हुए उसे अपनी सीट देनी चाही। परंतु वह तैयार नहीं हुआ – उन दोनों को बाहर वाली सीट ही चाहिए थी। मैं और परेशान हो गया। उस महिला के बगल में पाँच घंटे बैठना मुझे असहनीय प्रतीत हो रहा था।

मैं सोचने लगा कि जिस महिला को मैं जानता तक नहीं, उसके प्रति इतना ग़ुस्सा आने का अर्थ यह है कि मेरे भीतर "अंतरण" चल रहा होगा – वह अवश्य ही मुझे बचपन के किसी व्यक्ति की याद दिला रही थी – जैसे अपनी माँ के प्रति मेरे मन में द्वेष का भाव जो दूर नहीं हो पाया था, आदि। मैंने दिमाग़ पर बहुत ज़ोर डाला लेकिन किसी संभावित व्यक्ति के बारे में सोच नहीं सका – वह मुझे किसी से मिलती-जुलती नहीं लग रही थी।

तभी मुझे एहसास हुआ कि धैर्य का अभ्यास करने का यह बढ़िया अवसर था। तो मैंने कल्पना की कि मेरा शत्रु वीथिका वाली सीट पर बैठा हुआ है और मुझे धैर्य व सहनशीलता का अभ्यास करवा रहा है। मुझे लगा यही मौका था – आख़िरकार, हमारे "शत्रु" इससे ज़्यादा विनम्र नहीं हो सकते – मैं अभी इस महिला से मिला था और इसने अभी तक मेरा कोई नुकसान नहीं किया है। लगभग बीस मिनट बाद, मैं थक गया – वह मुझे अब भी परेशान कर रही थी! मैंने यह मान लिया कि मुझे बाकी का समय ऐसे ही तंग होते हुए काटना पड़ेगा। मैं दुखी था और फिर मैंने देखा कि उसका एक हाथ चुपचाप मेरी सीट के

हत्थे की ओर बढ़ रहा था। मुझे उस महिला की हर बात बुरी लग रही थी। मैं खोया हुआ उसके नाखून को देख रहा था कि तभी मुझे एहसास हुआ: क्या मैं उसके नाखून से घृणा करता हूँ? नहीं। वह एक साधारण किस्म का नाखून है। उसमें कोई विशेष बात नहीं है। फिर मैंने उसकी आँखों की तरफ़ देखा और खुद से पूछा: क्या मुझे इसकी आँखें नापसंद है? हाँ, मुझे वह नापसंद है। (निश्चित तौर पर, उसका कोई कारण नहीं था – जो कि घृणा का सबसे शुद्ध रूप है)। मैंने उसे और ध्यान से देखा। क्या मुझे आँख की पुतली नापसंद है? नहीं। क्या मुझे उसका कॉर्निया, उसका आइरिस या स्कलेरा नापसंद है? नहीं। क्या मुझे सचमुच आँख नापसंद है? मुझे यह मानना पड़ा कि ऐसा कुछ नहीं था। मेरे दिमाग़ में कुछ चल रहा था। मैं उसके उँगली की गाँठें, उसकी उँगली, जबड़ा, कुहनी देखने लगा। मुझे आश्चर्य हुआ कि उस महिला के शरीर के हिस्सों से मुझे कोई परेशानी नहीं थी। सामान्य ढंग से देखने के बजाय, थोड़ा ध्यान से देखने और चीज़ों पर गौर करने पर मेरे अंदर बदलाव आ रहा था। नज़रिए में आए इस बदलाव ने मेरे पूर्वाग्रह को तोड़ दिया और फिर मैं उसे एक मनुष्य की तरह देखने लगा। मैं यह सब महसूस कर ही रहा था कि वह अचानक मेरी ओर मुड़ी और मुझसे बात करने लगी। मुझे याद नहीं कि हमने क्या बात की – वह अधिकतर संक्षेप में थी – लेकिन यात्रा समाप्त होने तक मेरा ग़ुस्सा और परेशानी दूर हो चुके थे। मानता हूँ कि वह मेरी मित्र नहीं बन गई थी लेकिन अब वह वीथिका सीट छीनने वाली दुष्ट शत्रु भी नहीं थी – वह अब मेरे जैसी, एक आम इंसान थी जो अपनी तरफ़ से बेहतरीन जीवन जी रही थी।

लचीला मस्तिष्क

अपने नज़रिए में बदलाव लाने की क्षमता, अपनी समस्या को "विभिन्न दृष्टिकोणों" से देखने का सामर्थ्य मस्तिष्क के लचीलेपन द्वारा संभव होता है। लचीले दिमाग़ का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह जीवन को गले लगाकर – पूरी तरह जीवंत और मनुष्य होने की छूट देता है। एक दिन टक्सन में दोपहर की लंबी सार्वजनिक वार्ता के बाद, दलाई लामा अपने होटल के कमरे में लौट गए। जब वह धीरे-धीरे कमरे की ओर जा रहे थे, तो मजेंटा रंग के बारिश वाले बादल आकाश में छा गए और दोपहर की रोशनी को ढँक लिया जिससे कैटेलीना पर्वत को बड़ी राहत मिली तथा समूचा परिदृश्य बैंगनी रंग की विशाल पट्टी में बदल गया। यह बहुत शानदार दिखाई दे रहा था। रेगिस्तान के पौधों की ख़ुशबू और नमी से भरी गर्म और बेचैन हवा का झोंका बहने लगा जो सोनोरन तूफ़ान के आने का संकेत था। दलाई लामा रुक गए। कुछ पल वह चुपचाप क्षितिज की ओर देखते रहे, और उस दृश्य को आत्मसात करते हुए उन्होंने उसकी सुंदरता पर कुछ कहा। वह कुछ कदम चले, फिर रुक गए और एक छोटे-से गमले में उगे चमेली की कली को निहारने लगे। उन्होंने उसे धीरे से छुआ, महसूस किया और ज़ोर से उस पौधे का नाम लिया। मैं उनके मस्तिष्क के काम करने के तरीके को देखकर हैरान रह गया। उनकी चेतना समूचे परिदृश्य को देखने के बाद उस छोटी-सी कली पर ठहर गई थी। वातावरण की समग्रता के साथ-साथ, छोटी-से छोटी बात पर भी उनका ध्यान था।

उनमें जीवन के सभी पहलुओं और संपूर्ण बिंब को समेटने की क्षमता थी।

हम सभी दिमाग़ का यह लचीलापन विकसित कर सकते हैं। इसके लिए हमें अपने नज़रिए को विस्तार देकर जान-बूझकर नए दृष्टिकोण खोजने का प्रयास करना चाहिए। इसका परिणाम यह होता है कि हम एक ही समय पर बड़ी बातों के साथ व्यक्तिगत परिस्थितियों के प्रति भी सजग रह सकते हैं। यह दोहरा दृष्टिकोण, यानि "बड़े जगत" और अपने "छोटे संसार" को लेकर हमारा वर्तमान नज़रिया, एक तरह से आपातकाल में कार्यवाही की प्राथमिकता के निर्धारण जैसा काम करता है, जिसकी सहायता से हम जीवन की आवश्यक तथा अनावश्यक चीज़ों को अलग-अलग कर सकते हैं।

मेरे अपने मामले में, दलाई लामा के साथ हुई बातचीत के दौरान उनके द्वारा मुझे थोड़ा-सा उकसाने के बाद मैं अपने सीमित नज़रिए से बाहर निकल गया था। अपने स्वभाव और प्रशिक्षण के चलते, मैं हमेशा समस्याओं को व्यक्तिगत गतिशीलता – पूरी तरह मस्तिष्क के दायरे में होने वाली मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं – के दृष्टिकोण से देखता रहा हूँ। मेरी सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोणों में कभी रुचि नहीं रही। मैंने दलाई लामा के साथ एक बार चर्चा के दौरान उनसे विस्तृत नज़रिया होने के महत्त्व के बारे में पूछा। उससे पहले कई प्याली कॉफ़ी पीने के बाद मेरी बातचीत जीवंत होने लगी और मैं दृष्टिकोण को आंतरिक प्रक्रिया, एकाकी खोज के रूप में बदलने की क्षमता के विषय में बोलने लगा जो पूरी तरह व्यक्ति द्वारा एक भिन्न नज़रिया अपनाने पर आधारित थी।

मेरी उत्साहित बातचीत के बीच, दलाई लामा ने मुझे टोका और याद दिलाया, "जब तुम व्यापक दृष्टिकोण अपनाने की बात करते हो तो इसमें लोगों के साथ मिल-जुलकर काम करना भी शामिल है। जैसे: जब आपके सामने वातावरण या आर्थिक ढाँचे संबंधी वैश्विक स्तर के संकट पैदा होते हैं तो इसके लिए बहुत-से लोगों के बीच जिम्मेदारी और प्रतिबद्धता समेत समन्वित एवं सहमतिपूर्ण प्रयास की आवश्यकता होती है। यह व्यक्तिगत या निजी मामले से कहीं अधिक व्यापक होता है।"

मुझे खीज आ रही थी कि मैं व्यक्तिगत मामले पर ध्यान देना चाहता था, लेकिन वे वैश्विक मसलों को बीच में ला रहे थे (और मुझे यह कहते हुए शर्म महसूस हो रही है कि व्यक्ति के नज़रिए को विस्तृत करने के मुद्दे पर इस तरह का रवैया!)।

"परंतु इस सप्ताह," मैंने ज़ोर देते हुए कहा, "हमारे संवाद और आपके सार्वजनिक भाषणों में आपने भीतरी बदलाव के ज़रिए अंदर से निजी बदलाव लाने के महत्त्व पर काफ़ी बोला है। उदाहरण के लिए आपने करुणा विकसित करने, दयालु हृदय होने, ग़ुस्से और घृणा पर काबू पाने तथा धैर्य व सहनशीलता को विकसित करने के महत्त्व पर भी बात की है..."

"हाँ। निश्चित तौर पर, बदलाव मनुष्य के भीतर से आना चाहिए। परंतु जब आप वैश्विक समस्याओं के सामधान खोज रहे होते हैं तो आपको इन समस्याओं का समाधान व्यक्ति और साथ ही, समाज के दृष्टिकोण से खोजना चाहिए। तो, जब आप लचीला होने,

व्यापक नज़रिया रखने आदि की बात करते हैं तो इसके लिए आपको अनेक स्तरों पर समस्याओं को समझना पड़ता है: व्यक्तिगत स्तर, सामुदायिक स्तर और वैश्विक स्तर पर।"

"अब, जैसे एक दिन शाम को मैंने युनिवर्सिटी में अपने भाषण में धैर्य एवं सहनशीलता के द्वारा क्रोध और घृणा को कम करने के विषय में बात की। घृणा कम करना आंतरिक निरस्त्रीकरण जैसा है। परंतु जैसा कि मैंने उस वार्ता भाषण में यह भी कहा कि आंतरिक निरस्त्रीकरण बाहरी निरस्त्रीकरण के साथ मिलकर होना चाहिए। मेरे विचार से यह बहुत ही ज़रूरी है। सौभाग्य से, सोवियत शासन के गिर जाने के बाद, कम-से-कम फिलहाल परमाणु विध्वंस का खतरा नहीं है। तो मुझे लगता है कि यह बहुत अच्छा समय है, बहुत अच्छी शुरुआत है – हमें यह समय गँवाना नहीं चाहिए! हमें शांति की असली ताकत को मज़बूत करना चाहिए। वास्तविक शांति – सिर्फ़ हिंसा या युद्ध का न होना नहीं है। सिर्फ़ परमाणु निवारक हथियारों के सहारे ही युद्ध को रोका जा सकता है। परंतु सिर्फ़ युद्ध का रुक जाना सच्ची व स्थायी शांति नहीं है। शांति के लिए आपसी भरोसा ज़रूरी होता है। चूंकि आपसी विश्वास के विकास में हथियार सबसे बड़ी बाधा हैं, मेरे विचार से समय आ गया है जब हमें इन हथियारों से मुक्ति पाने का तरीका सोचना चाहिए। यह बहुत ज़रूरी है। निश्चय ही, यह एक रात में नहीं हो सकता। धीरे-धीरे इस ओर बढ़ना ही इसका व्यावहारिक तरीका है। खैर, हमें अपना लक्ष्य स्पष्ट कर देना चाहिए। समूचे विश्व को सेना-मुक्त करने की आवश्यकता है। तो, एक स्तर पर हमें आंतरिक शांति विकसित करने का प्रयास करना चाहिए, परंतु इसी के साथ, बाहरी निरस्त्रीकरण और शांति के लिए यथासंभव प्रयास करना बहुत ज़रूरी है। यह हमारा उत्तरदायित्व है।"

लचीली विचारधारा का महत्त्व

लचीले दिमाग़ और दृष्टिकोण बदलने की क्षमता के बीच पारस्परिक संबंध है। लचीला और नर्म दिमाग़ हमें समस्याओं को अलग-अलग नज़रियों से देखने में मदद करता है और इसके विपरीत, जान-बूझकर अपनी समस्याओं को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखना दिमाग़ के लचीलेपन के लिए अच्छा अभ्यास है। आज की दुनिया में अपनी सोच को लचीला बनाने की कोशिश सिर्फ़ निकम्मे बुद्धिजीवियों का खुद में खोए रहने का काम नहीं है – यह जीने का प्रश्न बन चुका है। विकास के स्तर पर भी, जो प्रजातियाँ सबसे लचीली हैं और जिन्होंने वातावरण के अनुसार खुद को ढाल लिया है, वही जीवित रह पाई हैं। आधुनिक समय में जीवन में अचानक, अप्रत्याशित और हिंसक बदलाव हो जाते हैं। लचीला दिमाग़ हमारे आसपास होने वाले बाहरी बदलावों के अनुसार खुद को ढाल लेता है। यह हमारे आंतरिक झगड़ों, अनियमितताओं और द्वैध वृत्ति को भी समन्वित करने में सहायता करता है। अपने दिमाग़ को लचीला बनाए बिना हमारा नज़रिया भंगुर हो जाता है और संसार के साथ हमारे संबंध में डर समा जाता है। परंतु लचीला दृष्टिकोण और नर्म तरीका अपनाने से हम अत्यंत अशांत और उग्र परिस्थितियों में भी शांत रह सकते हैं। दिमाग़ को लचीला बनाने के प्रयास

के द्वारा ही हम मनुष्य की आत्मा में लचीलापन पैदा कर सकते हैं।

दलाई लामा को जानने के बाद मैं उनके लचीलेपन और अनेक दृष्टिकोणों को एक साथ लेकर चलने की उनकी क्षमता को देखकर हैरान रह गया। व्यक्ति उनसे यही आशा करता है कि विश्व के सबसे विख्यात बौद्ध धर्मी के रूप में वे बौद्ध धर्म के रक्षक हैं।

इस बात को ध्यान में रखते हुए, मैंने उनसे पूछा, "क्या आपको कभी अपना दृष्टिकोण अत्यंत कठोर या अपनी विचारधारा संकीर्ण लगती है?"

"हम्म्म..." उत्तर देने से पहले उन्होंने सोचते हुए कहा, "नहीं, मुझे ऐसा नहीं लगता। दरअसल, बात इसके विपरीत है। कभी-कभी मैं इतना लचीला हो जाता हूँ कि मुझ पर एक-सी नीति न अपनाने का आरोप भी लगता है।" वह ज़ोर से हँस पड़े। "कोई मेरे पास आकर कुछ सुझाव देता है तो मैं उसकी बात में कारण खोजूँगा और फिर उससे सहमत होकर कहूँगा, 'ओह, यह बहुत बढ़िया है!'... लेकिन तभी अगला व्यक्ति आकर उससे विपरीत बात कहता है, फिर मैं उसकी बात पर विचार करता हूँ और उनसे भी सहमत हो जाता हूँ। इसके लिए कई बार मेरी निंदा होती है और मुझे याद दिलाया जाता है, 'हम इस मार्ग पर चलने के लिए प्रतिबद्ध हैं, इसलिए फिलहाल हमें यही पक्ष लेना चाहिए।'"

इस वक्तव्य से यह छवि बन सकती है कि दलाई लामा निर्णय नहीं ले पाते और उनका कोई मार्गदर्शक सिद्धांत नहीं है। वास्तव में, यह बिल्कुल ग़लत बात है। दलाई लामा की मूल मान्यताएँ हैं जो उनके सभी कार्यों का सार हैं: सभी मनुष्यों की अच्छाई में विश्वास। करुणा के महत्त्व में भरोसा। दया की नीति। समस्त प्राणियों के प्रति समानता का भाव।

लचीला, नर्म और अनूकूलनीय होने के महत्त्व के विषय में बात करने से मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि हम गिरगिट जैसे हो जाएँ – अपने आस-पास के किसी भी मत या विश्वास को सोख लें, अपनी पहचान बदल लें और सामने आने वाले किसी भी विचार को अपना लें। विकास की उच्च अवस्थाएँ हमारे अपने मार्गदर्शक सिद्धांतों पर निर्भर करती हैं। हमारे अपने मूल्य होने चाहिए जो हमें जीवन में निरंतरता और सुसंगति प्रदान कर सकें, जिनके आधार पर हम अपने अनुभव माप सकते हैं। ऐसे मूल्य जो हमें यह बता सकें कि हमारे कौन-से लक्ष्य सचमुच उपयुक्त और कौन-से बेकार हैं।

प्रश्न यह है कि हम लगातार इन मूल्यों के साथ मज़बूती से रहते हुए भी लचीले कैसे बन सकते हैं? इसके लिए दलाई लामा ने अपने मूल्यों को घटाकर कुछ मूल तथ्यों तक सीमित कर लिया है: 1. मैं एक मनुष्य हूँ। 2. मैं ख़ुश रहना चाहता हूँ और मैं कष्ट नहीं भोगना चाहता। 3. मेरी तरह दूसरे लोग भी ख़ुश रहना चाहते हैं और कष्ट नहीं भोगना चाहते। दूसरों से असमान बातों के बजाय, समान बातों पर ज़ोर देने से अन्य मनुष्यों के साथ जुड़ने का भाव पैदा होता है और इससे करुणा एवं परोपकार के मूल्य में उनका विश्वास उत्पन्न होता है। इसी तरीके का प्रयोग करके अपने मूल्यों पर विचार करने तथा उन्हें घटाकर कुछ मूल सिद्धांतों तक ले आना बहुत लाभदायक हो सकता है। अपने मूल्यों को घटाकर

उन्हें मूल तत्वों तक लाने और फिर उस लाभ के साथ जीने की क्षमता ही हमें सबसे बड़ी आज़ादी और लचीलापन प्रदान करती है जिसकी सहायता से हम रोज़ की अपनी अनेक समस्याओं को सुलझाते हैं।

संतुलन

जीवन में लचीला व्यवहार विकसित करना सिर्फ़ रोज़ की समस्याओं को सुलझाने में ही उपयोगी नहीं होता, वह ख़ुशहाल जीवन के महत्त्वपूर्ण तत्त्व – संतुलन – का आधार भी बन जाता है।

एक दिन सुबह अपनी कुर्सी पर आराम से बैठते हुए दलाई लामा संतुलन का महत्त्व समझा रहे थे।

"जीवन को संतुलन और कुशलता से जीना, चरम सीमाओं तक न जाना, व्यक्ति के प्रतिदिन के व्यवहार के लिए बहुत आवश्यक है। यह जीवन के सभी पहलुओं में ज़रूरी है। उदाहरण के लिए, जब आप एक पौधा रोपते हैं तो आपको यह काम बहुत कुशलता और आराम से करना पड़ता है क्योंकि वह बहुत कोमल होता है। अधिक पानी से वह मर सकता है, ज़्यादा धूप से वह नष्ट हो सकता है। बहुत कम से भी ख़राब हो जाएगा। इसलिए उसके स्वस्थ विकास के लिए संतुलित वातावरण ज़रूरी है। व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य के लिए किसी भी चीज़ की अधिकता या कमी उसे नष्ट कर सकती है। जैसे: ज़रूरत से ज़्यादा और आवश्यकता से कम प्रोटीन, दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।"

"यह कोमल और कुशल तरीका और चरम से बचना स्वस्थ मानसिक एवं भावनात्मक विकास पर भी लागू होता है। उदाहरण के लिए, यदि हमारे अंदर घमंड आ जाए, हम अपनी उपलब्धियों या गुणों के आधार पर स्वयं को ज़्यादा महत्त्व देने लगें तो उससे बचने का तरीका यह है कि अपनी समस्याओं या कष्टों के बारे में सोचें और जीवन के असंतुष्ट पहलुओं पर विचार करें। इससे आपको अपने मस्तिष्क की उत्तेजना को कम करने में मदद मिलेगी और आप ज़्यादा व्यावहारिक हो जाएँगे। इसके विपरीत अगर आपको ऐसा लगे कि जीवन के असंतुष्ट पहलुओं, कष्ट या पीड़ाओं पर विचार करने से वह आपके ऊपर हावी हो रही हैं तो इसमें भी ख़तरा है। इसके कारण आप पूरी तरह हताश और असहाय हो सकते हैं और आपके मन में यह विचार आ सकता है कि, 'ओह, मैं कुछ नहीं कर सकता, मैं बिल्कुल बेकार हूँ!' ऐसी परिस्थितियों में यह ज़रूरी है कि आप अपनी उपलब्धियों, अपनी उन्नति और अपने सद्गुणों के बारे में सोचकर अपने मनोबल को बढ़ाएँ ताकि आपका दिमाग़ उत्साहित होकर निराश व हतोत्साहित अवस्था से बाहर निकल आएँ। यहाँ बहुत कुशल और संतुलित ढंग से जीने की ज़रूरत है।"

"यह तरीका न सिर्फ़ व्यक्ति के शारीरिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है, बल्कि यह आध्यात्मिक उत्थान में भी सहायक है। उदाहरण के लिए, बौद्ध परंपरा में अनेक तकनीक व अभ्यास कराए जाते हैं। परंतु इन तकनीकों के प्रयोग में व्यक्ति को

बहुत कुशलता से काम लेना होता है। यहाँ भी कुशल और संतुलित ढंग से काम करने की आवश्यकता होती है। बौद्ध धर्म का अभ्यास करते समय समेकित ढंग अपनाना ज़रूरी है जिसमें अध्ययन और सीखने को चिंतन और ध्यान के अभ्यास के साथ जोड़ा जाता है। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि इससे शैक्षणिक या बौद्धिक शिक्षा एवं व्यावहारिक प्रयोग के बीच असंतुलन न हो जाए। अन्यथा अत्यधिक शिक्षा द्वारा चिंतन के अभ्यास के नष्ट होने का खतरा हो जाता है। परंतु अध्ययन के बिना ज़्यादा व्यावहारिक प्रयोग समझ-बूझ को नष्ट कर सकते हैं। इसलिए संतुलन होना आवश्यक है..."

एक पल सोचने के बाद, उन्होंने कहा, "तो, दूसरे शब्दों में, धर्म का अभ्यास, जो कि असली आध्यात्मिक अभ्यास है, एक तरह का वोल्टेज स्थिरक है। स्थिरक का कार्य यह होता है कि अनियमित ऊर्जा प्रवाह को रोकता है और आपको स्थिर व नियमित ऊर्जा प्रदान करता है।"

"आप चरम स्थितियों से बचने के महत्त्व पर ज़ोर देते हैं," मैंने जोड़ा, "परंतु क्या चरम स्थिति तक जाने से ही हमें जीवन में उत्तेजना और उत्साह प्राप्त नहीं होता? जीवन में चरम स्थितियों से बचने और हमेशा 'मध्यम मार्ग' चुनने से क्या जीवन नीरस और बेजान नहीं हो जाता?"

सिर हिलाकर मना करते हुए, उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे ख़्याल से आपको चरम व्यवहार का स्रोत या आधार समझने की ज़रूरत है। उदाहरण के लिए भौतिक सामग्री को ही लीजिए – घर, फ़र्नीचर, कपड़े, आदि। एक ओर हम ग़रीबी को चरम स्थिति मानते हैं और हमें इससे बचने तथा भौतिक सुविधाएँ रखने का अधिकार है। दूसरी ओर, ज़्यादा सुख-सुविधाएँ या अत्यधिक धन कमाना भी एक चरम स्थिति है। बहुत धन कमाने के पीछे हमारा उद्देश्य संतोष और ख़ुशी प्राप्त करना है। परंतु अधिक चाहने का आधार ही यह है कि हमारे पास पर्याप्त नहीं है और हम संतुष्ट नहीं हैं। यह असंतोष का भाव, अधिक और अधिक की चाहत उन वस्तुओं की वांछनीयता के कारण न होकर हमारी अपनी मानसिक दशा के कारण है।"

"तो मुझे लगता है कि चरम स्थितियों तक जाने की हमारी प्रवृत्ति असंतोष के भाव से ही प्रेरित होती है। निश्चय ही, इसके अन्य कारण भी होंगे। लेकिन मेरे विचार से यह समझना आवश्यक है कि चरम स्थिति तक जाना ऊपरी तैर पर अच्छा या 'उत्तेजक' लग सकता है लेकिन यह बहुत हानिकारक है। चरम स्थितियों और चरम व्यवहार के अनेक उदाहरण हैं। मेरे ख़्याल से इन स्थितियों को देखने से यह समझ में आ जाएगा कि चरम तक जाने से स्वयं आपको ही कष्ट होता है। उदाहरण के लिए, अगर हम दूरगामी परिणाम सोचे बिना, और अपनी जिम्मेदारी को समझे बिना बहुत ज़्यादा मछली पकड़ें तो इससे मछलियों की संख्या... या संभोग क्रिया कम हो जाएगी। निश्चय ही, प्रजनन के लिए जैविक काम वासना जागृत होती है और इस क्रिया से संतोष भी होता है। परंतु यदि काम वासना अनुत्तरदायी ढंग से ज़्यादा बढ़ जाए तो इससे अनेक तरह की समस्याएँ जैसे शारीरिक शोषण, सगे-संबंधियों के साथ यौन संपर्क आदि हो सकती हैं।"

“आपने कहा कि असंतोष के अलावा, ऐसे कई और कारण होते हैं जिनसे चरम स्थिति पैदा हो सकती है...”

“हाँ, निश्चय ही।” वे बोले।

“क्या आप कोई उदाहरण दे सकते हैं?”

“मेरे ख़्याल से संकीर्ण विचारधारा भी चरम स्थिति का एक कारण हो सकती है।”

“संकीर्ण विचारधारा किस संदर्भ में...?”

“अत्यधिक मछली पकड़ने से मछलियों की संख्या में कटौती होना संकीर्ण विचारधारा का ही उदाहरण है क्योंकि व्यक्ति केवल अल्पकालिक लाभ देख रहा है और बड़ी तस्वीर की उपेक्षा कर रहा है। यहाँ व्यक्ति अपने नज़रिए को व्यापक बनाने के लिए अपनी शिक्षा और ज्ञान का उपयोग कर सकता है और अपनी विचारधारा की संकीर्णता को कम कर सकता है।”

दलाई लामा ने टेबल से अपनी माला उठाई और उसे अपने हाथ से रगड़ते हुए उस विषय पर चिंतन करने लगे। अपनी माला की ओर देखते हुए वे अचानक बोलने लगे, “मुझे लगता है कि बहुत-से मामलों में संकीर्ण विचारधारा चरम स्थितियों का कारण बनती है। इससे समस्याएँ होती हैं। जैसे: तिब्बत अनेक शताब्दियों तक बौद्धधर्मी देश था। स्वाभाविक तौर पर, इस कारण तिब्बती लोग बौद्ध धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म समझते थे और यह भी मानते थे कि यदि सारी मानवता बौद्ध धर्म मानने लगे तो बहुत अच्छा होगा। यह विचार कि हर व्यक्ति बौद्धधर्मी हो जाए, अत्यंत चरम प्रकृति का विचार है। इसी तरह की सोच से समस्याएँ पैदा होती हैं। परंतु अब जबकि हम तिब्बत छोड़ आए हैं हमें अन्य धार्मिक परंपराओं के बारे में जानने और सीखने को मिला। इससे हम सच्चाई के निकट आए हैं – यह समझ पाए हैं कि मानवता के अंतर्गत अनेक मानसिक विचारधाराएँ हैं। यदि हम समूचे संसार को बौद्धधर्मी बनाना चाहें तो यह बिल्कुल अव्यावहारिक बात होगी। अन्य परंपराओं के निकट आने पर आपको उनकी सकारात्मक बातें जानने को मिलती हैं। अब जब भी हमारा सामना किसी भिन्न धर्म से होता है तो हमारे भीतर एक सहज भाव उत्पन्न हो जाता है। हम यह सोचेंगे कि यदि उस व्यक्ति को दूसरी परंपरा ज़्यादा उपयुक्त और प्रभावी लगती है तो अच्छी बात है! जैसे: हम किसी रेस्तरां में जाते हैं – हम सब एक टेबल पर साथ बैठते हैं और अपनी पसंद की चीज़ों का ऑर्डर देते हैं। हम लोग अलग-अलग चीज़ें खाते हैं लेकिन इस बात पर कोई किसी से लड़ता नहीं है!”

“तो, मुझे लगता है कि प्रयास करके अपने नज़रिए को विस्तृत करने से हम प्रायः चरम विचारधारा से ऊपर उठ सकते हैं जिसके ऐसे नकारात्मक परिणाम होते हैं।”

इस विचार के साथ, दलाई लामा ने अपनी माला अपनी कलाई पर लपेटी, मेरे हाथ पर प्यार से थपकी दी और चर्चा समाप्त कर उठ खड़े हुए।

अध्याय 11

कष्ट और परेशानी में अर्थ की खोज

दूसरे विश्व युद्ध के दौरान नाज़ियों द्वारा बंदी बनाए गए यहूदी मनोवैज्ञानिक विक्टर फ्रैंकल ने एक बार कहा था, “मनुष्य किसी भी कष्ट को तत्काल और तब तक आसानी से सहन कर सकता है जब तक उसे उस पीड़ा में अर्थ नज़र आता है।” फ्रैंकल ने शरणार्थी शिविर में सहे गए क्रूर और अमानवीय अनुभव द्वारा जाना कि लोग अत्याचार के दौरान किस तरह जीवित रहते थे। कौन बचा और कौन नहीं बचा, इस बात पर ध्यान देने से उसने यह निष्कर्ष निकाला कि जीवित बचना व्यक्ति की युवावस्था या उसके शारीरिक बल पर नहीं बल्कि अपने जीवन और अनुभव में अर्थ खोजने और अपने उद्देश्य की प्राप्ति पर निर्भर करता है।

कष्ट में अर्थ खोजना हमारे जीवन के सबसे कठिन क्षणों से निपटने में हमारी मदद करता है। परंतु अपने दर्द में अर्थ खोजना आसान काम नहीं है। कष्ट प्रायः अचानक, अजीब और बेतरतीब ढंग से आता है जिसका, कोई सार्थक या सकारात्मक अर्थ तो दूर, कोई मतलब ही नहीं होता। कष्ट और पीड़ा के उस दौर में हमारी समस्त ऊर्जा उससे बचने में लग जाती है। बड़े संकट और त्रासदी के समय, उस कष्ट में किसी तरह का अर्थ खोजना या चिंतन करना असंभव प्रतीत होता है। उस दौरान, हम उसे सहन करने के अतिरिक्त ज़्यादा कुछ नहीं कर सकते। अपने कष्ट को निरर्थक, अनुचित मानना और यह सोचना स्वाभाविक है कि, “मैं क्यों?” सौभाग्य से, तुलनात्मक अवधि के समय, यानि कष्ट से पहले और उसके बाद के समय में हम पीड़ा पर चिंतन कर सकते हैं और उसके अर्थ को समझने का प्रयास कर सकते हैं। कष्ट में छिपे अर्थ को खोजने के लिए किया गया प्रयास और उसमें लगा समय उस समय बहुत लाभकारी होता है जब कष्ट सचमुच आता है। परंतु उस लाभ को लेने के लिए हमें अपने अच्छे समय में ही अर्थ खोजने की कोशिश शुरू कर देनी चाहिए। मज़बूत

जड़ों वाले वृक्ष बड़े से बड़े तूफ़ान को झेल लेते हैं लेकिन कोई वृक्ष तूफ़ान आने के समय अपनी जड़ों को मज़बूत नहीं कर सकता।

तो हम कष्ट में छिपे अर्थ को खोजने की शुरुआत कैसे करें? बहुत लोगों के लिए, यह खोज उनकी धार्मिक परंपराओं से शुरू होती है। हालाँकि अलग-अलग धर्मों में कष्ट के अर्थ और उसके उद्देश्य को समझने के अलग-अलग तरीके होते हैं, प्रत्येक धर्म उसके मतानुसार, कष्ट के प्रति दी जाने वाली प्रतिक्रिया बताता है। उदाहरण के लिए, बौद्ध एवं हिंदू धर्म में, कष्ट को अपने ही पूर्व कर्मों का फल बताया गया है और यह आध्यात्मिक मुक्ति के लिए उत्प्रेरक का काम करता है।

जूडियो-ईसाई परंपरा में, ब्रह्मांड की रचना एक नेक व न्यायी ईश्वर ने की थी और बेशक उसकी योजना कभी-कभी हमें रहस्यमयी तथा अपाठ्य लगती हो, किंतु उसकी योजना में हमारा विश्वास और भरोसा हमें कष्ट को सहने की हिम्मत देता है, जैसा कि टाल्मुड ने कहा, “ईश्वर जो भी करता है, अच्छे के लिए करता है।” जीवन में कष्ट आते हैं लेकिन जिस तरह प्रसव के दौरान स्त्री पीड़ा का अनुभव करती है, उसी तरह हम यह विश्वास करते हैं कि कष्ट का अंत में परिणाम अच्छा ही होगा। इन परंपराओं की असली चुनौती यह है कि प्रसव से भिन्न, कष्ट का अंत में परिणाम प्रायः हमें पता नहीं लग पाता। फिर भी, जिनका ईश्वर में अटूट विश्वास है, वे यही मानते हैं कि कष्ट का फल अच्छा ही होता है, जैसा कि हसीद ने सलाह दी है, “जब भी मनुष्य को कष्ट हो, उसे यह नहीं कहना चाहिए, ‘यह बुरा हुआ! यह ठीक नहीं है!’ ईश्वर मनुष्य के साथ कभी बुरा नहीं करता। परंतु यह कहना ठीक है, ‘यह कटु है! मुझे अच्छा नहीं लगा!’ दवाओं में कुछ ऐसी हैं जो कड़वी जड़ी-बूटियों से बनती हैं।” इसलिए जूडियो-ईसाई नज़रिए से, कष्ट के अनेक उद्देश्य होते हैं: यह हमारे विश्वास की परीक्षा लेता है, उसे मज़बूत करता है, यह हमें अत्यंत मूल व आंतरिक रूप से ईश्वर के निकट ला सकता है यह भौतिक जगत के साथ हमारे संबंध को ढीला कर, हमें ईश्वर की शरण में ले जा सकता है।

हालाँकि व्यक्ति की धार्मिक परंपरा, कष्ट का अर्थ खोजने में उसकी बहुमूल्य सहायता कर सकती है, जो लोग किसी धर्म को नहीं मानते, वे भी ध्यान और चिंतन के द्वारा कष्ट में छिपे अर्थ को खोज सकते हैं। वैश्विक स्तर पर दुख व्याप्त होने के बावजूद, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि हमारी पीड़ा हमारी परीक्षा ले सकती है, हमें मज़बूती दे सकती है और जीवन के अनुभव को गहन बना सकती है। डॉ. मर्टिन लूथर किंग जूनियर ने एक बार कहा था, “जो चीज़ मुझे नष्ट नहीं कर सकती, वह मुझे मज़बूत बनाती है।” जहाँ एक ओर पीड़ा से उबरना स्वाभाविक होता है, वहीं पीड़ा हमें चुनौती देती है और हमारी श्रेष्ठता को भी बाहर लाती है। लेखक ग्राहम ग्रीन अपनी पुस्तक दि थर्ड मैन में लिखते हैं, “इटली में तीस साल तक बोरर्जिया के शासन में, युद्ध, आतंक, हत्या और रक्तपात होता रहा - लेकिन वहीं से माइकिल एंजेलो, लियोनार्दो द विंची और नवजागरण का जन्म हुआ। स्विट्ज़रलैंड में, भाईचारा है, पाँच सौ साल से लोकतंत्र व शांति है, लेकिन उन्होंने क्या दिया? कूकू घड़ी!”

पीड़ा हमें मज़बूत बनाती है, दृढ़ता प्रदान करती है लेकिन कभी-कभी इसका विपरीत

असर भी अच्छा होता है - यह हमें मधुर, ज़्यादा संवेदनशील और सौम्य भी बना देती है। कष्ट के दौरान हमें जिस असुरक्षा का अनुभव होता है वह हमें उदार बनाती है और दूसरों के साथ हमारे संबंध स्थापित होते हैं। मशहूर कवि विलियम वर्ड्सवर्थ ने एक बार कहा था, "गहन पीड़ा ने मेरी आत्मा को मानवता प्रदान की है।" कष्ट के इस मानवीय प्रभाव को समझाते हुए मुझे अपने एक परिचित, रॉबर्ट का ख़्याल आ रहा है। रॉबर्ट एक अत्यंत सफल कॉर्पोरेशन का प्रमुख था। कुछ साल पहले उसे ज़बर्दस्त आर्थिक नुकसान हुआ जिससे वह भयंकर डिप्रेशन का शिकार हो गया। उस दौरान मैं उससे मिलने गया। मैंने रॉबर्ट को हमेशा आत्मविश्वास और उत्साह से भरा हुआ देखा था, और मैं उसे इतना हताश देखकर दंग रह गया। अत्यंत पीड़ा भरे स्वर में रॉबर्ट ने कहा, "मेरे जीवन में इससे बुरा कुछ नहीं हुआ। मैं इससे बाहर नहीं निकल पा रहा। मुझे यह पता ही नहीं था कि व्यक्ति इतना परेशान, लाचार और बेबस हो सकता है।" उसकी परेशानियों पर कुछ देर बात करने के बाद, मैंने उसे इलाज के लिए अपने एक साथी के पास भेज दिया।

कुछ सप्ताह बाद, मेरी मुलाकात रॉबर्ट की पत्नी कैरन से हुई और मैंने उससे रॉबर्ट का हाल-चाल पूछा। "वह अब पहले से बेहतर है। धन्यवाद। आपने उसे जिस मनोवैज्ञानिक के पास भेजा था, उन्होंने उसे डिप्रेशन के लिए दवा दी है और उससे काफ़ी लाभ हो रहा है। निश्चय ही, हमें व्यापार संबंधी समस्याओं को दूर करने में कुछ समय लगेगा लेकिन वह अब काफ़ी बेहतर महसूस कर रहा है और जल्दी ही सबकुछ ठीक हो जाएगा..."

"मुझे यह सुनकर बहुत ख़ुशी हुई।"

कैरन एक पल के लिए झिझकी और फिर उसने बताया, "आपको पता है, मैं उसे डिप्रेशन में देख नहीं पा रही थी। वैसे, मुझे लगता है कि यह बहुत अच्छा हुआ। एक रात डिप्रेशन की हालत में वह बहुत बुरी तरह रोने लगा। वह चुप नहीं हो रहा था। मैं उसे घंटों तक अपनी बाँहों में लिए बैठी रही। वह बहुत देर रोता रहा और फिर सो गया। हमारी तेईस साल की शादी में ऐसा पहली बार हुआ था...और सच कहूँ तो मैं इतने वर्षों में उसके इतना निकट कभी नहीं आई। हालाँकि उसका डिप्रेशन अब ठीक हो गया है, पर अब चीज़ें पहले जैसी नहीं रहीं। हमारे बीच मानो कुछ खुल गया है... और निकटता का वह भाव अब भी बरकरार है। उसका अपनी समस्या मुझे बताना और हमारा साथ में मिलकर उसका सामना करने से हमारे रिश्ते में बदलाव आया है और हम पहले से बहुत पास आ गए हैं।"

व्यक्ति के कष्ट का अर्थ खोजते हुए, हम फिर से दलाई लामा की ओर लौटते हैं, जिन्होंने यह समझाया कि बौद्ध धर्म के संदर्भ में किस तरह कष्ट को व्यावहारिक उपयोग में लाया जा सकता है।

"बौद्ध धर्म में, आप अपने निजी कष्ट को करुणा में वृद्धि करने के लिए उपयोग में ला सकते हैं - इसे तौंग-लेन* पद्धति के अभ्यास के लिए प्रयोग किया जा सकता है। यह महायान पद्धति है जिसमें व्यक्ति दूसरे के कष्ट को अपने ऊपर लेने की कल्पना करता है और उसके बदले में उसे अपने समस्त संसाधन, स्वास्थ्य, समृद्धि आदि दे देता है। मैं बाद में इसके बारे में विस्तार से बात करूँगा। तो, इसे करते समय जब आपको बीमारी, कष्ट या पीड़ा होती

है तो आपको यह सोचने का मौका मिलता है, 'मेरी पीड़ा अन्य सभी प्राणियों की पीड़ा का स्थान ले ले। ऐसा अनुभव करने से, मैं इसी तरह की दुख से पीड़ित सभी प्राणियों को बचा सकूँ!' इस तरह आप दूसरों की पीड़ा को अपने ऊपर लेने के अभ्यास द्वारा अपनी पीड़ा का उपयोग कर सकते हैं।"

"यहाँ मैं एक बात बता दूँ: उदाहारण ले लिए, अगर आप बीमार हो जाएँ और यह सोचकर इस पद्धति का अभ्यास करें, 'मेरी यह बीमारी दूसरों की समान बीमारी की जगह ले ले,' और आप उनकी पीड़ा को अपने ऊपर लेने की और उन्हें अपना स्वास्थ्य देने की कल्पना करें, तो मेरा कहने का अर्थ यह नहीं है कि आप अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करें। बीमारी के संदर्भ में, सुरक्षात्मक उपाय करना ज़रूरी होता है, जैसे कि सही खाना और जो भी ज़रूरी हो, ताकि आप स्वयं रोग ग्रस्त न हो जाएँ। उसके बाद जब आप बीमार पड़ें, तो उचित दवा लेना तथा अन्य सभी तरीके अपनाना बेहद ज़रूरी होता है।"

"हालाँकि, बीमार होने के बाद तौंग-लेन जैसे अभ्यास, बीमारी की परिस्थिति में मानसिक रुख के संदर्भ में आपकी प्रतिक्रिया पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। अपनी स्थिति पर रोने, दुखी होने तथा चिंता और परेशानी से बोझिल होने के बजाय, आप सही तरीका अपनाकर स्वयं को अतिरिक्त मानसिक कष्ट और परेशानी से बचा सकते हैं। तौंग-लेन ध्यान पद्धति या 'लेन-देन' से ज़रूरी नहीं कि आपका शारीरिक कष्ट कम हो जाए या ठीक हो जाए, लेकिन यह आपको अनावश्यक और अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक दर्द, पीड़ा और दुख से बचा सकता है। आप यह सोच सकते हैं, 'इस दर्द और पीड़ा को अनुभव करके, मैं अन्य लोगों की मदद कर सकूँगा जो इसी तरह के दर्द को भोग रहे हैं।' इस तरह आपकी पीड़ा को नया अर्थ मिल जाता है क्योंकि यह धार्मिक या आध्यात्मिक पद्धति का आधार बन जाती है। इसके साथ, इस तकनीक का अभ्यास करने वाले लोगों के मामले में यह भी संभव है कि इस अनुभव से दुखी या उदास होने के बजाय, व्यक्ति इसे अपना सौभाग्य समझे। वह व्यक्ति इसे अवसर के रूप में देख सकता है और वास्तव में ख़ुश हो सकता है क्योंकि इस विशिष्ट अनुभव ने उसे अधिक समृद्धि बनाया है।"

"आपने कहा कि तौंग-लेन की पद्धति में कष्ट का उपयोग किया जा सकता है। इससे पहले आपने इस बात पर चर्चा की थी कि समय से पहले जान-बूझकर कष्ट के बारे में सोचने से, सचमुच कष्ट आने पर, वह हमारे ऊपर हावी नहीं हो पाता... कष्ट को जीवन के स्वाभाविक अंग के रूप में स्वीकार करने के संदर्भ में..."

"यह बिल्कुल ठीक है...," दलाई लामा ने हामी भरी।

"क्या पीड़ा में अर्थ खोजने के या कम से कम यह समझने के कुछ और भी तरीके हैं कि हमारे कष्ट का कोई व्यावहारिक महत्त्व है?"

"हाँ," उन्होंने उत्तर दिया, "निश्चित, है। हमने शायद पहले यह चर्चा की थी कि बौद्ध धर्म के अंतर्गत पीड़ा पर विचार करना बहुत आवश्यक होता है क्योंकि ऐसा करने से आप पीड़ा के कारणों और उन अनुचित कार्यों से बचने के लिए प्रयासरत हो जाते हैं जिनके

कारण दुख होता है। इससे अच्छी बातों और ख़ुशी व आनंददायक कार्यों के प्रति उत्साह भी बढ़ता है।"

"आपकी नज़र में क्या गैर-बौद्धधर्मियों के लिए भी पीड़ा पर चिंतन करने के लाभ हैं?"

"हाँ, मुझे लगता है कि कुछ स्थितियों में इसका कुछ महत्त्व हो सकता है। जैसे: अपने कष्ट पर ध्यान देने से आपके घमंड और दंभ के भाव में कमी आती है। निश्चय ही," वह खुलकर हँसे, "यह उस व्यक्ति को व्यावहारिक लाभ या संतोषजनक कारण नहीं लगेगा जो घमंड या दंभ को दोष नहीं मानता।"

दलाई लामा ने और गंभीर होते हुए कहा, "खैर, मुझे लगता है कि कष्ट का एक पहलू ऐसा है जो सचमुच बहुत महत्त्वपूर्ण है। जब आप अपने दर्द या पीड़ा से अवगत होते हैं तो आप में परानुभूति, दूसरों की पीड़ा को समझने का भाव विकसित हो जाता है। इससे दूसरों के प्रति करुणा में भी वृद्धि होती है। इससे दूसरों के साथ जुड़ने में सहायता मिलती है और इसलिए यह एक गुण माना जाता है।"

"तो," दलाई लामा ने अपनी बात को समाप्त करते हुए कहा, "पीड़ा को इस रूप में देखने से, हमारे व्यवहार में बदलाव आने लगता है; हमें अपनी पीड़ा उतनी बेकार और बुरी नहीं लगती जितना कि हम उसे समझते हैं।"

शारीरिक पीड़ा

जीवन के शांत क्षणों में, जब सब कुछ स्थिर और आराम से चल रहा हो, कष्ट पर चिंतन से हम प्रायः पीड़ा के गहरा अर्थ और महत्त्व को जान पाते हैं। हालाँकि, कभी-कभी हमारे सामने ऐसी तकलीफ़ें आ जाती हैं जिनका कोई अर्थ, कोई मुक्ति संबंधी लाभ समझ में नहीं आता। शारीरिक पीड़ा और कष्ट इसी श्रेणी में आते हैं। परंतु शारीरिक दर्द, जो कि एक दैहिक प्रक्रिया है, और पीड़ा में, जो कि उस दर्द के प्रति हमारी मानसिक एवं भावनात्मक प्रतिक्रिया है, अंतर होता है। तो प्रश्न यह उठता है: अपने दर्द के पीछे छिपे अर्थ और उद्देश्य को खोजने से हमारे व्यवहार में बदलाव आ सकता है? और क्या शारीरिक चोट पहुँचने पर इस बदलाव से हमारी पीड़ा में कमी आती है?

अपनी पुस्तक पेन: द गिफ़्ट नोबडी वान्ट्स में डॉ. पॉल ब्रैंड शारीरिक दर्द के उद्देश्य और महत्त्व की खोज करते हैं। डॉ. ब्रैंड ने, जो कि विश्व-विख्यात हस्त सर्जन और कुष्ठ रोग विशेषज्ञ हैं, अपने आरंभिक वर्ष भारत में बिताए थे, जहाँ मिशनरियों की संतान होने के नाते, वह हमेशा अत्यंत दुखी और परेशान लोगों से घिरे रहते थे। इस बात को देखते हुए कि पश्चिम की तुलना में, यहाँ शारीरिक पीड़ा की उम्मीद तथा उसके प्रति सहनशीलता अधिक थी, डॉ. ब्रैंड की रुचि मानव शरीर में दर्द की प्रक्रिया में विकसित हो गई। आख़िरकार उन्होंने भारत में ही कुष्ठ रोगियों पर काम करना शुरू कर दिया और बहुत शानदार खोज की। उन्होंने पाया कि कुष्ठरोग में होने वाला शारीरिक विनाश और भयंकर विकार, रोग के कीटाणुओं द्वारा

शरीर को सड़ाने के कारण नहीं होता, बल्कि रोग के कारण शरीर के अंगों में दर्द का एहसास खत्म हो जाने की वजह से होता है। दर्द न होने से, कुष्ठ रोगियों को ऊतकों की क्षति के बारे में संकेत ही नहीं मिलते। इसलिए, डॉ. ब्रैंड ने देखा कि कुष्ठ रोगी टूटी हुई चमड़ी या बाहर नज़र आ रही हड्डियों के बाद भी चल और दौड़ पाते थे; इसके कारण रोग लगातार बढ़ता जाता था। दर्द के अभाव में, मरीज़ कभी-कभी आग में से कुछ निकालने के लिए उसमें अपना हाथ भी डाल देते थे। उन्होंने आत्म-विनाश के प्रति विशुद्ध उपेक्षा को महसूस किया। अपनी पुस्तक में, डॉ. ब्रैंड ने दर्दरहित जीवन के विनाशकारी प्रभावों के बारे में - बार-बार चोट लगना, चूहों द्वारा नींद में हाथ व पैर की उँगलियों को कुतर जाना जैसे एक के बाद एक अनेक किस्से लिखे हैं।

दर्द से पीड़ित और दर्द रहित व्यक्तियों के साथ जीवन गुजारने के बाद, डॉ. ब्रैंड ने दर्द को पश्चिम की भांति वैश्विक शत्रु न मानकर उसे एक शानदार, बढ़िया और परिष्कृत प्रक्रिया माना है जो हमारे शरीर को होने वाले नुकसान की पहले ही चेतावनी देकर हमें बचा लेती है। परंतु दर्द का अनुभव इतना पीड़ादायक क्यों होता है? उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि दर्द का अरुचिकर होने का अंश जो हमें पसंद नहीं, वही हमें खतरे और चोट से बचने का संकेत देता है। दर्द की यही अरुचिकर प्रवृत्ति मनुष्य को समस्या से अवगत करवाती है। हालाँकि शरीर में ऊपरी स्वतः संचालित होने वाली प्रणाली होती है जो सतही स्तर पर सुरक्षा देती है और हमें तुरंत दर्द से दूर कर देती है, दर्द का नापसंद होना ही वास्तव में जीव को बचाता है और समस्या की ओर उसका ध्यान ले जाता है। वह स्मृति में उस अनुभव का दाग़ छोड़ देता है और भविष्य में हमें उससे बचाता है।

जिस तरह कष्ट में अर्थ खोजना हमें जीवन की समस्याओं से लड़ने में मदद करता है, डॉ. ब्रैंड को लगता है कि शारीरिक दर्द के उद्देश्य को समझना भी दर्द के उठने के समय उसे कम कर सकता है। उनके सिद्धांत के संदर्भ में, उन्होंने “दर्द बीमा” की अवधारणा का उल्लेख किया है। उन्हें लगता है कि जिन दिनों हम स्वस्थ रहते हैं, उस समय हम पहले से ही दर्द के कारण पर विचार करके और दर्द के अभाव में जीवन की कल्पना द्वारा दर्द के लिए तैयार हो सकते हैं। चूंकि तेज़ दर्द हमारी वस्तुनिष्ठता को नष्ट कर देता है, हमें इन चीज़ों के बारे में दर्द होने से पहले ही विचार कर लेना चाहिए। परंतु अगर हम दर्द को यह मानें कि दर्द “आपका ध्यान आकर्षित करने हेतु आपके लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय पर शरीर द्वारा दिया गया भाषण है” तो दर्द के प्रति हमारे रुख में बदलाव आने लगेगा। इस बदलाव के साथ, हमारी पीड़ा कम हो जाएगी। जैसा कि डॉ. ब्रैंड कहते हैं, “मैं इस बात से आश्वस्त हूँ कि पहले से विकसित किए गए दृष्टिकोण यह निर्धारित करता है कि पीड़ा होने पर वह हमें कितना प्रभावित करेगी।” उनका मानना है कि हमें दर्द के समय आभारी होना चाहिए। हम दर्द के अनुभव के प्रति आभारी नहीं हो सकते, लेकिन हम पीड़ा का बोध करवाने वाली प्रणाली के प्रति आभारी हो सकते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारा व्यवहार और मानसिक दृष्टिकोण इस बात पर असर डाल सकता है कि शारीरिक दर्द से हमें कितनी पीड़ा होती है। उदाहरण के तौर पर,

मान लीजिए दो व्यक्ति हैं, एक मज़दूर है और दूसरा पियानो वादक है और दोनों को उँगली में एक जैसी चोट लगती है। शारीरिक दर्द दोनों के लिए एक समान हो सकता है, लेकिन मज़दूर को इससे बहुत कम पीड़ा होगी बल्कि शायद वह ख़ुश होगा कि उसे एक महीने तक काम नहीं करना पड़ेगा और फिर भी उसे पैसे मिलेंगे जबकि पियानो वादक के लिए यह अत्यंत पीड़ादायक हो सकता है जो पियानो वादन को अपने जीवन की प्राथमिक ख़ुशी मानता है।

यह विचार कि हमारा मानसिक दृष्टिकोण दर्द को समझने और उसे सहन करने की हमारी क्षमता को प्रभावित करता है इसी तरह की सैद्धांतिक स्थितियों तक सीमित नहीं है; इसे अनेक वैज्ञानिक अध्ययनों और प्रयोगों द्वारा दर्शाया जा चुका है। इस विषय को देखने वाले शोधकर्त्ता ने इसकी शुरुआत दर्द को समझने और उसने अनुभव करने से की। दर्द संवेदना के संकेत की तरह शुरू होता है - एक अलार्म जो स्नायु ऊतकों द्वारा किसी खतरनाक चीज़ के स्पर्श से बज उठता है। रीढ़ के रास्ते मस्तिष्क के तल तक लाखों संकेत भेजे जाते हैं, इन संकेतों को छाँटकर मस्तिष्क के उच्च भागों तक भेजकर दर्द का संदेश दिया जाता है। मस्तिष्क इन संदेशों को फिर से छाँटता है और प्रतिक्रिया का निर्णय लेता है। इस अवस्था पर मस्तिष्क दर्द को महत्त्व और अर्थ प्रदान कर सकता है और दर्द के प्रति हमारे बोध को कम या ज़्यादा कर सकता है; हम दिमाग़ के अंदर उस दर्द को पीड़ा में बदल देते हैं। दर्द से होने वाली पीड़ा को कम करने के लिए हमें दर्द से होने वाली तकलीफ़ तथा अपने दर्द के कारण विचारों में उत्पन्न तकलीफ़ में अंतर करना होगा। भय, ग़ुस्सा, ग्लानि, अकेलापन और लाचारी ये सभी मानसिक एवं भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ हैं जो दर्द को बढ़ाती हैं। तो, दर्द से निपटने के तरीके को विकसित करते हुए हम निश्चय ही, आधुनिक चिकित्सा के उपकरणों, जैसे: दवाओं और अन्य प्रक्रियाओं की मदद से दर्द के निम्न स्तरों पर काम कर सकते हैं, लेकिन हम अपने दृष्टिकोण तथा व्यवहार को बदलकर उच्च स्तर पर भी काम कर सकते हैं।

अनेक शोधकर्त्ताओं ने दर्द के बोध में दिमाग़ की भूमिका का अध्ययन किया है। पैवलोव ने यहाँ तक कि कुत्तों को दर्द से उबरने के लिए प्रशिक्षण दिया जिसमें उन्होंने बिजली के झटके के साथ भोजन रूपी इनाम को जोड़ दिया। शोधकर्त्ता रॉनल्ड मैलज़ेक ने पैवलोव के प्रयोगों को और एक कदम आगे बढ़ा दिया। उन्होंने स्कॉटलैंड के टेरियर पिल्लों को गुदगुदे वातावरण में रखा ताकि उन्हें बड़े होने के दौरान लगने वाली चोटों से बचाया जा सके। ये कुत्ते दर्द पर मूल प्रतिक्रिया देना नहीं सीख पाए; उदाहरण के लिए जब उनके पंजों में पिन चुभाई गई तो वह कोई प्रतिक्रिया नहीं दे सके जबकि सामान्य कुत्ते दर्द से चिल्ला पड़ते थे। इस तरह के प्रयोगों के आधार पर, उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जिसे हम दर्द कहते हैं, वह दरअसल एक बुरी भावनात्मक प्रतिक्रिया है जो जन्मजात नहीं होती, बल्कि उसे सीखना पड़ता है। मनुष्यों पर किए गए अन्य प्रयोगों, जैसे: सम्मोहन और प्रयोगिक औषध आदि ने भी यह दर्शाया है कि अनेक मामलों में मस्तिष्क के उच्च भाग उसके निम्न भाग से आने वाले दर्द के संकेतों को रद्द कर सकते हैं। इससे यह पता लगता है कि मस्तिष्क यह कैसे निर्धारित करता है कि हम दर्द को किस तरह समझते हैं। यह हार्वर्ड मेडिकल स्कूल

के डॉ. रिचर्ड स्टर्नबैक और बर्नार्ड टर्स्की जैसे अन्वेषकों के रोचक निष्कर्षों को समझाने में भी सहायता करता है (बाद में जिसकी डॉ. मर्यान्न बेट्स आदि द्वारा किए अध्ययन से पुष्टि हुई) जिन्होंने यह कहा कि विभिन्न प्रजातीय समूहों के बीच दर्द को महसूस और सहन करने की क्षमता में काफ़ी अंतर होता है।

तो हमारा यह कहना कि दर्द के बारे में हमारा विचार इस बात को प्रभावित करता है कि हमें पीड़ा कितनी होती है, यह सिर्फ़ दार्शनिक अनुमान पर आधारित नहीं है बल्कि उसके पीछे वैज्ञानिक प्रमाण भी मौजूद हैं। और यदि दर्द के महत्त्व तथा अर्थ के बारे में हमारी खोजबीन से दर्द के संदर्भ में हमारे नज़रिए में बदलाव आता है तो हमारा प्रयास बेकार नहीं जाएगा। दर्द के उद्देश्य की खोज करने के लिए डॉ. ब्रैंड एक और रोचक तथा महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं। उन्होंने कुष्ठ रोगियों की अनेक रिपोर्टों के बारे में बताते हुए कहा, “निश्चय ही, मैं अपने हाथों व पैरों को देख सकता हूँ, लेकिन किसी कारण मुझे वह अपने अंग महसूस नहीं होते। ऐसा लगता है कि वह सिर्फ़ उपकरण हैं।” इसलिए दर्द सिर्फ़ हमें चेतावनी देता और बचाता नहीं है, बल्कि वह हमें एकीकृत करता है। हाथ-पैरों में दर्द महसूस न हो तो वे अपने शरीर का हिस्सा नहीं लगते।

जिस तरह दर्द, शरीर के होने के बोध को एकीकृत करता है, उसी तरह हम पीड़ा के सामान्य अनुभव को खुद से अन्य लोगों को जोड़ने वाली ताकत के रूप में महसूस कर सकते हैं। शायद हमारी पीड़ा के पीछे यही वास्तविक अर्थ होता है। हमारी पीड़ा ही सबसे मूल तत्त्व है जिसे हम दूसरों के साथ बाँटते हैं, ऐसा तत्त्व जो हमें समस्त सजीव प्राणियों से जोड़ता है।

दलाई लामा मनुष्य की पीड़ा के बारे में चर्चा को, तौंग-लेन का अभ्यास करने की सलाह पर, समाप्त करते हैं। जैसा कि वे आगे बताएँगे, इस कल्पनाशील ध्यान का उद्देश्य व्यक्ति में करुणा के भाव को मज़बूत करना है। परंतु इसे ताकतवर उपकरण के रूप में भी देखा जा सकता है जो व्यक्ति की निजी पीड़ा के स्वरूप को बदलने में सहायता करता है। किसी भी तरह के कष्ट या पीड़ा को सहन करते समय व्यक्ति इसके प्रयोग द्वारा दूसरों को उसी तरह की पीड़ा से मुक्त करके, उनकी पीड़ा को अपनी पीड़ा में घोल कर अपनी करुणा को बढ़ा सकता है - जो कि एक तरह की पीड़ा प्रतिनिधि है।

दलाई लामा ने ये निर्देश टक्सन में सितंबर के महीने में तेज़ गर्मी के दिन बड़ी संख्या में आए श्रोताओं के बीच दिए थे। हॉल के एयरकंडीशनर बाहर की बढ़ती गर्मी को कम करने का प्रयास कर रहे थे लेकिन अंदर बैठे सोलह सौ लोगों की गर्मी के आगे सब बेकार था। कमरे के अंदर तापमान बढ़ रहा था जिससे लोग असहज महसूस कर रहे थे जो कि कष्ट संबंधी ध्यान के लिए बिल्कुल उपयुक्त था।

तौंग-लेन का अभ्यास

“आज दोपहर को हम तौंग-लेन, यानि ‘लेना और देना’ पर चिंतन करेंगे। इसके द्वारा मस्तिष्क को प्रशिक्षित किया जाता है और करुणा के स्वाभाविक बल व शक्ति को दृढ़ किया जाता है। ऐसा इसलिए हो पाता है क्योंकि तौंग-लेन ध्यान हमें स्वार्थ से लड़ने में सहायता करता है। यह हमें दूसरों की पीड़ा के प्रति उदार बनाकर हमारे साहस में वृद्धि करता और हमारे दिमाग़ की शक्ति को बढ़ाता है।”

“इस अभ्यास के आरंभ में, पहले अपने एक ओर लोगों के समूह की कल्पना कीजिए जिन्हें मदद की बहुत ज़रूरत है, जो बहुत दुखी हैं, जो ग़रीबी, मुश्किल और पीड़ा में अपना जीवन यापन कर रहे हैं। अपने दिमाग़ में ध्यान से इस समूह की कल्पना कीजिए। दूसरी ओर, स्वयं को स्वार्थी और आत्म-केंद्रित व्यक्ति के रूप में खड़ा हुआ महसूस कीजिए, जो दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति लापरवाह है। फिर इस पीड़ा झेल रहे समूह और अपने स्वार्थी प्रतिरूप के बीच में, स्वयं को तटस्थ व्यक्ति के रूप में देखिए।”

“उसके बाद, यह सोचिए कि आपका स्वाभाविक रूप से किस ओर झुकाव है। क्या आपका झुकाव उस एक व्यक्ति की ओर है जो स्वार्थ का प्रतिरूप है? अथवा आपका स्वाभाविक झुकाव उन लोगों की ओर है जो कमज़ोर हैं? यदि आप तटस्थ भाव से देखें तो आपको पता लगेगा कि बड़ी संख्या में मौजूद उन लोगों का समूह एक अकेले व्यक्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।”

“उसके बाद, अपना ध्यान उन ज़रूरतमंद और दुखी लोगों की ओर ले जाइए। अपनी समस्त सकारात्मक ऊर्जा उनकी ओर केंद्रित कर दीजिए। मानसिक तौर पर, अपनी सफलता, अपने संसाधन और अपने सद्गुण उन्हें दे दीजिए। यह सब कर लेने के बाद, उनकी पीड़ा, परेशानियाँ और उनकी सारी नकारात्मकता को अपने ऊपर लेने की कल्पना कीजिए।”

“उदाहरण के लिए, आप सोमालिया के किसी भूखे बच्चे की कल्पना कर सकते हैं और कल्पना कीजिए कि उस दृश्य पर आपकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया क्या होगी। उस क्षण में, जब आप में उस बच्चे के लिए सहानुभूति का भाव जगता है तो वह इस आधार पर नहीं होता कि ‘यह मेरा रिश्तेदार है’ या ‘यह मेरा दोस्त है।’ आप तो उस व्यक्ति को जानते तक नहीं हैं। परंतु यह तथ्य कि वह एक मनुष्य है और आप भी उसकी तरह मनुष्य हैं, आपके भीतर सहानुभूति का भाव जगाता है और आप उसकी मदद के लिए तत्पर हो जाते हैं। तो आप कुछ इस तरह की कल्पना करते हुए यह सोच सकते हैं, ‘यह बालक अपनी परेशानी या अपने दुख को स्वयं दूर करने में समर्थ नहीं है।’ उसके बाद मानसिक रूप से आप उसकी ग़रीबी, भुखमरी और परेशानी को अपने ऊपर ले लीजिए तथा मानसिक रूप से ही अपने सुख, समृद्धि और सफलता उस बालक को दे दीजिए। इस तरह ‘लेने और देने’ की कल्पना के अभ्यास द्वारा आप अपने दिमाग़ को प्रशिक्षित कर सकते हैं।”

“इस अभ्यास को करते हुए कभी-कभी अपनी भावी पीड़ा की कल्पना करना और उसे इसी समय अपने ऊपर ले लेना और स्वयं को भावी पीड़ा से मुक्ति दिलाना लाभकारी होता है। अपने प्रति करुणा का भाव जागृत करने का थोड़ा अभ्यास कर लेने के बाद, आप

इस प्रक्रिया को विस्तार देकर दूसरों की पीड़ा को अपने ऊपर ले सकते हैं।"

"जब आप 'अपने ऊपर लेने' का अभ्यास करते हैं, तो पीड़ा, परेशानियों और दुखों की ज़हरीले पदार्थ, खतरनाक हथियार या डरावने पशु के रूप में कल्पना करना लाभकारी होता है - ये वो चीज़ें है जिनको देखने से व्यक्ति काँप उठता है। इसलिए, अपनी पीड़ा की इन्हीं रूपों में कल्पना कीजिए और फिर उन्हें सीधे अपने हृदय में उतार लीजिए।"

"इन नकारात्मक और डरावनी चीज़ों को अपने हृदय में उतारने का उद्देश्य यह है कि इससे हमारे अंदर का स्वार्थी भाव नष्ट हो जाता है। हालाँकि, जिन लोगों को आत्म-छवि, स्वयं से घृणा, ग़ुस्सा या आत्म-विश्वास में कमी जैसी समस्याएँ हैं, यह ज़रूरी है कि वह स्वयं इस बात का निर्णय करें कि उनके लिए यह अभ्यास करना उचित है अथवा नहीं। शायद यह उचित नहीं होगा।"

"य ह तौंग-लेन अभ्यास अत्यंत शक्तिशाली हो जाता है यदि 'लेने और देने' की प्रक्रिया को श्वास के साथ जोड़ दिया जाए; यानी साँस लेते समय 'लेने' की और साँस छोड़ते समय 'देने' की कल्पना कीजिए। अगर आप इस ध्यान को प्रभावशाली तरीके से करेंगे तो आपको थोड़ा असहज महसूस होगा। यह इस बात का संकेत है कि आपका निशाना लक्ष्य - अपने स्वार्थी और अहंकारी व्यवहार - पर सही लगा है। अब हम ध्यान करेंगे।"

तौंग-लेन के बारे में निर्देश देने के बाद दलाई लामा ने एक महत्त्वपूर्ण बात कही। कोई भी विशिष्ट अभ्यास सबके लिए उचित या अच्छा नहीं होता। अपनी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान हम सबके लिए यह ज़रूरी है कि हम यह निर्णय लें कि कोई विशिष्ट अभ्यास या ध्यान हमारे लिए उचित है या नहीं। कभी-कभी कोई अभ्यास शुरू में हमें ठीक नहीं लगता और उसे पूरी तरह समझने के बाद ही वह प्रभावी बनता है। उस दिन दोपहर में दलाई लामा द्वारा तौंग-लेन पर बात करते समय मेरे मामले में ऐसा ही हुआ था। मुझे लगा कि मुझे उसमें कुछ कठिनाई हो रही थी - अंदर से विरोध का भाव आ रहा था - हालाँकि मैं उस समय उसे ठीक से समझ नहीं सका। बाद में, जब मैंने दलाई लामा की बातों पर विचार किया तो मुझे लगा कि मेरे भीतर विरोध का भाव तब जागृत हुआ जब उन्होंने कहा कि लोगों का समूह एक व्यक्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। मैंने इस धारणा के बारे में पहले भी सुना था। स्टार ट्रेक कार्यक्रम में मि. स्पॉक ने रोम के अग्नि देवता की यह कहावत दोहराई थी: अनेक लोगों की ज़रूरतें एक व्यक्ति की ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होती है। परंतु उस बात में एक गड़बड़ थी। दलाई लामा के सामने उस बात को उठाने से पहले मैंने बौद्ध धर्म के पुराने विद्यार्थी से उसपर चर्चा की।

"एक बात मुझे परेशान कर रही है...," मैंने कहा। "यह कहना कि अनेक लोगों की ज़रूरतें एक व्यक्ति की ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होती है, सैद्धांतिक तौर पर ठीक लगता है, लेकिन दैनिक जीवन में हम लोगों से सामूहिक रूप से बात नहीं करते। हम एक बार में एक ही व्यक्ति से बात करते हैं। अब व्यक्तिगत स्तर पर, उस आदमी की ज़रूरत मेरी ज़रूरत से बड़ी कैसे हो सकती है? मैं भी तो एक व्यक्ति हूँ ... हम सब समान हैं..."

मेरे दोस्त ने थोड़ा सोचा। “हाँ, यह ठीक है। परंतु मेरा ख़्याल है कि अगर आप प्रत्येक व्यक्ति को सचमुच अपने समान समझें - न अपने से अधिक महत्त्वपूर्ण और न ही कम - तो शायद शुरुआत में इतना काफ़ी होगा!”

मैंने दोबारा उस बात को दलाई लामा के सामने नहीं उठाया।

---

*तौंग-लेन के अभ्यास संबंधी निर्देशों के लिए देखें पृष्ठ-211

भाग 4

बाधाओं पर विजय

अध्याय 12

बदलाव की शुरुआत

बदलाव की प्रक्रिया

हमने नकारात्मक स्वभाव और मानसिक अवस्था को दूर करके ख़ुशी प्राप्त करने की संभावना पर चर्चा की थी। सामान्य तौर पर, ऐसा करने के लिए, अपने नकारात्मक स्वभाव को दूर करने और जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए आप क्या करते हैं?" मैंने पूछा।

"पहला चरण है सीखना," दलाई लामा ने उत्तर दिया, "शिक्षा। मैंने शायद पहले भी शिक्षा के महत्त्व का उल्लेख किया था..."

"आपका मतलब है कि जब हमने सीखने के महत्त्व पर बात की थी कि ख़ुशी की तलाश में किस तरह नकारात्मक स्वभाव हानिकारक और सकारात्मक भाव लाभकारी होते हैं?"

"हाँ। परंतु अपने अंदर सकारात्मक बदलाव लाने के लिए सीखना सिर्फ़ पहला कदम है। इसके अलावा और भी कई बाते हैं: दृढ़ता, निश्चय, कार्यवाही और प्रयास। तो अगला कदम है दृढ़ता विकसित करना। सीखना और शिक्षा प्राप्त करना ज़रूरी है क्योंकि उनसे बदलाव लाने की ज़रूरत को दृढ़ता मिलती है और इससे निष्ठा में वृद्धि होती है। बदलाव लाने की यही दृढ़ता फिर निश्चय में बदल जाती है। उसके बाद यह निश्चय कार्यवाही में बदलता है - बदलाव का प्रबल निश्चय व्यक्ति को वास्तविक बदलाव लाने के लगातार प्रयास करने में सहायता करता है। प्रयास का अंतिम चरण बहुत महत्त्वपूर्ण होता है।"

"उदाहरण के लिए, यदि आप सिगरेट छोड़ने की कोशिश कर रहे हैं तो आपको पहले

यह समझना होगा कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। आपको यह शिक्षा ग्रहण करनी होगी। जैसे: मुझे लगता है कि धूम्रपान के हानिकारक प्रभावों के बारे में सूचना और सार्वजनिक शिक्षा से लोगों के स्वभाव में बदलाव आया है; अब शायद जानकारी होने के कारण चीन जैसे साम्यवादी देशों की तुलना में पश्चिमी देशों में लोग सिगरेट कम पीते हैं। परंतु सिर्फ़ यह सीख लेना ही काफ़ी नहीं है। आपको इस जागरूकता को बढ़ाकर उस स्तर तक ले जाना पड़ेगा जहाँ आपके मन में धूम्रपान के हानिकारक प्रभावों को लेकर दृढ़ता पैदा हो जाए। तब आप बदलाव लाने का निश्चय कर सकेंगे। अंत में आपको अपने नए व्यवहार को स्थापित करने के लिए प्रयास करना होगा। यही तरीका है जिससे सब चीज़ों में, चाहे वह कुछ भी हो, भीतर बदलाव आता है।"

"आप अपने किसी भी व्यवहार में बदलाव लाने का प्रयास कर रहे हों, आपका उद्देश्य कुछ भी हो, आप किसी भी दिशा में प्रयास कर रहे हों, आपको इसे शुरू करने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति की ज़रूरत होगी। आपको इस काम में ज़बर्दस्त उत्साह पैदा करना होगा। यहाँ, तत्काल करने का बोध बहुत महत्त्वपूर्ण है। तत्काल का यह भाव समस्याओं पर काबू पाने में मदद करता है। जैसे: एड्स के गंभीर प्रभावों के ज्ञान ने तत्काल बोध विकसित करके बहुत से लोगों के कामुक व्यवहार पर रोक लगा दी है। मेरे विचार से अगर आपको उचित जानकारी मिल जाए तो गंभीरता और निष्ठा अपने आप आ जाते हैं।"

"तो, यह तत्काल बोध व्यक्ति में बदलाव लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे हमें बहुत-सी ऊर्जा मिल सकती है। जैसे: किसी राजनीतिक आंदोलन के संदर्भ में, यदि लोगों में हताशा व्याप्त हो तो, तत्काल वाला भाव तेज़ हो जाता है - इतना कि लोग यह भी भूल जाते हैं कि वे भूखे हैं, और अपने उद्देश्य को पाने के लिए उन्हें थकान भी महसूस नहीं होती।"

"काम को तत्काल करने का महत्त्व हमें न सिर्फ़ निजी स्तर पर, बल्कि सामुदायिक व वैश्विक स्तर पर भी समस्याओं से निपटने के मामले में लागू होता है। उदाहरण के लिए, मैं जब सेंट लुईस में था तो वहाँ मेरी भेंट गवर्नर से हुई। वहाँ उन दिनों भयंकर बाढ़ आई थी। गवर्नर ने मुझे बताया कि जब शुरू में बाढ़ का पता लगा तो उन्हें बहुत चिंता हुई क्योंकि समाज के व्यक्तिनिष्ठ होने के चलते, हो सकता है उन्हें ज़्यादा सहयोग न मिल पाए और हो सकता है कि लोग संयुक्त प्रयास में साथ न दें। परंतु संकट की घड़ी में, वे लोगों की प्रतिक्रिया देखकर हैरान रह गए। लोगों ने बाढ़ से निपटने के संयुक्त प्रयास में इतना सहयोग दिया और निष्ठा दिखाई कि वह अत्यंत प्रभावित हो गए थे। इससे यह पता चलता है कि अपने महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हमें तत्काल बोध के महत्त्व की समझ होनी चाहिए, जैसे: इस मामले में संकट इतना गहरा था कि लोग अपने आप जुड़ गए और संकट में मिलकर काम किया। दुर्भाग्य से," उन्होंने दुखी होकर कहा, "प्रायः हम लोगों में यह तत्काल बोध नहीं होता।"

एशियाई लोगों के अनेक जन्मों के विश्वास से उत्पन्न पाश्चात्य रूढ़िवादी "रहने दो" वाले स्वभाव - अभी नहीं होता तो अगली बार देखेंगे - को ध्यान में रखते हुए मैं उनके मुँह से

तत्काल बोध के महत्त्व को सुनकर हैरान रह गया।

"परंतु प्रश्न यह है कि अपने दैनिक जीवन में इतने उत्साह और बदलाव के लिए तत्काल बोध कैसे पैदा किया जाए? क्या इसके लिए बौद्ध धर्म में कोई विशिष्ट तरीका है?" मैंने पूछा।

"बौद्ध प्रशिक्षु के लिए उत्साह पैदा करने के अनेक तरीके हैं," दलाई लामा ने उत्तर दिया। आत्म-विश्वास और उत्साह पैदा करने के लिए हमें बुद्ध के ग्रंथों में एक चर्चा का उल्लेख मिलता है जो मनुष्य के अस्तित्व की बहुमूल्यता से संबंधित है। हम बात करते हैं कि हमारे अंदर कितना सामर्थ्य है, यह कितना लाभदायक हो सकता है, इसे कितने अच्छे उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जा सकता है, मनुष्य शरीर मिलने के लाभ क्या हैं, आदि। ये सभी चर्चाएँ मनुष्य के अंदर विश्वास और साहस पैदा करने तथा निष्ठा का भाव जगाने के लिए हैं ताकि हम अपने इस शरीर का सकारात्मक ढंग से उपयोग कर सकें।

"फिर, आध्यात्मिक अभ्यास से जुड़ने के लिए तत्काल बोध पैदा करने के उद्देश्य से प्रशिक्षु को जीवन की नश्वरता, और मृत्यु के बारे में याद दिलाया जाता है। इस संदर्भ में जब हम नश्वरता की बात करते हैं तो यह नश्वरता की अवधारणा के सूक्ष्म पहलुओं के बारे में न होकर, अत्यंत परंपरागत संदर्भ में होता है। दूसरे शब्दों में, हमें याद दिलाया जाता है कि एक दिन हम यहाँ नहीं होंगे। उस तरह की समझ दी जाती है। नश्वरता के बारे में जागरूकता को बढ़ावा दिया जाता है ताकि जब यह मनुष्य की विशाल क्षमताओं के बोध के साथ जुड़े तो इससे तत्काल का बोध पैदा हो कि हमें प्रत्येक मूल्यवान पल का उपयोग करना चाहिए।"

"नश्वरता और मृत्यु के बारे में इस तरह का चिंतन," मैंने कहा, "व्यक्ति को सकारात्मक बदलाव लाने और तत्काल बोध विकसित करने हेतु एक शक्तिशाली तकनीक है।"

"मेरे विचार से गैर-बौद्धधर्मियों को इन तकनीकों के प्रयोग में सावधान रहना चाहिए," उन्होंने सोचकर कहा। "शायद ये बौद्धधर्मियों पर अधिक लागू होती हैं। आख़िर," वह हँसकर बोले, "इस चिंतन को बिल्कुल विपरीत उद्देश्यों के लिए भी तो प्रयोग किया जा सकता है, इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि मैं कल जीवित रहूँगा तो आज बहुत सारी मस्ती क्यों न कर लूँ!"

"ग़ैर-बौद्धधर्मियों के लिए तत्काल बोध विकसित करने का क्या आपके पास कोई सुझाव है?"

वे बोले, "जैसा कि मैंने पहले कहा था, यहीं सूचना और शिक्षा की भूमिका काम आती है। उदाहरण के लिए, कुछ विशेषज्ञों से मिलने से पहले मुझे वातावरण के संकट की जानकारी नहीं थी। परंतु उनसे मिलने के बाद, जब उन्होंने मुझे उन समस्याओं के बारे में बताया जो हमारे सामने हैं, तब मुझे स्थिति की गंभीरता का पता लगा। यही बात हमारे सामने मौजूद अन्य समस्याओं पर भी लागू होती है।"

"परंतु कभी-कभी जानकारी होने के बाद भी हमारे अंदर बदलाव लाने की ऊर्जा नहीं

होती। इसके लिए क्या किया जा सकता है?” मैंने पूछा।

दलाई लामा सोचने लगे और फिर बोले, “मेरे विचार से इसकी अलग-अलग श्रेणियाँ होती हैं। किसी में, कुछ जीव विज्ञानी कारण हो सकते हैं जिसकी वजह से उदासी या ऊर्जा का अभाव होता है। यदि उदासी या ऊर्जा का अभाव जीव विज्ञानी कारणों से होता है तो हमें अपनी जीवनशैली को ठीक करने की ज़रूरत होती है। यदि हम पूरी नींद लें, पौष्टिक भोजन करें, शराब से बचें आदि तो इससे हमारा दिमाग़ अधिक सतर्क रहता है। कुछ मामलों में, यदि यह किसी बीमारी के कारण है तो हमें दवा या उपचार लेने की भी ज़रूरत हो सकती है। परंतु एक अन्य तरह की उदासीनता या शिथिलता भी होती है - जो मस्तिष्क की कमज़ोरी के कारण होती है...”

“हाँ, मैं उसी की बात कर रहा था...”

“उस तरह की उदासीनता को दूर करने तथा नकारात्मक स्वभाव पर काबू पाने हेतु दिमाग़ की निष्ठा व उत्साह जगाने के लिए, मेरे ख़्याल से, नकारात्मक स्वभाव के दुष्प्रभावों के प्रति लगातार सजग रहना इसका सबसे प्रभावशाली और एकमात्र उपाय है। व्यक्ति को बार-बार इन विध्वंसक प्रभावों के बारे में स्वयं को याद दिलाते रहना चाहिए।”

दलाई लामा की बातें सच थीं, लेकिन मनोवैज्ञानिक होने के नाते, मैं इस बात से पूरी तरह अवगत था कि नकारात्मक व्यवहार या विचार कितने ज़्यादा प्रबल होते हैं और कुछ लोगों के लिए स्वयं को बदलना कितना मुश्किल होता है। यह मानते हुए कि अनेक जटिल व गतिशील कारण भी इसमें शामिल होते हैं, मैंने अपने मरीज़ों में बदलाव के प्रति विरोध को समझने और उसका विश्लेषण करने में असंख्य घंटे ख़र्च किए हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए, मैंने पूछा: “लोग अक्सर अपने जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने, स्वस्थ व्यवहार करने आदि के इच्छुक होते हैं। परंतु अनेक बार एक तरह की निष्क्रियता या प्रतिरोध बना रहा है... आप कैसे समझाते हैं कि यह किस तरह होता है?”

“यह बहुत आसान है...” उन्होंने सहज ढंग से कहा।

“आसान?”

“ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हम अपने कामों को एक ख़ास तरह से करने के आदी हो जाते हैं। फिर हमारी आदतें बिगड़-सी जाती हैं और हम वही करते हैं जो हमें अच्छा लगता है या जो हमें करने की आदत है।”

“परंतु हम इसे कैसे ठीक कर सकते हैं?”

“इस आदत को अपने फ़ायदे के लिए इस्तेमाल करके। लगातार दोहराने से नई आदतें डाली जा सकती हैं। एक उदाहरण देखो: मैं धर्मशाला में प्रायः सुबह 3.30 बजे उठता हूँ हालाँकि यहाँ ऐरिज़ोना में 4.30 बजे उठता हूँ। मुझे यहाँ एक घंटे की नींद ज़्यादा मिलती है।” वह हँसने लगे, फिर बोले, “शुरू में आपको इसकी आदत डालने के लिए थोड़ा प्रयास करना पड़ता है, लेकिन कुछ महीनों के बाद, यह आपकी दिनचर्या का हिस्सा बन जाता है और आपको इसके लिए कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। तो यदि आप देर से भी सोने

जाएँ तो भी आपकी इच्छा थोड़ी देर और सोने की होगी, लेकिन आप फिर भी बिना ज़्यादा कोशिश किए, 3.30 बजे उठ जाते हैं तथा आप अपने नित्यकर्म कर सकते हैं। यह अभ्यास के कारण होता है।"

"तो, लगातार अभ्यास द्वारा, मेरे विचार से हम किसी भी नकारात्मक आदत को छोड़कर अपने जीवन में सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं। फिर भी आपको यह समझना होगा कि असली बदलाव एक रात में नहीं आता। उदाहरण के लिए, मेरे अपने मामले में, यदि मैं आज के दिन अपनी सामान्य मानसिक अवस्था की बीस या तीस वर्ष पहले की अवस्था से तुलना करूँ तो बहुत अंतर आ गया है। लेकिन यह बदलाव एक-एक कदम चलकर आया है। मैंने पाँच या छह वर्ष की उम्र में बौद्ध धर्म पढ़ना शुरू किया था लेकिन उस समय मेरी बौद्ध धर्म पढ़ने में रुचि नहीं थी, वह हँसे, "हालाँकि मुझे उस समय श्रेष्ठ अवतार माना जाता था। शायद सोलह साल की उम्र के बाद ही मैंने बौद्ध धर्म को गंभीरता से समझना शुरू किया। मैंने इसका गंभीर अभ्यास भी आरंभ किया। उसके बाद अनेक वर्षों तक मैं बौद्ध धर्म के सिद्धांतों और प्रणालियों को समझता रहा, जो शुरू में असंभव और लगभग अस्वाभाविक लगते थे लेकिन बाद में स्वाभाविक और सरल हो गए। यह नियमित अभ्यास से संभव हो पाया। निश्चय ही, इस प्रक्रिया को चालीस साल से भी ज़्यादा लगे हैं।"

"तो, आपने देखा कि मानसिक विकास होने में समय लगता है। यदि कोई कहता है, 'ओह, इतने सालों की परेशानी के बाद चीज़ें बदल गई हैं,' तो मैं इस बात को गंभीरता से लेता हूँ। ऐसे में उन बदलावों के असली और स्थायी होने की संभावना अधिक होती है। यदि कोई कहे, 'ओह, बहुत कम समय में, मान लीजिए दो साल में, बहुत बड़ा बदलाव आया है,' तो मुझे लगता है कि यह सच नहीं होता।"

बदलाव को लेकर दलाई लामा की सोच निश्चित रूप से सही थी, किंतु एक बात थी जिसका निपटारा होना बाकी था:

"एक तरफ़ आपने मस्तिष्क को बदलने और सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए उच्च स्तर के उत्साह और निश्चय की बात की। दूसरी तरफ़ हम यह मानते हैं कि सच्चा बदलाव धीरे-धीरे होता है और इसमें बहुत लंबा समय लगता है," मैंने कहा। "अगर बदलाव इतना धीरे आता है तो व्यक्ति आसानी से हताश हो सकता है। क्या आपको कभी आध्यात्मिक अभ्यास के दौरान धीमी गति से होने वाली प्रगति से निराशा नहीं हुई या आप जीवन के अन्य क्षेत्रों में हतोत्साहित नहीं हुए?"

"हाँ, ऐसा हुआ है," उन्होंने कहा।

"तब आपको कैसा लगता था?" मैंने पूछा।

"जहाँ तक मेरे अपने आध्यात्मिक अभ्यास का प्रश्न है, यदि मेरे सामने कोई बाधा या समस्या आती है तो मैं थोड़ा रुककर अल्प-कालिक दृष्टिकोण की जगह दीर्घ-कालिक नज़रिया अपनाता हूँ। इस संदर्भ में, एक विशेष प्रार्थना के बारे में सोचने से मुझे हिम्मत मिलती है और मैं अपने संकल्प पर कायम रह पाता हूँ। वह इस तरह है:

जब तक यह आकाश है
जब तक प्राणियों में चेतना है
इस संसार के दुखों को दूर करने के लिए
तब तक मैं भी जीवित रहूँ।

"हालाँकि जहाँ तक तिब्बत की आज़ादी की लड़ाई का सवाल है, यदि मैं इस तरह का विश्वास, इन प्रार्थनाओं का प्रयोग करूँगा - 'युगों युगों तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार रहूँगा... जब तक यह आकाश है,' - तो मेरे ख़्याल में यह मूर्खता होगी। यहाँ व्यक्ति को तत्काल और सक्रिय भूमिका निभानी है। निश्चय ही, मैं स्वतंत्रता की लड़ाई के संदर्भ में, जब चौदह या पंद्रह सालों की परिणामरहित वार्ता के बारे में, पंद्रह सालों की असफलता के विषय में सोचता हूँ तो मेरे अंदर भी अधैर्य या हताशा का भाव पैदा होने लगता है। परंतु हताशा का यह भाव मुझे उम्मीद छोड़ देने की हद तक निराश नहीं कर पाता।"

मैंने इस बात पर थोड़ा और ज़ोर देते हुए पूछा, "परंतु ऐसा क्या है जिससे आपकी उम्मीद नहीं छूटती?"

"तिब्बत के मामले में भी, मेरे ख़्याल से स्थिति को व्यापक नज़रिए से देखने पर मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, यदि मैं तिब्बत की भीतरी परिस्थितियों को संकीर्ण दृष्टिकोण से देखूँ और सिर्फ़ उसी पर ध्यान दूँ तो स्थिति सचमुच आशाहीन प्रतीत होती है। परंतु अगर मैं इसे व्यापक नज़रिए से, विश्व के दृष्टिकोण से देखूँ तो मुझे ऐसी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति दिखाई देती है जहाँ सारे साम्यवादी और सर्वसत्तावादी तंत्र नष्ट हो रहे हैं, जहाँ चीन तक में लोकतांत्रिक आंदोलन चल रहा है और तिब्बतियों की आशा बँधी हुई है। इसलिए मैं उम्मीद नहीं छोड़ता।"

बौद्ध दर्शन और ध्यान के क्षेत्र में दलाई लामा की व्यापक पृष्ठभूमि एवं उनके प्रशिक्षण को देखते हुए, यह अत्यंत रोचक बात है कि वे श्रेष्ठ एवं गूढ़ आध्यात्मिक पद्धतियों के बजाय सीखने की प्रक्रिया और शिक्षा को भीतरी बदलाव के लिए पहला कदम मानते हैं। हालाँकि शिक्षा को नई कलाएँ सीखने या अच्छी नौकरी पाने के लिए महत्त्वपूर्ण समझा जाता है, ख़ुश रहने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को सामान्यतया नज़रअंदाज किया गया है। अध्ययन बताते हैं कि विशुद्ध अकादमिक शिक्षा का ख़ुशहाल जीवन से भी सीधा संबंध है। अनेक सर्वेक्षणों से यह निष्कर्ष निकला है कि उच्च शिक्षा का बेहतर स्वास्थ्य और लंबे जीवन से सीधा संबंध है और यह व्यक्ति को डिप्रेशन से भी बचाती है। शिक्षा के इन लाभकारी प्रभावों के कारणों को जानने के लिए, वैज्ञानिक यह तर्क देते हैं कि अधिक शिक्षित लोग स्वास्थ्य के खतरों से ज़्यादा अवगत होते हैं, वे स्वस्थ जीवनशैली को बेहतर ढंग से लागू कर पाते हैं, उनमें सशक्तिकरण और आत्म-सम्मान का भाव अधिक प्रबल होता है, वे समस्याओं को सुलझाने में अधिक कुशल होते हैं तथा रणनीतियों को ज़्यादा प्रभावशाली तरीके से

अपना सकते हैं - ये सभी बातें अधिक ख़ुशहाल और स्वस्थ जीवन में योगदान देती हैं। यदि सिर्फ़ अकादमिक शिक्षा ख़ुश रहने में मदद कर सकती है - तो दलाई लामा द्वारा बताई गई सीखने व शिक्षा की पद्धति कितनी शक्तिशाली हो सकती है - ऐसी शिक्षा जो ख़ास तौर पर स्थायी ख़ुशी देने वाले तत्त्वों के पूरे समूह को समझने और लागू करने पर ध्यान देती है।

बदलाव के मार्ग पर दलाई लामा का अगला कदम "दृढ़ निश्चय और उत्साह" से संबंधित है। यह कदम भी पाश्चात्य विज्ञान द्वारा व्यक्ति के लक्ष्य पूर्ति में महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया गया है। उदाहरण के लिए, एक अध्ययन में शिक्षाविद् मनोवैज्ञानिक बेंजेमन ब्लूम ने अमरीका के सबसे विख्यात कलाकारों, धावकों और वैज्ञानिकों के जीवन का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि प्रतिभा नहीं, बल्कि इच्छा और दृढ़ निश्चय के कारण वे लोग अपने-अपने क्षेत्र में सफल हो पाए थे। हम यह मान सकते हैं कि किसी भी अन्य क्षेत्र की तरह, यह सिद्धांत आनंद का सरल मार्ग पर भी समान रूप से लागू होता है।

व्यवहार संबंधी शोधकर्त्ताओं ने हमारे कार्यों को शुरू, चालू और दिशा देने वाली प्रक्रियाओं का व्यापक अध्ययन किया है और इस क्षेत्र को "मानव प्रेरणा" नाम दिया है। मनोवैज्ञानिकों ने तीन प्रमुख उद्देश्य बताए हैं। पहला, मुख्य उद्देश्य, जो जैविक ज़रूरतों पर आधारित इच्छाएँ हैं जिनकी पूर्ति जीवित रहने के लिए आवश्यक है। इनमें भोजन, पानी और हवा प्रमुख हैं। दूसरे प्रकार के उद्देश्य मनुष्य को प्रेरित और सूचित करने के लिए ज़रूरी हैं। शोधकर्त्ताओं का मानना है कि यह जन्मजात आवश्यकता है जो स्नायु तंत्र के पूर्ण विकास और उसके सुचारू ढंग से कार्य करने के लिए आवश्यक है। तीसरी तरह के उद्देश्य गौण उद्देश्य कहलाते हैं जो बौद्धिक आवश्यकताओं व इच्छाओं के लिए आवश्यक हैं। अनेक गौण उद्देश्य सफलता, ताकत, पद और उपलब्धि से संबंध रखते हैं। प्रेरणा के इस स्तर पर, व्यक्ति का स्वभाव और इच्छाएँ सामाजिक शक्तियों द्वारा प्रभावित हो सकती हैं तथा उन्हें सीखने की प्रक्रिया द्वारा आकार मिलता है। यह वह चरण है जहाँ आधुनिक मनोविज्ञान के साथ दलाई लामा द्वारा बताए "निश्चय और उत्साह" की धारणा का मिलन होता है। हालाँकि दलाई लामा के तरीके में, इच्छाशक्ति और दृढ़ता सिर्फ़ भौतिक सफलता की प्राप्ति के लिए उपयोग नहीं किए जाते बल्कि असली ख़ुशी के कारणों का स्पष्ट बोध होने से उनका विकास होता है और ये दया, करुणा तथा आध्यात्मिक उत्थान के उच्चतर लक्ष्यों के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

बदलाव के लिए "प्रयास" अंतिम तत्त्व है। दलाई लामा प्रयास को नए व्यवहार की स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं। अपने नकारात्मक स्वभाव और विचारों को बदलने की धारणा को न सिर्फ़ पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों ने माना है, बल्कि यह समकालीन व्यवहार चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण आधार है। यह चिकित्सा पद्धति इस मूल सिद्धांत पर आधारित है कि लोग जैसे हैं वैसे ही रहते हैं और नए किस्म का व्यवहार विकसित करने के लिए बताया गया तरीका व्यवहार चिकित्सा अधिकतर समस्याओं के समाधान के लिए प्रभावी सिद्ध हुई है।

विज्ञान ने हाल ही में यह उजागर किया है कि व्यक्ति की संसार के प्रति उनके व्यवहार

संबंधी विशिष्टताओं में आनुवांशिक विन्यास बड़ी भूमिका निभाता है, लेकिन अधिकतर सामाजिक वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि हमारा व्यवहार, सोच और महसूस करने का तरीका हमारी शिक्षा और इस बात पर निर्भर करता है कि हमने अपने सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में शुरू से क्या सीखा है। चूंकि यह माना जाता है कि हमारा व्यवहार मुख्य रूप से अनुबंधन से तय होता है, तथा "अभ्यास" द्वारा मज़बूत व वर्धित होता है, दलाई लामा के मतानुसार, इससे हानिकारक या नकारात्मक स्वभाव को दूर करने तथा उसके स्थान पर लाभकारी व जीवनवर्धक स्वभाव को विकसित करने की संभावना बनती है।

बाहरी स्वभाव को बदलने के लिए निरंतर प्रयास करने से न सिर्फ़ बुरी आदतों को दूर किया जा सकता है बल्कि इससे हम अपने व्यवहार और अपनी भावनाओं को भी बदल सकते हैं। प्रयोग बताते हैं कि हमारे स्वभाव का निर्धारण न सिर्फ़ हमारे दृष्टिकोण व मनोवैज्ञानिक विशेषताओं पर निर्भर करता है, जो कि आम तौर पर स्वीकृत विचार भी है, बल्कि हमारा स्वभाव भी हमारे नज़रिए को बदल सकता है। खोज करने वालों ने यह पाया कि कृत्रिम रूप से भँवें सिकोड़ने या मुस्कराने से भी गुस्से या ख़ुशी का भाव पैदा होता है; इससे यह पता लगता है कि "किसी भाव को व्यक्त करने से" और बार-बार सकारात्मक व्यवहार दर्शाने से हमारे अंदर सचमुच भीतरी बदलाव आ सकता है। इस बात का दलाई लामा द्वारा बताए गए ख़ुशहाल जीवन जीने के तरीके पर महत्त्वपूर्ण असर पड़ सकता है। उदाहरण के लिए, अगर हमारे अंदर सचमुच दया या देखभाल करने का भाव नहीं है, तो भी यदि हम दूसरों की मदद करने के साधारण कार्य से शुरुआत करें तो हम पाएँगे कि हमारे भीतर बदलाव आ रहा है और करुणा का सच्चा भाव जागृत हो रहा है।

यथार्थवादी अपेक्षाएँ

सच्चा आंतरिक रूपांतरण और बदलाव लाने के संदर्भ में, दलाई लामा निरंतर प्रयास करते रहने पर ज़ोर देते हैं। यह धीमी प्रकिया है। यह "शीघ्र उपचार" वाली आत्म-सहायक - "सकारात्मक सुझाव" और "अपने भीतर के बालक को खोजना" - जैसी तकनीकों और पद्धतियों से बिल्कुल भिन्न है जो हाल के दशकों में पाश्चात्य संस्कृति के बीच अत्यंत लोकप्रिय हो गई हैं।

दलाई लामा का तरीका धीमी प्रगति और परिपक्वता की ओर इशारा करता है। वह मस्तिष्क की विशाल, शायद असीमित शक्तियों में विश्वास करते हैं, लेकिन ऐसा मस्तिष्क जिसे व्यवस्थित ढंग से वर्षों के अनुभव एवं तर्क से प्रशिक्षित और तैयार किया गया है। समस्या बढ़ाने वाले मस्तिष्क के स्वभाव और उसकी आदतों को विकसित करने में काफ़ी समय लगता है। ख़ुशी देने वाली नई आदतों को विकसित करने में भी उतना ही समय लगता है। इन ज़रूरी तत्त्वों से बचा नहीं जा सकता: निश्चय, प्रयास और समय। यही ख़ुश रहने के वास्तविक रहस्य हैं।

बदलाव के मार्ग पर यात्रा आरंभ करते समय, उचित उम्मीदें रखना ज़रूरी होता है। अगर हमारी उम्मीदें बहुत ज़्यादा होंगी तो हमें बाद में निराशा हो सकती है। अगर वह बहुत कम होंगी तो अपनी सीमाओं को चुनौती देने और अपने वास्तविक सामर्थ्य को प्राप्त करने की हमारी इच्छाशक्ति कमज़ोर पड़ सकती है। बदलाव की प्रक्रिया पर अपनी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए दलाई लामा ने बताया:

"यथार्थवादी दृष्टिकोण के महत्त्व को कभी नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए - यानि अपने अंतिम लक्ष्य के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए अपनी परिस्थिति की ठोस वास्तविकता के प्रति अत्यंत संवेदनशील होना और उसका सम्मान करना आवश्यक है। अपने मार्ग की कठिनाइयों को पहचानिए और इस बात को समझिए कि इसमें समय और निरंतर प्रयास की ज़रूरत होती है। आगे बढ़ते समय अपने दिमाग़ में अपने आदर्शों और अपने मानकों के बीच के अंतर को स्पष्ट करना ज़रूरी है। उदाहरण के लिए, बौद्धधर्मी होने के नाते आप बहुत ऊँचे आदर्श स्थापित कर लेते हैं: पूर्ण बोध आपका अंतिम लक्ष्य होता है। पूर्ण बोध को अपना आदर्श मानना चरम स्थिति नहीं है, लेकिन उसे जल्दी, वर्तमान क्षण में प्राप्त करने की अपेक्षा करना चरम स्थिति बन सकती है। उसे आदर्श न मानकर, मानक समझने से आपको निराशा हो सकती है और वह जल्द प्राप्त न होने पर आपकी उम्मीद पूरी तरह नष्ट हो सकती है। इसलिए आपको यथार्थवादी होना चाहिए। दूसरी ओर, यदि आप कहते हैं, 'मैं सिर्फ़ वर्तमान क्षण पर ध्यान दूँगा; यही व्यावहारिक चीज़ है और मुझे भविष्य की या बुद्धित्व की प्राप्ति की कोई परवाह नहीं है' तो यह भी एक चरम स्थिति है। इसलिए हमें एक ऐसा रास्ता खोजना है जो बीच का हो। हमें संतुलित रहना है।"

"उम्मीदों से निपटना सचमुच पेचीदा मामला है। यदि उम्मीदें ज़्यादा हो जाएँ और उनका उचित आधार न हो तो समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। दूसरी ओर, उम्मीद और आशा के बिना, अभिलाषाओं के अभाव में प्रगति संभव नहीं है। थोड़ी आशा रखना ज़रूरी है। तो सही संतुलन स्थापित करना सरल नहीं होता। व्यक्ति को प्रत्येक स्थिति को तत्काल आँकना होता है।"

♦ ♦ ♦

पर्याप्त समय और प्रयास की मदद से हम निश्चित रूप से नकारात्मक स्वभाव और दृष्टिकोण को थोड़ा बदल सकते हैं, लेकिन मेरे मन में अब भी था कि क्या सचमुच नकारात्मक भावों को पूरी तरह दूर किया जा सकता है? मैंने दलाई लामा को संबोधित करते हुए कहा, "हमने इस विषय में बात की कि नकारात्मक व्यवहार - जैसे क्रोध, घृणा, लालच, आदि - को दूर करने और अपनी मानसिक अवस्था को ठीक करने पर हमारी ख़ुशी निर्भर करती है..."

दलाई लामा ने हामी भरी।

"परंतु इस तरह के भाव हमारे मनोवैज्ञानिक विन्यास का स्वाभाविक अंश होते हैं। सभी मनुष्य इन नकारात्मक भावों को किसी न किसी सीमा तक अनुभव करते हैं। और यदि

ऐसा है तो क्या अपने आप से घृणा, नकारना या लड़ना उचित है? मेरा मतलब है कि कुछ ऐसा जो आपके प्राकृतिक विन्यास का अभिन्न हिस्सा है, उसे पूरी तरह समाप्त कर देना अव्यावहारिक और अस्वाभाविक लगता है।"

दलाई लामा ने सिर हिलाते हुए कहा, "हाँ, कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि ग़ुस्सा, घृणा और अन्य नकारात्मक भाव हमारे स्वभाव का अभिन्न हिस्सा होते हैं, इसलिए उन्हें सचमुच बदलने का कोई तरीका नहीं है। परंतु यह बात ग़लत है। उदाहरण के लिए, हमारा जन्म होता है तो हम अज्ञानी होते हैं। इस तरह तो अज्ञानता भी स्वाभाविक है। युवा होने पर भी वह अज्ञान बना रहता है। परंतु बड़े होने पर शिक्षा अर्जित करके हम ज्ञान प्राप्त करते हैं और हमारी अज्ञानता दूर हो जाती है। यदि हम प्रयास द्वारा अपनी अज्ञानता को दूर न करें तो हम ऐसे ही अज्ञानी रह जाएँगे। तो यदि हम स्वयं को 'प्राकृतिक अवस्था' में रहने दें और उसे दूर करने के लिए कोई प्रयास न करें तो इसके विपरीत शिक्षा की ताकत और सीखने की शक्ति हमें कभी प्राप्त नहीं हो सकती। इसी तरह, उचित प्रशिक्षण से हम धीरे-धीरे नकारात्मक भावनाओं को कम करके प्रेम, करुणा और क्षमाशीलता जैसी सकारात्मक मानसिक अवस्था में वृद्धि कर सकते हैं।"

"परंतु यदि यह सब हमारी मानसिकता में शामिल हैं तो हम उन चीज़ों से लड़ने में सफल कैसे हो सकते हैं जो हमारा अपना अंश हैं?"

"यह समझने के लिए कि नकारात्मक भावनाओं से किस तरह लड़ा जाए, यह जानना ज़रूरी है कि मनुष्य का मस्तिष्क किस तरह कार्य करता है," दलाई लामा ने उत्तर दिया। "मानव मस्तिष्क बहुत पेचीदा होता है। लेकिन यह अत्यंत कुशल भी है। यह विभिन्न परिस्थितियों से निपटने के अनेक तरीके जानता है। इंसान के दिमाग़ में अनेक तरह के दृष्टिकोण अपनाने की क्षमता है जिनके माध्यम से वह विभिन्न समस्याओं को सुलझा सकता है।"

"बौद्ध धर्म में, विभिन्न नज़रियों को आत्मसात करने की क्षमता का अनेक किस्म के ध्यान में प्रयोग किया जाता है जिसमें आप मानसिक तौर पर स्वयं को विभिन्न पहलुओं में अलग कर लेते हैं और फिर उनके बीच परस्पर संवाद होता है। जैसे: परोपकार के भाव को जागृत करने के लिए एक तरह का ध्यान होता है, जिसमें आप यानि आध्यात्मिक प्रशिक्षु अपने ही 'स्वार्थी स्वभाव', ऐसी प्रवृत्ति जो आत्म-केंद्रित है, के साथ संवाद करते हैं। इसे संवादीय संबंध कह सकते हैं। इसी तरह घृणा और ग़ुस्सा आपकी अपनी नकारात्मक विशिष्टताएँ है, आप थोड़ा प्रयास करके ग़ुस्से या घृणा को वस्तु मानकर उनके साथ लड़ सकते हैं।"

"इसके अतिरिक्त, रोज़ के अनुभव से आप स्वयं को ऐसी परिस्थितियों में पाते हैं जहाँ आप खुद को दोष देते हैं या अपनी ही निंदा करते हैं। आप कहते हैं, 'ओह, उस दिन मैं अपने ही कारण लज्जित हुआ।' उसके बाद आप खुद की निंदा करते हैं या कुछ ग़लत करने के लिए खुद को दोष देते हैं और आपको खुद पर ग़ुस्सा आता है। यहाँ भी आप स्वयं से ही संवाद करते हैं। वास्तव में, यहाँ दो अलग लोग नहीं हैं, बल्कि यह एक ही व्यक्ति की

अविच्छिन्नता है। फिर भी खुद को कोसना या अपने ऊपर ग़ुस्सा होना ठीक लगता है। यह सब आप अपने अनुभव से जानते हैं।”

“तो, हालाँकि वास्तव में, सतत वस्तु श्रंखला एक ही व्यक्ति की है, आप दो भिन्न नज़रिए अपना सकते हैं। जब आप खुद को दोष देते हैं तो क्या होता है? जो ‘मैं’ दोष दे रहा है, वह आपके समग्र रूप का नज़रिया है और जिस ‘मैं’ को दोष दिया जा रहा है, वह किसी विशिष्ट अनुभव या घटना के संदर्भ में अलग दृष्टिकोण होता है। इस तरह आप ‘खुद-से-खुद के रिश्ते’ की संभावना को महसूस कर सकते हैं।”

‘इस बिंदु को विस्तार देते हुए, अपने निजी व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के बारे में सोचना लाभप्रद होता है। हम तिब्बती बौद्ध भिक्षु का उदाहरण लेते हैं। बौद्ध भिक्षु होने के नज़रिए से, ‘मैं भिक्षु हूँ’ वाली एक निजी पहचान हो सकती है। साथ ही, उसकी एक और निजी पहचान हो सकती है जो उसके भिक्षु होने पर ज़्यादा आधारित न होकर उसके प्रजातीय मूल, जैसे: तिब्बती होने से संबंधित हो और वह यह कहे, ‘मैं तिब्बती हूँ।’ इसके अतिरिक्त, किसी अन्य स्तर पर उस व्यक्ति की एक और पहचान हो सकती है जिसमें उसके भिक्षुक या तिब्बती होने की कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं होती। वह सोच सकता है, ‘मैं मनुष्य हूँ।’ तो इस तरह आप एक ही व्यक्ति के अंदर अलग-अलग दृष्टिकोण देख सकते हैं।

“यह इस बात की ओर इशारा करता है कि जब हम किसी बात से अवधारणात्मक ढंग से जुड़ते हैं तो हम एक ही बात को अनेक दृष्टिकोणों से देख पाते हैं। चीज़ों को अलग-अलग नज़रियों से देखने की क्षमता बहुत विशिष्ट होती है; हम किसी एक बात पर, उस घटना के किसी एक पक्ष को देख सकते हैं और अपना दृष्टिकोण बना सकते हैं। जब हम अपने स्वभाव के कुछ नकारात्मक पहलुओं को पहचानकर उन्हें दूर करने का या कुछ सकारात्मक विशेषताएँ विकसित करने का प्रयास करते हैं तो हमारी यह क्षमता बहुत काम आती है। अलग दृष्टिकोण अपनाने के इस सामर्थ्य के कारण हम स्वयं के उन हिस्सों को, जिन्हें हम दूर करना चाहते हैं, अपने से अलग करके उनसे लड़ सकते हैं।”

“इस विषय की आगे जाँच करते हुए, एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है: हालाँकि हम क्रोध, घृणा और अन्य नकारात्मक भावों से लड़ सकते हैं, पर इस बात की क्या गारंटी है कि इस लड़ाई में हम जीत जाएँगे?”

“इन नकारात्मक भावों के बारे में बात करते हुए, मैं यह बता दूँ कि मैं तिब्बती में न्यॉन मौंग तथा संस्कृत में क्लेश की बात कर रहा हूँ। इस शब्द का अर्थ है ‘जो भीतर से कष्ट दे।’ यह लंबा शब्द है, इसलिए इसे ‘भ्रम’ कहा जाता है। तिब्बती शब्द न्यॉन मौंग की व्युत्पत्ति इस बात की ओर संकेत करती है कि यह भावनात्मक और बौद्धिक विषय है जो आपके दिमाग़ को परेशान करता है, आपकी शांति भंग करता है या आपके दिमाग़ में बेचैनी पैदा करता है। यदि हम ध्यान दें तो इन ‘भ्रमों’ की कष्टकारी प्रवृत्ति को पहचानना सरल होता है क्योंकि यह हमारी शांति एवं विद्वता को नष्ट कर देती है। परंतु यह जानना बहुत कठिन है कि क्या हम इनके ऊपर विजय पा सकते हैं। यही प्रश्न है जो इस बात से जुड़ा हुआ है कि क्या हमारे लिए अपने आध्यात्मिक सामर्थ्य को पूरी तरह जान पाना संभव है। यह अत्यंत

गंभीर और कठिन सवाल है।"

"तो, यह मानने के लिए हमारे पास क्या आधार है कि इन कष्टकारी भावों तथा बौद्धिक विषयों या भ्रमों को हम अपने दिमाग़ से पूरी तरह निकाल सकते हैं? बौद्ध विचारधारा में, हम तीन धारणाएँ या आधार मानते हैं जिसके कारण हमें यह विश्वास है कि ऐसा करना संभव है।"

"पहली धारणा यह है कि मस्तिष्क की सभी 'भ्रमित' अवस्थाएँ, सभी कष्टकारी भाव एवं विचार निश्चित रूप से विकृत होते हैं और वह वास्तविक परिस्थिति को ग़लत ढंग से समझते हैं। वह कितने भी शक्तिशाली हों, पर नकारात्मक भावों का कोई आधार नहीं होता। ये अज्ञानता पर आधारित होते हैं। दूसरी ओर, प्रेम, करुणा, अंतर्ज्ञान आदि सभी सकारात्मक भाव या मस्तिष्क की अवस्थाओं का ठोस आधार होता है। जिस समय दिमाग़ में ये सकारात्मक विचार होते हैं तब कोई विकार नहीं होता और ये सब सच्चाई पर आधारित होते हैं। इन्हें अपने अनुभव से सत्यापित किया जा सकता है। तर्क और बोध का आधार होता है; क्रोध और घृणा जैसे कष्टकारी भाव के मामले में ऐसा नहीं होता। इन सबके ऊपर, सभी सकारात्मक भाव में यह गुण होता है कि यदि आप प्रशिक्षण एवं नियमित रूप से इसका अभ्यास करें तो, आप इनकी क्षमता को बढ़ा सकते हैं तथा इनकी शक्ति को असीमित हद तक ले जा सकते हैं..."

मैंने टोका, "क्या आप इस बात को थोड़ा और समझा सकते हैं कि सकारात्मक अवस्था का 'वैध आधार' होता है और नकारात्मक अवस्था का 'कोई वैध आधार' नहीं होता?"

उन्होंने स्पष्ट किया, "उदाहरण के लिए, करुणा को सकारात्मक भाव माना जाता है। करुणा को जागृत करने के लिए आपको यह समझना पड़ेगा कि आप पीड़ा नहीं चाहते और आपको ख़ुश रहने का अधिकार है। इसे आपके अपने अनुभव से जाँचा या सत्यापित किया जा सकता है। फिर आप यह जान जाते हैं कि आप की तरह, दूसरे भी कष्ट नहीं सहना चाहते और उन्हें भी ख़ुश रहने का अधिकार है। यह आपके लिए करुणा को विकसित करने के आरंभ का आधार बनता है।"

"भाव या मानसिक अवस्थाएँ दो तरह की होती हैं: सकारात्मक और नकारात्मक। इन भावों को वर्गीकृत करने का एक तरीका यह समझना है कि सकारात्मक भाव वे हैं जो उचित होते हैं और जिनका औचित्य नहीं होता, वे नकारात्मक भाव होते हैं। उदाहरण के लिए, हमने पहले इच्छा के विषय पर चर्चा की, सकारात्मक और नकारात्मक इच्छाएँ किस तरह की होती हैं। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की गई इच्छा सकारात्मक मानी जाती है। यह उचित है। यह इस तथ्य पर आधारित है कि हम सबका अस्तित्व है और हम सबको जीने का अधिकार है। जीने के लिए हमें कुछ चीज़ों की आवश्यकता होती है, कुछ ज़रूरतें हैं जिन्हें पूरा करना पड़ता है। इस तरह की इच्छा का वैध आधार होता है। हमने एक और तरह की इच्छा की बात भी की थी, जैसे: अत्यधिक आकांक्षा और लालच जो कि नकारात्मक इच्छाएँ हैं। इनका कोई वैध आधार नहीं होता और

यह हमारे लिए परेशानी पैदा करती हैं तथा हमारे जीवन को जटिल बना देती हैं। ये इच्छाएँ असंतोष, अत्यधिक चाह पर आधारित होती हैं। ये वे चीज़ें हैं जिनकी हमें ज़रूरत नहीं होती। इनका कोई ठोस कारण भी नहीं होता। इस तरह आप कह सकते हैं कि सकारात्मक भावों का ठोस एवं वैध आधार होता है जबकि नकारात्मक भावों का कोई आधार नहीं होता।"

मानव मस्तिष्क की पड़ताल को जारी रखते हुए दलाई लामा दिमाग़ी हरकतों का ठीक उसी तरह विश्लेषण करते रहे जैसे एक वनस्पति विशेषज्ञ दुर्लभ फूलों का विश्लेषण करता है।

"अब हम दूसरी धारणा पर आते हैं, जिस पर हमारा यह दावा आधारित है कि नकारात्मक भावनाओं को दूर या नष्ट किया जा सकता है। यह धारणा इस तथ्य पर आधारित है कि मस्तिष्क की सकारात्मक अवस्था हमारी नकारात्मक प्रवृत्तियों और भ्रामक मानसिक अवस्थाओं के लिए प्रतिकार का काम करती हैं। तो यह दूसरी धारणा यह है कि जैसे-जैसे आप इन प्रतिकारात्मक तत्त्वों की क्षमता को बढ़ाते हैं, ये जितने शक्तिशाली होते हैं, आप उतना ही ज़्यादा मानसिक और भावनात्मक कष्टों के असर को कम कर सकते हैं, आप उतना ही अधिक इन चीज़ों के असर और दुष्प्रभावों में कमी ला सकते हैं।"

"नकारात्मक अवस्था को समाप्त करने के संदर्भ में एक बात को ध्यान में रखना चाहिए। बौद्धधर्म के अंतर्गत कुछ धैर्य, सहनशीलता, दया आदि जैसे सकारात्मक मानसिक गुणों के विकास द्वारा क्रोध, घृणा और आसक्ति जैसे नकारात्मक भावों का प्रतिकार किया जा सकता है। प्रेम और करुणा जैसे प्रतिकारक तत्वों के प्रयोग से मानसिक व भावनात्मक कष्टों के प्रभाव को कम किया जा सकता है, परंतु चूंकि इनसे कुछ ख़ास किस्म के या व्यक्तिगत भावों को ही दूर किया जा सकता है, इसलिए इन्हें आंशिक उपचार माना जाता है। ये कष्टकारी भाव जैसे आसक्ति एवं घृणा की जड़ें वास्तव में अज्ञानता - यानि सत्य के विषय में भ्रम की स्थिति - में छिपी होती हैं। इसलिए सभी बौद्ध परंपराओं में इस बात पर आम सहमति है कि इन नकारात्मक प्रवृत्तियों को पूरी तरह दूर करने के लिए व्यक्ति को अज्ञानता के प्रतिकार - 'विवेक तत्त्व' - का उपयोग करना चाहिए। इसका होना अनिवार्य है। 'विवेक तत्त्व' का अर्थ सत्य का ज्ञान होना है।"

"तो, बौद्ध परंपरा में हमारे पास न सिर्फ़ विशिष्ट मानसिक अवस्थाओं के प्रतिकार मौजूद हैं, जैसे: क्रोध व घृणा के प्रतिकार के रूप में धैर्य व सहनशीलता, बल्कि हमारे पास एक सामान्य प्रतिकार भी है - सत्य का ज्ञान - यह समस्त नकारात्मक मानसिक अवस्थाओं को दूर कर देता है। यह किसी ज़हरीले पौधे से मुक्ति पाने की तरह है: आप उस पौधे की पत्तियाँ और टहनियाँ काटकर उसके कुछ हानिकारक प्रभावों को दूर कर सकते हैं या फिर आप उसे जड़ से उखाड़कर समूचे पौधे को नष्ट कर सकते हैं।"

दिमाग़ की नकारात्मक अवस्थाओं को दूर करने की संभावना के विषय में चर्चा को समाप्त करते हुए दलाई लामा ने बताया, "तीसरी धारणा यह है कि मस्तिष्क की मूल प्रकृति शुद्ध होती है। यह इस विश्वास पर आधारित है कि हमारी मूल सूक्ष्म चेतना

नकारात्मक भावों से दूषित नहीं होती। यह शुद्ध रहती है, जिसे 'शुद्ध प्रकाशमान मस्तिष्क' कहा जाता है। मस्तिष्क की इसी मूल प्रकृति को बुद्धित्व कहा गया है। चूंकि नकारात्मक भाव बुद्धित्व का अंश नहीं होते, इसलिए उन्हें दूर करके मस्तिष्क को शुद्ध करने की संभावना होती है। "इन तीन धारणाओं पर बौद्ध धर्म यह मानता है कि मानसिक एवं भावनात्मक कष्टों को ध्यान एवं अन्य पद्धतियों तथा प्रेम, करुणा, सहनशीलता और क्षमाशीलता की प्रतिकारक क्षमता द्वारा पूरी तरह मिटाया जा सकता है।"

इस विषय पर कि मस्तिष्क की मूल प्रकृति शुद्ध होती है और यह कि हम अपनी नकारात्मक सोच को पूरी तरह मिटा सकते हैं, मैंने पहले भी दलाई लामा को बोलते सुना है। उन्होंने मस्तिष्क की तुलना मटमैले पानी से भरे गिलास से की थी। यह कष्टकारी मानसिकता "अशुद्धयाँ" या मिट्टी है जिसे हटाकर गिलास के पानी की मूलतः "शुद्ध" प्रकृति को दर्शाया जा सकता है। यह सुनने में ज़्यादा अमूर्त लग रहा था, इसलिए इसे थोड़ा व्यावहारिक बनाने के उद्देश्य से मैंने उन्हें टोका।

"मान लीजिए, व्यक्ति नकारात्मक भाव को दूर करने की संभावना को स्वीकार कर लेता है और उस दिशा में काम भी करने लगे। हमारी चर्चा से मुझे लगता है कि उसे इन भावों को दूर करने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ेगा - बहुत-सा अध्ययन, चिंतन, प्रतिकारक तत्त्वों का निरंतर उपयोग, गहन ध्यान अभ्यास आदि। ये सब करना किसी भिक्षु या ऐसे व्यक्ति के लिए संभव हो सकता है जिसके पास इन चीज़ों के लिए पर्याप्त समय हो। परंतु परिवार में रहने वाला साधारण व्यक्ति क्या करेगा जिसके पास ये सारे अभ्यास करने का समय या अवसर न मिलता हो? क्या उसके लिए यह उपयुक्त नहीं होगा कि इन्हें पूरी तरह नष्ट करने की कोशिश करने के बजाय, वह अपने इस कष्टकारी भाव को नियंत्रित करने का प्रयास करे और उनके साथ रहने की आदत डाल ले? मधुमेह के मरीज़ों के साथ ऐसा ही होता है। उनके पास अपनी बीमारी का पूर्ण इलाज नहीं होता, लेकिन अपने आहार पर नियंत्रण करके, इंसुलिन आदि लेकर वह अपने रोग को नियंत्रित करते तथा स्वयं को बीमारी के लक्षणों एवं दुष्प्रभावों से बचाकर रखते हैं।"

"हाँ, यही तरीका है!" उन्होंने उत्साहपूर्वक कहा। "मैं आपसे सहमत हूँ। नकारात्मक भावनाओं के प्रभाव को कम करने के लिए व्यक्ति, छोटे ही सही, लेकिन जो भी कदम उठाए, वे उसके लिए सहायक होते हैं। इससे अधिक लंबा और स्वस्थ जीवन जीने में मदद मिलती है। हालाँकि, साधारण व्यक्ति के लिए - जिसके पास नौकरी है, परिवार है, अपने जीवनसाथी के साथ यौन संबंध आदि हैं - आध्यात्मिक बोध के उच्च स्तर को प्राप्त करना भी संभव है। यही नहीं, ऐसे भी लोग हुए हैं जिन्होंने जीवन में बहुत देर से चालीस, पचास या अस्सी वर्ष की उम्र में गंभीर रूप से अभ्यास आरंभ किया और फिर भी वे महान और प्रबुद्धि मास्टर बन गए।"

"क्या आप स्वयं ऐसे अनेक व्यक्तियों से मिले हैं जिन्होंने आपकी नज़र में इन उच्च अवस्थाओं को प्राप्त किया हो?" मैंने पूछा।

"मेरे ख़्याल से यह जान पाना बहुत, बहुत ही कठिन होता है। मुझे लगता है कि सच्चे

और निष्ठावान लोग इन चीज़ों का कभी दिखावा नहीं करते।” वह हँस दिए।

पश्चिम में अनेक लोग ख़ुश रहने के लिए धर्म की ओर मुड़ जाते हैं। फिर भी दलाई लामा की सोच पाश्चात्य धर्मों से मूल रूप से इस अर्थ में भिन्न है कि यह विश्वास की अपेक्षा तर्क और मस्तिष्क के प्रशिक्षण पर अधिक निर्भर करती है। कुछ मामलों में, दलाई लामा की सोच दिमाग़ी विज्ञान से मेल खाती है, ऐसी पद्धति जिसे व्यक्ति उसी तरह प्रयोग कर सकता है जिस तरह लोग मनोचिकित्सा का उपयोग करते हैं। परंतु दलाई लामा इससे आगे की बात करते हैं। हम लोग जहाँ ख़ास किस्म की बुरी आदतों - धूम्रपान, शराब पीना, ग़ुस्सा करना - के लिए व्यवहार चिकित्सा जैसे मनोचिकित्सीय उपचार के आदी हैं, हमें नकारात्मक भावनाओं तथा ऐसी मानसिकता के विरुद्ध प्रेम, करुणा, धैर्य और दया जैसे सकारात्मक गुणों को हथियार की तरह प्रयोग करने की आदत नहीं है। ख़ुश रहने के लिए दलाई लामा के तरीके इस क्रांतिकारी विचारधारा पर आधारित हैं कि नकारात्मक मानसिकता हमारे दिमाग़ का आंतरिक हिस्सा नहीं होती; ये अस्थायी बाधाएँ हैं जो मूल रूप से ख़ुश व आनंदपूर्वक रहने की स्वाभाविक अवस्था की अभिव्यक्ति में रुकावट पैदा करती हैं।

पाश्चात्य मनोचिकित्सा की अनेक परंपरागत विचारधाराएँ व्यक्ति के संपूर्ण दृष्टिकोण को बदलने के बजाय तंत्र प्रणाली को स्थिति के अनुकूल बनाने पर ध्यान देती हैं। वे मरीज़ के भीतरी संघर्ष, उसके अचेतन उद्देश्यों एवं उसकी परेशानियों या दुखों को बढ़ाने वाले मनोवैज्ञानिक गतिविज्ञान को सुलझाने के प्रयास में, उसके निजी इतिहास, उसके रिश्ते, उसके दैनिक अनुभव (स्वप्न और कल्पनाओं समेत) और यहाँ तक कि चिकित्सक के साथ उसके संबंध की भी जाँच-पड़ताल करते हैं। इस सबका उद्देश्य दिमाग़ को सीधे ख़ुश रहने के लिए तैयार न करके, उसे सामना करने के बेहतर तरीके बताना तथा लक्षणों में बदलाव करके उन्हें कम करना होता है।

दिमाग़ को प्रशिक्षित करने के लिए दलाई लामा द्वारा सुझाए तरीकों की मुख्य विशेषता उनका यह विचार है कि सकारात्मक मानसिक अवस्था द्वारा ही नकारात्मक मानसिकता का प्रतिकार संभव है। इस सिद्धांत के समान अन्य विचार खोजने के संदर्भ में, शायद बौद्धिक चिकित्सा सबसे निकट है। पिछले कुछ दशकों में यह चिकित्सा पद्धति काफ़ी लोकप्रिय हो गई है और अनेक तरह की सामान्य समस्याओं, विशेषकर मूड संबंधी रोग जैसे डिप्रेशन और तनाव आदि के इलाज में यह अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुई है। डॉ. अल्बर्ट एलिस और डॉ. ऐरन बैक जैसे मनोचिकित्सकों द्वारा विकसित आधुनिक बौद्धिक उपचार पद्धति इस विचार पर आधारित है कि हमें परेशान करने वाले भाव और प्रतिकूल व्यवहार मुख्य रूप से विकृत सोच एवं असंगत मत के कारण उत्पन्न होते हैं। यह उपचार पद्धति मरीज़ को अपनी सोच में आई विकृतियों को सुनियोजित ढंग से पहचानने, उनकी जाँच करने और फिर उन्हें ठीक करने पर ध्यान देती है। ये सुधारक विचार, एक तरह से, विकृत सोच का प्रतिकार करते हैं, जो मरीज़ की पीड़ा की मुख्य स्रोत है।

उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति किसी दूसरे के द्वारा अस्वीकृत हो जाता है तो उसे

बहुत दुख होता है। बौद्धिक चिकित्सक सबसे पहले उस व्यक्ति को अपने असंगत विचार को पहचानने में मदद करता है। जैसे: "मुझे अपने जीवन में, हर समय, प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति से प्रेम और स्वीकृति मिलनी चाहिए, अन्यथा सब बेकार है और मैं किसी काम का नहीं हूँ।" इसके बाद चिकित्सक उस व्यक्ति के सामने उसके असंगत विचार को चुनौती देने वाले प्रमाण प्रस्तुत करता है। ये तरीका ऊपरी लग सकता है, लेकिन अनेक अध्ययन बताते हैं कि बौद्धिक पद्धति कारगर है। उदाहरण के लिए, डिप्रेशन में बौद्धिक चिकित्सक यह तर्क देते हैं कि व्यक्ति के डिप्रेशन का कारण उसके अपने नकारात्मक और आत्म-पराजय के भाव होते हैं। जिस तरह बौद्धधर्मी सभी कष्टकारी भाव को विकृत मानते हैं, उसी तरह बौद्धिक चिकित्सक इन नकारात्मक डिप्रेशन-जनक विचारों को "अनिवार्य रूप से विकृत" मानते हैं। डिप्रेशन में घटनाओं को सब-या-कुछ नहीं के संदर्भ में देखने अथवा अतिसामान्यीकरण के कारण (जैसे: अगर आपकी नौकरी चली जाए या आप कक्षा में फेल हो जाएँ तो आप सोचने लगते हैं, "मैं पूरी तरह असफल हूँ!") या कुछ विशेष घटनाओं को चुनिंदा ढंग से देखने पर (जैसे एक दिन में तीन अच्छी और दो बुरी बातें हो सकती हैं, लेकिन डिप्रेशन से ग्रस्त व्यक्ति अच्छी बातों को नज़रअंदाज़ करके बुरी बातों पर ही ध्यान देता है) व्यक्ति की सोच विकृत हो सकती है। इसलिए, डिप्रेशन का इलाज करने के लिए, चिकित्सक की मदद से मरीज़ को इस बात के लिए प्रेरित किया जाता है कि वह मन में नकारात्मक विचार (जैसे: "मैं बिल्कुल बेकार हूँ!") के स्वतः आने का प्रबोधन करे तथा ऐसी सूचना एवं प्रमाण एकत्रित करे जो उस विचार को काटते या उससे असहमति जताते हों (जैसे: "मैंने दो बच्चों को बड़ा करने के लिए मेहनत की है, मुझमें गाना गाने की प्रतिभा है, मैं अच्छा दोस्त रहा हूँ, मैंने कठिन परिस्थितियों में नौकरी की है," आदि)। शोधकर्त्ताओं ने यह सिद्ध किया है कि सटीक जानकारी द्वारा इन विकृत विचारों को हटाकर, व्यक्ति अपनी भावनाओं को बदल सकता है तथा अपने मूड को बेहतर बना सकता है।

यह तथ्य कि हम अपनी भावनाओं को बदल सकते हैं तथा वैकल्पिक सोच की मदद से नकारात्मक विचारों का विरोध कर सकते हैं, दलाई लामा की इस बात का समर्थन करता है कि हम नकारात्मक मानसिकता को दूर करने के लिए "प्रतिकार" या उसी तरह की सकारात्मक मानसिकता का उपयोग कर सकते हैं। जब इस तथ्य को हाल के इस वैज्ञानिक प्रमाण के साथ जोड़ा जाता है कि नए विचारों को विकसित करके हम मस्तिष्क की संरचना एवं उसके कार्य को बदल सकते हैं, तो दिमाग़ के प्रशिक्षण द्वारा ख़ुशी प्राप्त करने की संभावना अत्यंत वास्तविक प्रतीत होती है।

अध्याय 13

क्रोध और घृणा से निपटना

> यदि कोई देखे कि एक व्यक्ति तीर से घायल हुआ है, तो वह यह सोचने में समय व्यर्थ नहीं करता कि तीर कहाँ से आया था या किस जाति के व्यक्ति ने चलाया था या कि वह तीर कौन-सी लकड़ी का बना हुआ था या फिर उस तीर की नोक कैसी थी। इसके बजाय, व्यक्ति तुरंत तीर को बाहर खींचने पर ध्यान देता है।
>
> – बुद्धि शाक्यमुनि

अब हम कुछ "तीरों," दिमाग़ की नकारात्मक अवस्थाओं के बारे में बात करेंगे जो हमारी ख़ुशी को नष्ट कर देती हैं और उनके प्रतिकार पर भी चर्चा करेंगे। दिमाग़ की सभी नकारात्मक अवस्थाएँ ख़ुशी में बाधा डालती हैं लेकिन हम क्रोध से शुरू करेंगे जो सबसे बड़ी बाधा है। उदासीन दार्शनिक सेनेका ने इसे "सबसे ज़्यादा घिनौना और उन्मादी भाव" बताया है। आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययनों ने क्रोध और घृणा के विनाशकारी प्रभावों को दर्ज किया है। निश्चित ही, व्यक्ति को इस बात को समझने के वैज्ञानिक प्रमाण की ज़रूरत नहीं है कि किस तरह हमारी भावनाएँ हमारे निर्णय को बाधित करती हैं, हमें असहज बनाती हैं या हमारे निजी संबंधों को नष्ट कर देती हैं। हम इसे अपने निजी अनुभवों से समझ सकते हैं। हाल के वर्षों में, क्रोध और शत्रुता के हानिकारक शारीरिक प्रभावों को दर्ज करने में काफ़ी कार्य किया गया है। दर्जनों अध्ययन बताते हैं कि हमारी इस तरह की भावनाएँ रोग और असमय मृत्यु का एक बड़ा कारण हैं। ड्यूक युनिवर्सिटी के डॉ. रेडफोर्ड विलियम्स तथा स्टैनफोर्ड युनिवर्सिटी के डॉ. रॉबर्ट सैपोलस्की जैसे खोजकर्त्ताओं ने अध्ययन द्वारा यह दर्शाया है कि क्रोध, रोष और शत्रुता का विशेष रूप से हमारे हृदयवाहिनी तंत्र पर

बुरा असर पड़ता है। शत्रुता के हानिकारक असर के इतने प्रमाण जमा हो गए हैं कि अब इसे हृदय रोग का, उच्च कोलेस्ट्रोल या ब्लड प्रेशर के बराबर या शायद इससे भी बड़ा कारण माना जाने लगा है।

क्रोध और घृणा के हानिकारक असर को समझ लेने के बाद अगला प्रश्न उठता है: इससे कैसे बचा जाए?

उपचार सुविधा के मनोरोग परामर्शदाता के रूप में पहले दिन, मुझे एक कर्मचारी मेरा नया दफ़्तर दिखा रहा था, कि तभी मैंने नीचे हॉल से आ रही दिल दहलाने वाली चीखें सुनीं...

"मुझे ग़ुस्सा आ रहा है..."

"और ज़ोर से!"

"मुझे ग़ुस्सा आ रहा है!"

"और ज़ोर से! मुझे दिखाओ। मैं देखना चाहती हूँ!"

"मुझे ग़ुस्सा आ रहा है!! मुझे ग़ुस्सा आ रहा है!! मैं तुमसे नफ़रत करती हूँ!!! मैं तुमसे नफ़रत करती हूँ!!"

वह सचमुच डरावना था। मैंने उस कर्मचारी से कहा कि ऐसा लग रहा है मानो कोई बड़ा संकट आ गया है और उसे तुरंत सँभालने की ज़रूरत है।

"उसकी चिंता मत करो," वह हँसी। वे लोग नीचे हॉल में सामूहिक चिकित्सा कर रहे हैं - और मरीज़ का उसके ग़ुस्से से संपर्क करवा रहे हैं।"

मैं उस दिन बाद में, उस मरीज़ से अकेले में मिला। वह पूरी तरह थकी हुई थी।

"मैं बहुत हल्का महसूस कर रही हूँ," उसने कहा "उस उपचार ने सचमुच काम किया। मुझे लग रहा है कि मेरे अंदर से सारा ग़ुस्सा निकल गया है।"

अगले दिन, मरीज़ ने बताया, "मुझे लगता है कि सारा ग़ुस्सा नहीं निकल पाया। कल यहाँ से जाने के बाद, पार्किंग से गाड़ी निकालते समय कोई बेवक़ूफ़ मेरे बहुत पास से निकल गया... और मुझे तेज़ ग़ुस्सा आ गया! मैं घर जाते समय पूरे रास्ते उस बेवक़ूफ़ को कोसती गई। मेरे ख़्याल से मुझे अपने ग़ुस्से को पूरी तरह निकालने के लिए अभी कुछ और उपचार की ज़रूरत है।"

क्रोध और घृणा पर विजय पाने के संदर्भ में, दलाई लामा इस तरह के विनाशकारी भावों की जाँच से आरंभ करते हैं।

"सामन्य तौर पर," वे बोले, "कष्टकारी या नकारात्मक भाव अनेक तरह के होते हैं, जैसे: अहंकार, घमंड, ईर्ष्या, इच्छा, वासना, संकुचित विचारधारा आदि। परंतु इन में क्रोध

और घृणा को सबसे बुरा माना गया है क्योंकि करुणा एवं परोपकार के विकास में ये सबसे बड़ी बाधाएँ हैं और ये व्यक्ति के समस्त गुणों और उसकी मानसिक शांति को नष्ट कर देते हैं।”

“क्रोध की बात करें तो यह दो तरह का होता है। एक प्रकार का क्रोध सकारात्मक होता है। यह मुख्य रूप से व्यक्ति की प्रेरणावश उत्पन्न होता है। करुणा या उत्तरदायित्त्व के भाव से प्रेरित होकर क्रोध पैदा हो सकता है। करुणा से प्रेरित होकर उत्पन्न हुआ क्रोध किसी सकारात्मक कार्य के लिए संवेग या उत्प्रेरक बन सकता है। ऐसे में, क्रोध जैसा भाव त्वरित कार्य को बल देता है। इससे ऐसी ऊर्जा पैदा होती है जो व्यक्ति को जल्दी और निर्णायक ढंग से कार्य करने में मदद करती है। यह प्रेरणा का शक्तिशाली स्रोत बन सकता है। इसलिए, कभी-कभी क्रोध सकारात्मक होता है। हालाँकि, अधिकतर मामलों में इस तरह का क्रोध संरक्षक बनकर अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान करता है, यह ऊर्जा दिशाहीन होती है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह ऊर्जा अंत में रचनात्मक होगी अथवा विनाशकारी।”

“कुछ परिस्थितियों में क्रोध सकारात्मक हो सकता है, किंतु आम तौर पर, क्रोध से दुर्भावना और घृणा ही पैदा होती है। जहाँ तक घृणा का प्रश्न है, यह कभी सकारात्मक नहीं हो सकती। इसका कोई लाभ नहीं होता। यह हमेशा पूरी तरह नकारात्मक होती है।”

“हम क्रोध और घृणा को सिर्फ़ दबा देने से समाप्त नहीं कर सकते। हमें घृणा के प्रतिकार - धैर्य एवं सहनशीलता को सक्रिय रूप से विकसित करना पड़ेगा। पहले हमने जिस मॉडल की चर्चा की थी, उसके अंतर्गत धैर्य तथा सहनशीलता को सफलतापूर्वक विकसित करने के लिए उत्साह एवं उसे पाने की तीव्र इच्छा की आवश्यकता होती है। आप में उत्साह जितना अधिक होगा, इस दौरान आने वाली परेशानियों को सहने की क्षमता उतनी ही अधिक होगी। जब आप धैर्य व सहनशीलता का अभ्यास करते हैं, तो असल में, आप क्रोध एवं घृणा के विरुद्ध लड़ रहे होते हैं। चूंकि यह लड़ाई है, इसलिए आप जीतना चाहते हैं, लेकिन आपको इसमें पराजय के लिए भी तैयार रहना चाहिए। इस लड़ाई के दौरान अपको यह नहीं भूलना चाहिए कि आपको इस बीच अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है। आपके अंदर इन परेशानियों को झेलने की क्षमता होनी चाहिए। इस कठिन प्रक्रिया के दौरान जो व्यक्ति क्रोध और घृणा पर विजय पा लेता है, वही सच्चा नायक है।”

“इसी बात को दिमाग़ में रखकर हम प्रबल उत्साह पैदा करते हैं। धैर्य और सहनशीलता के लाभकारी प्रभावों तथा क्रोध व घृणा के नकारात्मक असर के बारे में जानने एवं उस पर चिंतन करने से उत्साह पैदा होता है। ऐसा करने मात्र से और इस बोध से ही धैर्य व सहनशीलता से संबंध स्थापित हो जाता है और आप क्रोध एवं घृणा वाले विचारों से सावधान हो जाते हैं। आम तौर पर, हम क्रोध या घृणा की ज़्यादा परवाह नहीं करते, इसलिए यह सहजता से आ जाते हैं। परंतु यदि हम इन भावनाओं के विषय में सजग हो जाएँ, तो हमारा क्रोध व घृणा के प्रति यह अनिच्छापूर्ण रुख ही उन्हें हमसे दूर रखने के लिए पर्याप्त होगा।”

“घृणा के विनाशकारी प्रभाव स्पष्ट और तुरंत दिखाई दे जाते हैं। उदाहरण के लिए,

जब आपके अंदर घृणा का अत्यंत तीव्र भाव उत्पन्न होता है, तो उसी क्षण, वह आपके ऊपर पूरी तरह से हावी हो जाता है और आपकी मानसिक शांति को भंग कर देता है; आपकी बुद्धि काम करना बंद कर देती है। क्रोध और घृणा के तीव्र भाव आपके दिमाग़ के सबसे बेहतरीन हिस्से, यानि सही व ग़लत, तथा आपके कार्यों के अल्पकालिक व दीर्घकालिक प्रभावों में अंतर करने की क्षमता को बिल्कुल मिटा देते हैं। निर्णय लेने की योग्यता पूरी तरह निष्क्रिय हो जाती है। आप लगभग पागल जैसे हो जाते हैं। तो, ये क्रोध और घृणा आपको दुविधा की स्थिति में डाल देते हैं जिससे आपकी समस्याएँ और परेशानियाँ और बढ़ जाती हैं।"

"शारीरिक स्तर पर भी, घृणा से व्यक्ति में बहुत गंदा, अनाकर्षक शारीरिक बदलाव आ जाता है। क्रोध व घृणा के तीव्र भाव जागृत होने पर, व्यक्ति कितना भी अच्छा दिखने की कोशिश करे, उसका चेहरा भद्दा और विरूपित दिखाई देता है। चेहरे पर ख़राब भाव आ जाते हैं और उस व्यक्ति में से द्वेषपूर्ण तरंगें निकलती हैं। दूसरे लोग भी उन्हें महसूस कर पाते हैं। ऐसा लगता है मानो उस व्यक्ति के शरीर से भाप निकल रही हो। सिर्फ़ मनुष्य ही नहीं, बल्कि पशु और पालतू जानवर भी इसे महसूस कर लेते हैं और उस समय वे भी उस व्यक्ति से दूर रहने की कोशिश करते हैं। जब घृणा के विचार पैदा होते हैं, तो वे उस व्यक्ति के अंदर ही जमा हो जाते हैं जिसकी वजह से उसे भूख, नींद आदि में कमी आ जाती है और वह व्यक्ति ज़्यादा तनाव में रहता है।"

"इन कारणों से घृणा की तुलना शत्रु से की जाती है। यह भीतरी दुश्मन नुकसान पहुँचाने के अलावा कुछ नहीं करता। यह हमारा पक्का दुश्मन, हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। यह हमें तात्कालिक और दूरगामी दोनों तरह से नष्ट कर देता है।"

"यह सामान्य शत्रु से बहुत अलग है। हालाँकि कोई आम शत्रु, जिसे हम अपना शत्रु मानते हैं, हमें हानि पहुँचाने वाले काम करता है,, कम-से कम उसके पास कुछ और भी काम होते हैं; वह व्यक्ति खाता है, सोता है। इसलिए उसके पास अन्य कार्य होते हैं और वह चौबीसों घंटे हमें नुकसान पहुँचाने का काम नहीं कर सकता। परंतु घृणा के पास हमें नष्ट करने के अतिरिक्त कोई और काम, कोई अन्य उद्देश्य नहीं होता। इस बात को समझकर, हमें यह दृढ़ निश्चय करना चाहिए कि हम अपने इस शत्रु को, घृणा को अपने अंदर उत्पन्न होने का अवसर नहीं देंगे।"

"क्रोध से निपटने के लिए, पाश्चात्य मनोचिकित्सा की कुछ पद्धतियों के बारे में आपका क्या विचार है जिनमें व्यक्ति को अपना ग़ुस्सा अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है?"

"यहाँ, मुझे लगता है कि हमें यह समझना होगा कि ऐसी भिन्न परिस्थितियाँ हो सकती हैं," दलाई लामा ने समझाना आरंभ किया। "कुछ मामलों में, लोग अतीत में उनके साथ किए गए किसी ग़लत कार्य, जैसे शोषण या कुछ और के कारण क्रोध एवं घृणा के भाव अपने अंदर पालते हैं और यह भाव उनके अंदर बंद रहते हैं। तिब्बत में ऐसा कहा जाता है कि अगर शंख के अंदर कोई बीमारी है, तो आप उसे फूँक मारकर साफ़ कर सकते हैं। दूसरे

शब्दों में, यदि शंख के अंदर कोई अवरोध है तो आप फूँक मारें और वह साफ़ हो जाएगा। इसी तरह, यहाँ भी ऐसी किसी परिस्थिति की कल्पना की जा सकती है जिसमें, कुछ भावनाओं या क्रोध आदि को बंद रखने के कारण उन्हें बाहर निकालना और अभिव्यक्त कर देना बेहतर होगा।" हालाँकि, मेरा ऐसा मानना है कि आम तौर पर, क्रोध और घृणा ऐसे भाव हैं, जिन्हें यदि आप यूँ ही अनियंत्रित रहने दें, तो वे बढ़ते जाते हैं। यदि आप इन भावों को जागृत होने पर उन्हें अभिव्यक्त करने की आदत डाल लें तो भी ये कम होने की बजाय बढ़ जाते हैं। तो, मेरे ख़्याल से आप जितना सावधान रहकर और सक्रिय रूप से इनकी तीव्रता को कम करने की कोशिश करेंगे, उतना ही बेहतर होगा।"

"तो, अगर आपको लगता है कि अपने ग़ुस्से को व्यक्त करना या उसे बाहर निकालना इसका समाधान नहीं है, तो फिर क्या है?" मैंने पूछा।

"सबसे पहले, क्रोध और घृणा के भाव असंतोष से भरे मस्तिष्क में पैदा होते हैं। इसलिए आप समय से पहले, भीतरी संतोष एवं दया व करुणा को विकसित करके इसके लिए तैयारी कर सकते हैं। इससे दिमाग़ शांत होता है और क्रोध पैदा ही नहीं होता। इसके बाद, यदि कोई ऐसी परिस्थिति बनती है जिसमें आपको ग़ुस्सा आता है तो आपको उस ग़ुस्से का सामना करके उसका विश्लेषण करना चाहिए। यह जानिये कि किन कारणों से ग़ुस्से और घृणा के भाव आपके अंदर उत्पन्न हुए हैं। फिर इसका और विश्लेषण कीजिए कि क्या यह उचित प्रतिक्रिया है और यह भी कि वह क्रोध का भाव रचनात्मक है या विध्वंसकारी है। इसके बाद आप भीतरी अनुशासन व नियंत्रण को प्रतिकारों के उपयोग के साथ मिलाकर धैर्य व सहनशीलता की मदद से इन नकारात्मक भावनाओं को दूर करने का प्रयास कीजिए।"

दलाई लामा रुके और फिर अपने व्यावहारिक अंदाज़ में बोले, "निश्चय ही, क्रोध एवं घृणा पर काबू पाने के शुरुआती चरण में, आप इन नकारात्मक भावों को अनुभव करते रहेंगे। परंतु इसके अनेक स्तर होते हैं; यदि क्रोध की तीव्रता ज़्यादा नहीं है तो आप उसका सामना करके उससे लड़ने का प्रयास कर सकते हैं। यदि, वह भाव अत्यंत तीव्र है तो उसी क्षण, उसे चुनौती देना या उसका सामना करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में, उसे भूल जाना सबसे अच्छा तरीका है। कुछ और बात सोचना शुरू कर दीजिए। दिमाग़ के थोड़ा शांत होने के बाद, फिर आप उसका विश्लेषण कर सकते हैं।" दूसरे शब्दों में, मुझे लगा, वे कह रहे थे, "थोड़ा आराम करो!"

वे बोलते रहे। "क्रोध व घृणा को समाप्त करने के लिए धैर्य और सहनशीलता को विकसित करना अनिवार्य है। आप धैर्य और सहनशीलता के मूल्य व उसके महत्त्व को इन संदर्भों में समझ सकते हैं: जहाँ तक क्रोध और घृणा के दुष्प्रभावों का सवाल है, आप इनसे धन की मदद से नहीं बच सकते। यदि आप करोड़पति हैं, तो भी क्रोध और घृणा के दुष्प्रभाव आपको सताएँगे। अकेली शिक्षा भी आपको इनसे बचाने की गारंटी नहीं दे सकती। इसी तरह, कानून भी आपको इनसे सुरक्षा नहीं दे सकता। यहाँ तक कि परमाणु हथियार, शानदार रक्षा प्रणालियाँ आपको इनके दुष्प्रभावों से सुरक्षा नहीं दे सकतीं..."

दलाई लामा ने गति पकड़ने से पहला अल्प विराम लिया और फिर स्पष्ट व दृढ़ स्वर में कहा, “सिर्फ़ एक ही चीज़ है जो आपको क्रोध और घृणा के दुष्प्रभावों से बचा सकती है या आपकी रक्षा कर सकती है, और वह है धैर्य एवं सहनशीलता का अभ्यास।”

दलाई लामा का परंपरागत ज्ञान वैज्ञानिक आँकड़ों से बिल्कुल मेल खाता है। अलाबामा युनिवर्सिटी के डॉ. डॉल्फ़ ज़िलमैन ने अपने प्रयोगों द्वारा यह दर्शाया है कि ग़ुस्से वाले विचार शरीर को उत्तेजित करते हैं जिससे हमें और ज़्यादा ग़ुस्सा आता है। क्रोध से और क्रोध पैदा होता है और जैसे-जैसे हमारी उत्तेजना बढ़ती है, हम क्रोध भड़काने वाले वातावरण से ज़्यादा जल्दी प्रभावित हो जाते हैं।

अनियंत्रित अवस्था में क्रोध बढ़ता जाता है। तो इसे कम कैसे किया जाए? दलाई लामा के मतानुसार क्रोध व रोष को बाहर निकालने से बहुत सीमित लाभ होता है। रेचन के उद्देश्य से क्रोध की उपचारात्मक अभिव्यक्ति फ़्रायड के भाव सिद्धांतों से निकली है, जिसे उसने एक हाइड्रॉलिक मॉडल में प्रयोग होते देखा था: दबाव पैदा होने पर उसे निकाल देना चाहिए। क्रोध को व्यक्त करके उसे बाहर निकाल देना थोड़ा नाटकीय लगता और कुछ मज़ाकिया लगता है लेकिन समस्या यह है कि यह तरीका कारगर नहीं है। पिछले चार दशकों के दौरान किए गए अध्ययनों ने लगातार यह दर्शाया है कि गुस्से को मौखिक या शारीरिक रूप से व्यक्त करने से वह समाप्त नहीं होता, बल्कि इससे स्थिति बिगड़ जाती है। उदाहरण के लिए, मैरीलैंड युनिवर्सिटी के एक मनोवैज्ञानिक और क्रोध शोधकर्त्ता डॉ. ऐरन सिगमैन मानते हैं कि क्रोध व रोष की बार-बार अभिव्यक्ति से भीतर उत्तेजना और जैव-रसायनिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं जिससे हमारी धमनियों को नुकसान हो सकता है।

स्पष्ट तौर पर, न तो अपने ग़ुस्से को बाहर निकालना कोई समाधान है, और ना ही उसकी उपेक्षा करना या उसके न होने का ढोंग करना। जैसा कि हमने भाग 3 में चर्चा की थी, अपनी समस्याओं से बचकर हम उन्हें दूर नहीं कर सकते। तो सबसे अच्छा उपाय क्या है? रोचक तौर पर, डॉ. ज़िलमैन और डॉ. विलियम्स जैसे आधुनिक क्रोध शोधकर्त्ताओं के बीच इस बात पर आम सहमति है कि दलाई लामा के बताए तरीके सबसे प्रभावशाली हैं। चूंकि सामान्य तनाव क्रोध की उत्तेजना पैदा करने वाली हद को कम कर देता है, पहला कदम बचाव का है: दलाई लामा के सुझाए अनुसार भीतरी संतोष और दिमाग़ी शांति विकसित करने से निश्चित तौर पर मदद मिल सकती है। शोध बताते हैं कि सचमुच क्रोध आने पर, उसे चुनौती देने, उसका विश्लेषण करने और क्रोध को जगाने वाले विचारों को फिर से आकलन करने से क्रोध को मिटाने में सहायता मिलती है। प्रयोगों द्वारा इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि पूर्वचर्चित तकनीक, जैसे: नज़रिया बदलना या स्थिति को अलग ढंग से देखना भी काफ़ी प्रभावी तरीके हैं। निश्चित तौर पर, हल्के या मध्यम स्तर के क्रोध में ये सब आसानी से किया जा सकता है, इसलिए क्रोध और घृणा के भावों में तेज़ी आने से पहले इनका अभ्यास करना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

क्रोध एवं घृणा को दूर करने के महत्त्व के कारण दलाई लामा ने धैर्य और सहनशीलता के अर्थ व मूल्य पर विस्तार से बात की।

"हमारे दैनिक अनुभवों में धैर्य और सहनशीलता का बहुत लाभ होता है। जैसे: इन्हें विकसित करने से हमारी बुद्धि सही ढंग से काम करती रहती है। तो यदि किसी व्यक्ति के पास धैर्य और सहनशीलता की क्षमता है तो बहुत तनाव भरे माहौल में रहने के बावजूद, उस व्यक्ति की मानसिक शांति भंग नहीं होगी।"

"कठिन परिस्थितियों में क्रोध करके धैर्य के साथ काम करने से आप संभावित बुरे परिणामों से बच सकते हैं जो अन्यथा ग़ुस्सा आने पर व्यक्ति को भोगने पड़ते हैं। यदि आप किसी स्थिति में ग़ुस्सा या घृणा करते हैं तो उससे न सिर्फ़ आपको नुकसान उठाना पड़ता है - जो कि पहले ही हो चुका होता है - बल्कि आप भविष्य में भी अपने कष्ट का कारण बन जाते हैं। परंतु यदि आप चोट लगने पर धैर्य और सहनशीलता से काम लेंगे तो आपको अस्थायी रूप से थोड़ी परेशानी हो सकती है लेकिन आप फिर भी दूरगामी और ज़्यादा ख़तरनाक परिणाम भोगने से खुद को बचा लेंगे। छोटे-छोटे त्याग करने से और मामूली समस्याओं या परेशानियों को झेलकर आप भविष्य में अधिक बड़े संकटों या कष्टों से बच सकते हैं। उदाहरण के लिए, किसी दोषी की, यदि सज़ा के तौर पर अपना हाथ गँवाने से, जान बच सकती है तो क्या वह व्यक्ति उस अवसर के लिए आभार महसूस नहीं करेगा? एक हाथ कटने का दर्द बर्दाश्त करके उस व्यक्ति ने अपनी जान बचा ली, जो कि कहीं ज़्यादा कष्टकारी था।"

"पाश्चात्य सोच के लिए," मैंने कहा, "धैर्य और सहनशीलता निश्चित ही महत्त्वपूर्ण गुण हैं लेकिन दूसरे आपको प्रत्यक्ष रूप से घेर लेते हैं, जब कोई सक्रिय होकर आपको नुकसान पहुँचाता है तो 'धैर्य एवं सहनशीलता' के साथ जवाब देने को आपकी कमज़ोरी और निष्क्रियता समझा जाता है।"

दलाई लामा ने असहमति में अपना सिर हिलाते हुए कहा, "चूंकि धैर्य और सहनशीलता, किसी प्रतिकूल परिस्थिति को अपने ऊपर हावी न होने देने से तथा दृढ़ और स्थिर बने रहने से आते हैं, तो धैर्य एवं सहनशीलता को कमज़ोरी या पराजय का संकेत नहीं, बल्कि ताकत और स्थिर रहने के सामर्थ्य का प्रतीक समझना चाहिए। कठिन परिस्थिति में क्रोध या घृणा के बजाय धैर्य और सहनशीलता बनाए रखने के लिए सक्रिय नियंत्रण की ज़रूरत होती है जो दृढ़, अनुशासित मस्तिष्क से ही प्राप्त हो सकता है।

"धैर्य की अवधारणा के संदर्भ में यह कहना होगा कि अधिकांश बातों की तरह, धैर्य भी सकारात्मक और नकारात्मक होता है। अधीर होना हमेशा ग़लत नहीं होता। उदाहरण के लिए, काम करवाने के लिए सक्रिय होना लाभकारी होता है। अपना कमरा साफ़ करने जैसे रोज़ के कामों में भी, यदि आप में बहुत ज़्यादा धैर्य है तो आपका काम धीरे और बहुत कम हो पाएगा। अथवा विश्व शांति स्थापित करने के लिए अधीर होना - इसे सकारात्मक नहीं कहा सकता। परंतु कठिन एवं चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में धैर्य आपकी इच्छाशक्ति को बनाए

रखता है तथा आपको सँभलने में मदद करता है।"

धैर्य के अर्थ की जाँच करते हुए दलाई लामा अधिक सजीव हो उठे और बोले, "मेरे विचार से, विनम्रता और धैर्य में नज़दीकी संबंध होता है। विनम्रता में सामना करने का सामर्थ्य अधिक होता है और उसमें यह भाव भी होता है कि आप चाहें तो बदला ले सकते हैं लेकिन आप ऐसा नहीं करते। इसी को असली विनम्रता कहते हैं। मुझे लगता है कि सच्ची विनम्रता में स्वानुशासन और नियंत्रण का पुट होता है - इस बात का बोध होता है कि आप इसके विपरीत कार्य कर सकते थे, आप नाराज़ हो सकते थे लेकिन आपने ऐसा नहीं किया। दूसरी ओर, यदि असहाय या असमर्थ होने के कारण आपको निष्क्रियता का सहारा लेना पड़ा तो इसे सच्ची विनम्रता नहीं कहा जा सकते। यह एक तरह की दुर्बलता है परंतु वास्तविक धैर्य नहीं है।

"जब हम इस बारे में चर्चा करते हैं कि अपना नुकसान करने वालों के साथ धैर्य कैसे रखा जाए तो इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि हमारे विरुद्ध जो भी होगा, हम उसे चुपचाप सहन करते जाएँगे।" दलाई लामा ने रुककर हँसते हुए कहा। "ऐसा करने के बजाय, यदि आवश्यकता हो तो सबसे अच्छा, सबसे बुद्धिमानी का रास्ता यह है कि वहाँ से दूर, बहुत दूर भाग जाइए!"

"आप हमेशा भागकर संकट से बच नहीं सकते..."

"हाँ, यह ठीक है," उन्होंने उत्तर दिया। "कई बार आपके सामने ऐसी स्थिति आ जाती है कि आपको कठोर कदम उठाने पड़ते हैं। मुझे लगता है कि ये ठोस कदम आप क्रोध में आकर उठाने के बजाय करुणा और दूसरां के प्रति चिंतित होकर भी उठा सकते हैं। किसी के विरुद्ध बहुत कठोर कदम उठाने का एक कारण यह भी है कि अगर आप अपने साथ हुए अन्याय या नुकसान को यूँ ही नज़रअंदाज़ करेंगे तो इस बात का खतरा रहता है कि उस व्यक्ति को वैसा नकारात्मक व्यवहार करने की आदत पड़ जाए, जो कि आगे चलकर, असल में, उसी व्यक्ति के पतन और विनाश का कारण बनता है। इसलिए कठोरता से विरोध करना ज़रूरी है, लेकिन इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि आप ऐसा दूसरे व्यक्ति के प्रति करुणा और चिंता के फलस्वरूप कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, चीन के साथ हमारे संबंध के संदर्भ में, यदि हमारे बीच घृणा का भाव जाग्रत होने की कोई संभावना भी हो तो हम उस पर ध्यान देकर उसे कम करने की कोशिश करते हैं, हम चीनी लोगों के प्रति करुणा का भाव विकसित करने का प्रयास करते हैं। मुझे लगता है कि क्रोध और घृणा के बिना भी इस तरह के ठोस कदम उठाए जा सकते हैं।

हमने क्रोध व घृणा को छोड़कर धैर्य एवं सहनशीलता बढ़ाने के तरीकों के बारे में जाना है, जिनमें स्थिति का विश्लेषण करना, व्यापक नज़रिया अपनाना और उस स्थिति को अलग दृष्टिकोण से देखना शामिल हैं। धैर्य और सहनशीलता का अंत में परिणाम है - क्षमा। यदि आपमें सचमुच धैर्य और सहनशीलता हैं तो क्षमा अपने आप आ जाएगी।

"हो सकता है आपने अतीत में बहुत-सी नकारात्मक घटनाएँ देखी हों, फिर भी धैर्य

और सहनशीलता विकसित होने के साथ आपके लिए क्रोध और रोष के भाव को त्याग देना संभव हो जाता है। यदि आप स्थिति का विश्लेषण करें तो आप पाएँगे कि अतीत बीत चुका है, इसलिए उसके प्रति क्रोध या घृणा का भाव रखना बेकार है क्योंकि उससे स्थिति नहीं बदलने वाली, बल्कि आपके दिमाग़ में अशांति और लगातार दुख व्याप्त हो जाएगा। वह घटनाएँ तो आपको फिर भी याद रहेंगी। भूल जाना और क्षमा कर देना दो अलग-अलग बातें हैं। उन नकारात्मक घटनाओं को सिर्फ़ याद करने में कुछ ग़लत नहीं है; यदि आपका दिमाग़ तेज़ है तो आप हमेशा याद रखेंगे," वह हँसने लगे। "मेरे ख़्याल से बुद्ध को सब कुछ याद था। परंतु धैर्य और सहनशीलता विकसित हो जाने से, उन घटनाओं से जुड़ी नकारात्मक भावनाओं का त्याग कर पाना संभव हो जाता है।"

क्रोध पर ध्यान

इन चर्चाओं में से अनेक में क्रोध व घृणा को दूर करने के लिए दलाई लामा का प्रमुख तरीका था तर्क एवं विश्लेषण द्वारा क्रोध के कारणों को जानना, बोध जगाकर इन हानिकारक मानसिक अवस्थाओं से लड़ना। एक तरह से, इसमें क्रोध व घृणा के प्रभाव को समाप्त करके उसके प्रतिकार, धैर्य एवं सहनशीलना का विकास करना होता है। परंतु उनकी सिर्फ़ यही तकनीक नहीं थी। अपने सार्वजनिक भाषणों में वे अपनी चर्चा में क्रोध पर काबू पाने के उद्देश्य से इन दो सरल किंतु प्रभावशाली ध्यान अभ्यासों की भी चर्चा करते थे।

क्रोध पर ध्यान: अभ्यास 1

"एक स्थिति की कल्पना करते हैं जिसमें कोई व्यक्ति, जिसे आप अच्छी तरह जानते हैं, जो आपके निकट है और आपको प्रिय है, किसी विशिष्ट परिस्थिति में ग़ुस्सा हो जाता है। ऐसा किसी कटु संबंध में होता है या फिर ऐसी स्थिति में जहाँ निजी तौर पर कुछ परेशानी होती है। उस व्यक्ति को इतना ग़ुस्सा आ रहा है कि वह पूरी तरह से अपनी मानसिक शांति खो चुका है, अत्यंत नकारात्मक तरंगें छोड़ रहा है, यहाँ तक कि खुद को मार रहा है या चीज़ें तोड़ रहा है।"

"उसके बाद, उस व्यक्ति द्वारा किए क्रोध के तत्काल परिणामों के बारे में सोचिए। आप उस व्यक्ति में शारीरिक बदलाव होता हुआ महसूस करेंगे। वह व्यक्ति, जो आपके निकट है, जिसे आप पसंद करते हैं, जिसे देख लेने से ही आपको अच्छा लगता रहा है, अब एक कुरूप व्यक्ति में बदल चुका है। मैं यह आपको किसी अन्य व्यक्ति के बारे में कल्पना करने के लिए इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि अपनी तुलना में दूसरों के दोष देखना आसान होता है। तो, अपनी कल्पना की मदद से कुछ देर तक इस ध्यान को कीजिए।

"इसके बाद स्थिति का विश्लेषण कीजिए और उन परिस्थितियों को अपने अनुभव के साथ जोड़कर देखिए। सोचिए कि आप स्वयं भी ऐसी अवस्था में अनेक बार रह चुके हैं।

दृढ़ निश्चय कीजिए ‘मैं स्वयं को क्रोध और घृणा के ऐसे प्रबल आवेश में बहने नहीं दूँगा क्योंकि अगर ऐसा हो गया तो मेरी भी यही दशा होगी। मेरा भी यही परिणाम होगा, मेरी मानसिक शांति भंग हो जाएगी, मैं धैर्य खो बैठूँगा और इसी तरह कुरूप लगूँगा,’ आदि। यह निर्णय लेने के बाद, ध्यान के अंतिम कुछ मिनटों में, बिना और कुछ विश्लेषण किए, अपने दिमाग़ को उस निष्कर्ष पर केंद्रित कर दीजिए, अपने दिमाग़ को क्रोध व घृणा के प्रभाव में न फँसने के अपने दृढ़ निश्चय पर टिका रहने दीजिए।”

क्रोध पर ध्यान: अभ्यास 2

“अब हम कल्पना द्वारा एक और ध्यान करते हैं। किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में सोचिए जिसे आप पसंद नहीं करते, जिस पर आपको खीझ आती है, जो आपके लिए अनेक परेशानियाँ पैदा करता है या आपको ग़ुस्सा दिलाता है। इसके बाद ऐसी स्थिति की कल्पना कीजिए जहाँ वह व्यक्ति आपको खीझ दिला रहा है और अपनी कल्पना में अपनी स्वाभाविक प्रतिक्रिया को बाहर आने दें; उसे सहज रूप से व्यक्त होने दें। देखिए कि आपको कैसा लग रहा है, क्या इससे आपकी हृदय गति बढ़ गई है इत्यादि। सोचिए आप सहज हैं अथवा असहज; देखिए कि क्या आप तुरंत शांत हो जाते हैं या फिर आपको असहज महसूस होने लगता है। स्वयं ही परखिए; जाँच कीजिए। कुछ देर, तीन या चार मिनट तक परखिए और प्रयोग कीजिए। उसके बाद, अगर आपको लगता है कि, ‘हाँ, उस खीज को महसूस करने का कोई लाभ नहीं है और इससे मेरी दिमाग़ी शांति भंग हो जाती है’ तो स्वयं से कहिए, मैं ‘भविष्य में कभी ऐसा नहीं करूँगा।’ इस दृढ़ निश्चय को पैदा कीजिए। अंत में कुछ मिनटों तक, अपने मस्तिष्क को उस दृढ़ता पर केंद्रित रहने दीजिए। यही ध्यान है।”

दलाई लामा एक पल के लिए रुके और फिर उन्होंने उस ध्यान की तैयारी में जुटे निष्ठावान विद्यार्थियों से भरे कमरे में नज़र दौड़ाई और वे हमसे बोले, “मेरे ख़्याल से अगर मुझमें बौद्धिक योग्यता, क्षमता या दूसरों के दिमाग़ को पढ़ने की चेतना होती तो यहाँ ज़बर्दस्त नज़ारा देखेने को मिलता!”

श्रोताओं में हँसी की लहर उठी जो शीघ्र ही शांत हो गई और उन्हें सुनने वालों ने ध्यान आरंभ करके, क्रोध से लड़ने का गंभीर कार्य शुरू कर दिया।

अध्याय 14

चिंता से निपटना और स्वाभिमान का निर्माण

ऐसा अनुमान है कि अपने जीवनकाल में चार में से एक अमेरिकी इस सीमा तक चिंता से ग्रस्त हो जाएगा कि चिकित्सा जाँच में उसे चिंता रोगी मान लिया जाएगा। परंतु ऐसे लोग भी, जो चिंता की रोगात्मक या विकलांगता से कभी ग्रस्त नहीं हुए, किसी न किसी समय पर ऐसी अत्यंत चिंता और व्यग्रता से ग्रस्त हो जाएँगे जिसका कोई लाभ नहीं होता और वह व्यक्ति की ख़ुशी को कम करने और उनके उद्देश्यों को पूरा करने की क्षमता में बाधा डालते हैं।

मानव मस्तिष्क में भय और चिंता के भाव को दर्ज करने के लिए परिष्कृत प्रणाली की व्यवस्था है। यह प्रणाली एक महत्त्वपूर्ण कार्य करती है - यह खतरे के समय कुछ जैव-रासायनिक एवं शारीरिक घटनाओं की जटिल श्रंखला को चालू करके हमें हरकत में ले आती है। चिंता का अनुकूल पक्ष यह है कि इसकी मदद से हम आने वाले ख़तरे को भाँप लेते हैं और उससे बचाव के लिए कदम उठाते हैं। तो, कुछ प्रकार के भय और थोड़ी चिंता अच्छी होती है। हालाँकि किसी वास्तविक ख़तरे के अभाव में भय और चिंता के ये भाव बने रह सकते हैं अथवा बढ़ भी सकते हैं और सचमुच का ख़तरा पैदा होने पर, जब यही भाव ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ जाते हैं तो ये प्रतिकूल हो जाते हैं। क्रोध और घृणा की तरह, अत्यधिक चिंता का मस्तिष्क और शरीर पर विनाशकारी प्रभाव होता है जिससे बहुत भावनात्मक कष्ट और शारीरिक रोग भी हो जाते हैं।

मानसिक स्तर पर, पुरानी चिंता से निर्णय लेने की क्षमता खराब हो जाती है,

चिड़चिड़ापन बढ़ता है, और व्यक्ति की कुल क्षमता में बाधा उत्पन्न हो जाती है। इसके कारण कमज़ोर प्रतिरक्षण, हृदयरोग, आंत्रशोध रोग, थकान, माँसपेशियों में तनाव व दर्द जैसी अनेक शारीरिक परेशानियाँ हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, यह भी देखा गया है कि चिंता रोग के कारण किशोरियों का शारीरिक विकास रुक सकता है।

चिंता से निपटने की रणनीति बनाते समय, जैसा कि दलाई लामा बाद में बताएँगे, हमें पहले यह समझना होगा कि चिंता पैदा करने वाले अनेक कारण होते हैं। कुछ मामलों में कोई प्रबल जीव-विज्ञान संबंधी कारण हो सकते हैं। किसी के लिए स्नायु तंत्र की नाजुकता भी चिंता का कारण हो सकती है। वैज्ञानिकों ने हाल में एक जीन की खोज की है जिसका संबंध चिंता और नकारात्मक सोच से है। सभी लोगों में चिंता का आनुवांशिक कारण नहीं होता, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि सीखने और अनुबंधन हेतुविज्ञान (एटियलजि) में बड़ी भूमिका निभाते हैं।

हालाँकि, चिंता का कारण शारीरिक हो या मनोवैज्ञानिक, अच्छी ख़बर यह है कि इसका इलाज संभव है। अत्यधिक चिंता वाले मामलों में, दवा इसके इलाज का महत्त्वपूर्ण अंश है। परंतु अधिकतर लोग जो रोज़मर्रा की चिंताओं से ग्रस्त रहते हैं उन्हें दवा की ज़रूरत नहीं होती। चिंता प्रबंधन के क्षेत्र में काम कर रहे विशेषज्ञ मानते हैं कि इसके लिए बहुपक्षीय सोच आवश्यक है। इसमें सबसे पहले यह निश्चित किया जाता है कि चिंता का कोई चिकित्सा संबंधी कारण नहीं है। सही आहार और व्यायाम द्वारा अपने शारीरिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाना बहुत कारगर होता है। जैसा कि दलाई लामा भी कहते हैं, करुणा विकसित करने और दूसरों के साथ अपने संबंधों को सुधारने से हमारे मानसिक स्वास्थ्य में भी सुधार होता है और हमें चिंता से लड़ने में सहायता मिलती है।

चिंता को दूर करने के व्यावहारिक तरीकों में, हालाँकि एक तकनीक है जो अत्यंत प्रभावशाली है: बौद्धिक हस्तक्षेप। यह चिंतामुक्त होने के लिए दलाई लामा द्वारा प्रयुक्त तरीकों में प्रमुख है। इसे क्रोध व घृणा के लिए प्रयुक्त तरीकों के साथ प्रयोग किया जाता है और इसमें चिंता-जनित विचारों को सक्रिय रूप से चुनौती दी जाती है तथा उनके स्थान पर तर्कसंगत एवं सकारात्मक विचार उत्पन्न किए जाते हैं।

हमारी संस्कृति में चिंता के सर्वत्र व्याप्त होने के कारण, मैं इस विषय को दलाई लामा के साथ उठाने और यह जानने के लिए उत्सुक था कि वह स्वयं इससे किस तरह निपटते हैं। उस दिन उनका कार्यक्रम काफ़ी व्यस्त था और मेरी अपनी उत्सुकता बढ़ रही थी क्योंकि हमारे साक्षात्कार से कुछ देर पहले ही उनके सचिव ने मुझे बताया कि हमें अपनी बात संक्षेप में करनी होगी। समय की कमी और इस बात की चिंता होने के कारण कि हम सभी विषयों पर बात नहीं कर सकेंगे, मैं जल्दी से बैठ गया और बात शुरू कर दी और उनसे संक्षिप्त उत्तर प्राप्त करने के अपने तरीके पर लौट आया।

“आप तो जानते हैं कि भय और चिंता हमारे बाहरी और भीतरी, दोनों तरह के लक्ष्यों की प्राप्ति में मुख्य बाधाएँ है। मनोविज्ञान में, इन चीज़ों से निपटने के अनेक तरीके हैं, लेकिन

मैं आपके दृष्टिकोण से, यह जानने को उत्सुक हूँ कि भय और चिंता मुक्त होने का सबसे अच्छा तरीका क्या है?"

विषय को अति सरल बनाने के मेरे निमंत्रण को ठुकराते हुए, दलाई लामा ने अपने सम्यक अंदाज़ में उत्तर दिया।

"भय के संदर्भ में, मेरे ख़्याल से हमें पहले यह समझना होगा कि भय कई किस्म का होता है। कुछ भय वास्तविक होते हैं, उनका ठोस आधार होता है, जैसे: हिंसा का डर या रक्तपात का भय। ये सब चीज़ें बहुत ख़राब हैं। इसके बाद, हमारे द्वारा किए गए नकारात्मक कार्यों के दूरगामी नकारात्मक परिणामों का भय, पीड़ा का भय, हमारे नकारात्मक भाव जैसे घृणा आदि का भय। मुझे लगता है कि ये सब भय होना ठीक है; ये हमें सही मार्ग पर लाते हैं और हमें बेहतर इंसान बनने में सहायता करते हैं।" वे सोचने के लिए रुके और फिर बोले, "हालाँकि, एक तरह से मुझे लगता है कि इन बातों का भय होने में और इन बातों के विनाशकारी प्रभाव के बारे में सोचने में कुछ अंतर होता है..."

वे कुछ देर के लिए फिर चुप हो गए और सोचने लगे। मैं बीच-बीच में चुपके-से घड़ी देख लेता था। निश्चय ही, उनके पास समय की कमी नहीं लग रही थी। फिर, वह बेफ़िक्री से बोलने लगे।

"दूसरी ओर, कुछ किस्म के भय हमारे दिमाग़ द्वारा पैदा किए हुए होते हैं। ये भय मानसिक कल्पनाओं पर आधारित होते हैं। वे बहुत बच्चों वाले डर होते हैं," वह हँसे, "जैसे जब हम छोटे थे और किसी अँधेरे स्थान से गुज़रते थे, विशेषकर पोताला* के अँधेरे कमरों में से, तो डर जाते थे - वह पूरी तरह कल्पना पर आधारित डर था। जब मैं छोटा था, तो मेरी देखभाल करने वाले लोग मुझे सतर्क करते रहते थे कि वहाँ एक उल्लू है जो छोटे बच्चों को उठा ले जाता और उन्हें खा जाता है!" दलाई लामा और ज़ोर से हँसने लगे। "और मैं उनकी बात पर सचमुच विश्वास कर लेता था!"

"कुछ दूसरी तरह के कल्पित भय होते हैं," वे बोलते रहे। "जैसे: यदि आपके भाव नकारात्मक हैं तो अपनी मानसिक स्थिति के चलते, आप उन भावों को दूसरों पर थोप देते हैं और फिर दूसरा व्यक्ति भी आपको नकारात्मक और अपना शत्रु दिखाई देने लगता है। इसके फलस्वरूप आपको डर लगता है। मेरे ख़्याल से इस तरह का डर घृणा से जुड़ा होता है और कल्पना से पैदा होता है। इसलिए, भय से निपटने के लिए पहले आपको तर्क द्वारा यह जानना होगा कि यह भय ठीक है या नहीं।"

मैंने पूछा, "किसी व्यक्ति या परिस्थिति को लेकर भय के प्रबल भाव के बजाय, अधिकतर लोग विभिन्न प्रकार की दैनिक समस्याओं से संबंधित चिंता से ग्रस्त रहते हैं। क्या आपके पास उससे निपटने का कोई तरीका है?"

दलाई लामा ने सिर हिलाते हुए कहा, "इस तरह की चिंता होने पर एक तरीका मुझे व्यक्तिगत तौर बहुत उपयोगी लगता है कि इस विचार को विकसित किया जाए: यदि स्थिति या समस्या ऐसी है जिसका समाधान किया जा सकता है तो फिर चिंता की कोई बात नहीं

है। दूसरे शब्दों में, अगर किसी समस्या का समाधान हो सकता है तो उसके विषय में ज़्यादा चिंता करने की कोई बात नहीं है। समाधान खोजना ही उचित तरीका है। चिंता के बारे में सोचते रहने से बेहतर यह है कि अपनी ऊर्जा को समाधान खोजने में लगाया जाए। इसका विकल्प यह है, अगर कोई उपाय न हो, कोई समाधान न मिले, कोई संभावना न दिखाई दे तो चिंता करने से भी कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि आप वैसे भी इसके बारे में कुछ नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में, जितनी जल्दी आप इस बात को स्वीकार कर लेंगे, आपके लिए उतना ही आसान हो जाएगा। निश्चय ही, समस्या का सामना करना ही सही तरीका होता है। अन्यथा आपको पता ही नहीं चलेगा कि उस समस्या का समाधान हो भी सकता है अथवा नहीं!"

"अगर उसके विषय में सोचने से चिंता कम न हो तो क्या किया जाए?"

"आपको इन बातों पर थोड़ा और विचार करने और इन्हें अधिक सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। स्वयं को बार-बार याद दिलाइए। खैर, मुझे लगता है कि इस तरीके से चिंता कम हो जाती है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि यह हमेशा कारगर होता है। यदि आपको हमेशा ही चिंता बनी रहती है तो आपको किसी विशेष स्थिति के बारे में विचार करना चाहिए। विभिन्न तरह की चिंताएँ होती हैं और उनके अनेक कारण होते हैं। कुछ ऐसी चिंताएँ या घबराहटें होती हैं जिनके जीव-विज्ञान संबंधी कारण होते हैं; जैसे: कुछ लोगों के हथेलियों में पसीना आ जाता है, जो तिब्बती चिकित्सा पद्धति के अनुसार, सूक्ष्म ऊर्जा के अंसतुलन का सूचक है। कुछ तरह की चिंताएँ जैसे डिप्रेशन के मूल में शारीरिक कारण होते हैं और इनके लिए इलाज लाभकारी होता है। इसलिए चिंता से प्रभावशाली तरीके से निपटने के लिए आपको उसके प्रकार और कारण को समझना होगा।"

"तो, भय की तरह, चिंता भी अनेक तरह की हो सकती है। एक तरह की चिंता में, जो मेरे ख़्याल से सबसे सामान्य होती है, व्यक्ति को यह डर होता है कि लोग उसे मूर्ख समझेंगे या उसके बारे में ग़लत सोचेंगे..."

"क्या आपको कभी इस तरह की चिंता या घबराहट हुई है?" मैंने बीच में टोका।

दलाई लामा बिना संकोच ज़ोर से हँसे और बोले, "हाँ!"

"क्या आप कोई उदाहरण दे सकते हैं?"

उन्होंने एक पल को सोचा और फिर कहा, "उदाहरण के लिए 1954 में चीन में अध्यक्ष माओ ज़ेडॉन्ग से पहली बैठक में और फिर एक अन्य अवसर पर चाऊ एन-लाई से मिलते समय ऐसा हुआ था। मैं उन दिनों नवाचार और परंपरा से पूरी तरह अवगत नहीं था। बैठक के दौरान आम तौर पर पहले कुछ अनौपचारिक बातचीत होती थी और फिर काम की बात करते थे। परंतु उस दिन मैं इतना घबराया हुआ था कि मैं बैठते ही मुद्दे की बात पर आ गया!" दलाई लामा उस बात को याद करके हँसने लगे। "मुझे याद है कि बाद में मेरा दुभाषिया, जो तिब्बती कम्युनिस्ट था और मेरा विश्वसनीय और बहुत अच्छा मित्र भी था, मुझे देखकर खूब हँसा और मुझे चिढ़ाता रहा।"

“मेरे ख़्याल से आजकल भी, सार्वजनिक वार्ता से पूर्व या प्रवचन से पहले, मुझे थोड़ी बेचैनी होती है, मेरे अनुचर प्राय: कहते हैं कि अगर ऐसा है तो आपने प्रवचन देने का निमंत्रण स्वीकार ही क्यों किया?” वह फिर से हँस पड़े।

“तो इस तरह की व्यक्तिगत चिंता से आप कैसे निपटते हैं?” मैंने पूछा।

उन्होंने कुछ चिढ़कर, बिना प्रभावित हुए शांत स्वर में कहा, “मुझे नहीं पता...” वे रुक गए और हम बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे। वे इस बीच सोच-विचार में डूबे हुए थे। अंत में उन्होंने कहा, “मुझे लगता है कि उचित प्रेरणा और ईमानदारी से इस तरह के भय और चिंता को दूर किया जा सकता है। तो यदि भाषण देने से पहले मुझे बेचैनी होती है तो मैं स्वयं को यह याद दिलाता हूँ कि भाषण देने का मुख्य उद्देश्य, असली कारण लोगों का भला करना है, न कि अपना ज्ञान प्रदर्शित करना! तो, मुझे जो कुछ पता है, मैं वही कहूँगा। जिन बातों की मुझे पूरी समझ नहीं है - इससे कोई अंतर नहीं पड़ता; मैं सिर्फ़ इतना कहता हूँ, ‘मेरे लिए, यह कठिन है।’ कुछ छिपाने या दिखावा करने का कोई कारण नहीं है। इस नज़रिए से, इस प्रेरणा के साथ, मुझे इस बात की फ़िक्र नहीं होती कि लोग मुझे मूर्ख समझेंगे या मेरे बारे में क्या सोचेंगे। तो, मैंने यह पाया कि ईमानदारी से भय और चिंता का प्रतिकार संभव है।”

“कभी-कभी चिंता का अर्थ दूसरों के सामने मूर्ख दिखने से अधिक होता है। व्यक्ति को असफल होने का डर, असमर्थ होने का भय होता है...” मैंने यह सोचते हुए कहा कि मुझे कितनी निजी सूचना व्यक्त करनी चाहिए।

दलाई लामा ने मेरी बात को ध्यान से चुपचाप सुना। मुझे नहीं पता उसका क्या मतलब था। शायद वे सहानुभूतिपूर्वक मेरी बात को समझ रहे थे, लेकिन इससे पहले कि मैं जान पाता, मैं शायद सामान्य मुद्दों से हटकर स्वयं के भय और चिंताओं के बारे में उनकी सलाह लेने लगा था।

“मुझे नहीं पता... कभी-कभी अपने मरीज़ों के साथ... कुछ का इलाज करना बहुत मुश्किल होता है - ऐसे मामले जहाँ डिप्रेशन या किसी अन्य रोग का पता लगा पाना जिसका इलाज हो सके। उदाहरण के लिए, कुछ मरीज़ होते हैं जिन्हें व्यक्तित्व मनोरोग होता है, जिन पर दवाइयाँ काम नहीं करतीं और मेरे पूरे प्रयास के बाद भी जिनके मामले में कोई प्रगति नहीं हुई। मुझे समझ नहीं आता कि ऐसे लोगों के साथ क्या किया जाए, कैसे उनकी मदद की जाए। मुझे समझ ही नहीं आता कि उनके साथ क्या हो रहा है। इस कारण मैं गतिहीन और असहाय महसूस करता हूँ,” मैंने शिकायत करते हुए कहा। “इसके कारण मुझे लगता है कि मैं बेकार हूँ जिससे फिर मुझे भय और चिंता होने लगती है।”

उन्होंने ध्यान से सुना और फिर स्नेहपूर्वक पूछा, “क्या आप कह सकते हैं कि आप अपने 70 प्रतिशत मरीज़ों की मदद कर पाते हैं?”

“इतने, कम से कम!” मैंने उत्तर दिया।

मेरे हाथ पर थपकी देते हुए वह बोले, “तो फिर, मुझे लगता है कि कोई समस्या नहीं है। अगर आप कहते कि आप सिर्फ़ 30 प्रतिशत लोगों की ही मदद कर पाते हैं, तो मैं कहता

कि बेहतर होगा कि आप कोई अन्य व्यवसाय करने का प्रयास करें। परंतु मुझे लगता है आप बढ़िया कर रहे हैं। मेरे पास भी लोग मदद के लिए आते हैं। कुछ लोगों को चमत्कार की तलाश होती है, किसी को चमत्कारी इलाज की आदि और निश्चित रूप से, मैं सभी की मदद नहीं कर पाता। लेकिन मेरे ख़्याल से असली चीज़ है प्रेरणा - मदद करने की सच्ची प्रेरणा। आप अपनी तरफ़ से सर्वश्रेष्ठ कीजिए और फिर आपको चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

"मेरे सामने भी, कई परिस्थितियाँ आती हैं जो अत्यंत नाज़ुक या गंभीर होती हैं और मुझ पर ज़बर्दस्त उत्तरदायित्त्व होता है। सबसे बुरा तब होता है जब लोग बहुत ज़्यादा भरोसा और विश्वास करते हैं और वह भी ऐसी परिस्थितियों में जब कुछ चीज़ें मेरे सामर्थ्य से परे होती हैं। ऐसी स्थितियों में कभी-कभी चिंता होना स्वाभाविक है। यहाँ, एक बार फिर प्रेरणा के महत्त्व पर लौटते हैं। मैं स्वयं को यह याद दिलाने की कोशिश करता हूँ कि मैं ईमानदार हूँ, मैंने अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश की। पूरी निष्ठा और करुणा के साथ, अगर मैंने कोई ग़लती कर दी या मैं असफल हो गया तो पछतावा नहीं होता। मैंने अपनी ओर से पूरा प्रयास किया। यदि मैं असफल हो भी गया तो यह इसलिए हुआ क्योंकि वह स्थिति मेरे सामर्थ्य से परे थी। इस ईमानदार प्रेरणा से भय दूर होता है और आपका आत्म-विश्वास बढ़ता है। इसके विपरीत अगर आपका इरादा किसी को धोखा देने का है और इसमें आप असफल हो जाते हैं तो सचमुच घबरा जाएँगे। परंतु यदि आप करुणामय प्रेरणा को विकसित करने में सफल हो जाएँ तो फिर असफल होने पर किसी तरह का पछतावा नहीं होता।"

"तो, मेरे ख़्याल से उचित प्रेरणा एक तरह की सुरक्षा देती है और आपको भय तथा चिंता के भावों से बचाती है। प्रेरणा बहुत ज़रूरी है। वास्तव में, सभी मानवीय क्रियाओं के पीछे संचलन होता है, और यही प्रेरणा समस्त क्रियाओं की कर्त्ता है। यदि आप शुद्ध और सच्ची प्रेरणा विकसित कर लें और उस प्रेरणा के पीछे दया, करुणा और सम्मान के आधार पर सहायता करने का भाव हो तो आप बिना चिंता या भय के, बिना यह सोचे कि लोग क्या कहेंगे या आप अपने लक्ष्य को पाने में सफल होंगे अथवा नहीं, किसी कार्य को किसी भी क्षेत्र में, अधिक प्रभावशाली ढंग से कर सकते हैं। अगर आप असफल हो भी गए तो आपको यह संतोष होगा कि आपने प्रयास किया। परंतु बुरी प्रेरणा से कार्य करने पर, हो सकता है लोग आपकी प्रशंसा करें और आप सफल भी हो जाएँ लेकिन आपको ख़ुशी नहीं मिलेगी।"

चिंता के प्रतिकार के संदर्भ में, दलाई लामा ने दो भिन्न स्तरों पर दो तरह के उपचार बताए थे। एक में, निरंतर परेशान और चिंता होने के भाव से सकारात्मक बातें सोचकर लड़ना: स्वयं को यह याद दिलाना कि यदि समस्या का समाधान हो सकता है तो चिंता की कोई बात नहीं है। यदि समाधान नहीं है तो भी चिंता करने का कोई फ़ायदा नहीं है।

दूसरा प्रतिकार व्यापक किस्म का उपचार है। इसमें व्यक्ति की भीतरी प्रेरणा का रूपांतरण किया जाता है। दलाई लामा द्वारा सुझाए मानव प्रेरणा की सोच और पाश्चात्य विज्ञान एवं मनोविज्ञान के बीच रोचक भेद है। जैसा कि हमने पहले चर्चा की थी, मानव

प्रेरणा का अध्ययन करने वाले शोधकर्त्ताओं ने दोनों स्वभावगत तथा सीखकर ग्रहण की गई ज़रूरतों और इच्छाओं को खोजते हुए सामान्य मानव उद्देश्यों की जाँच की है। इस स्तर पर, दलाई लामा ने इन सीखी गई इच्छाओं को विकसित करने पर ध्यान दिया और व्यक्ति के "उत्साह एवं दृढ़ विश्वास" को बढ़ाया है। कुछ मामलों में, यह अनेक परंपरागत पाश्चात्य "प्रेरणाप्रद विशेषज्ञों" के विचार से मेल खाता है क्योंकि वे भी व्यक्ति के उत्साह एवं दृढ़ विश्वास को बढ़ाकर लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते हैं। परंतु इसमें अंतर यह है कि दलाई लामा का उत्साह एवं दृढ़ विश्वास को बढ़ाने का उद्देश्य, भौतिक सफलता, धन या समृद्धि जैसी उपलब्धियों पर ज़ोर न देकर, उचित व्यवहार को बढ़ावा देना और नकारात्मक आदतों को दूर करना है। सबसे बड़ा अंतर शायद यह है कि जहाँ "प्रेरणादायक वक्ता" भौतिक सफलता के पहले से मौजूद लक्ष्यों को हवा देने में लगे हुए हैं और पाश्चात्य सिद्धांतवादी मनुष्य के मानक उद्देश्यों को वर्गीकृत करने में व्यस्त हैं, वहीं दलाई लामा की मानवीय प्रेरणा में मुख्य रुचि इस बात को लेकर है कि व्यक्ति की स्वभावगत प्रेरणा को करुणा और नेकी में आकार देना और बदलना है।

मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने और ख़ुशी प्राप्त करने के लिए दलाई लामा का तरीका यह है, व्यक्ति जितना ज़्यादा परोपकार द्वारा प्रेरित होता है, वह अत्यधिक चिंता पैदा करने वाली परिस्थितियों में उतना ही ज़्यादा निर्भय हो जाता है। यदि प्रेरणा पूरी तरह परोपकारी नहीं है, तो भी इस सिद्धांत को कई अन्य छोटे-छोटे तरीकों से प्रयोग किया जा सकता है। सिर्फ़ इतना सुनिश्चित करने से कि आपके कारण किसी को नुकसान नहीं हो रहा और आपकी प्रेरणा निष्ठावान है, रोज़मर्रा की सामान्य स्थितियों में चिंता कम करने में मदद मिल सकती है।

दलाई लामा से बातचीत के कुछ ही समय बाद, मैंने कुछ लोगों के साथ भोजन किया जिनमें एक युवक था जिससे मैं पहले भी मिल चुका था। वह स्थानीय विश्वविद्यालय का छात्र था। भोजन के दौरान किसी ने मुझसे दलाई लामा के साथ मेरी वार्ता के विषय में पूछा और तब मैंने चिंता से मुक्त होने के बार में उस संवाद की चर्चा की। जब मैंने "चिंता के प्रतिकार के लिए निष्ठावान प्रेरणा" का उल्लेख किया तो चुपचाप मेरी बात सुनने के बाद, उस छात्र ने बताया कि उसे सामाजिक परिस्थितियों में हमेशा बहुत शर्म आती थी और वह बहुत बेचैन हो जाता था। इस बारे में सोचते हुए कि वह इस तकनीक को अपनी बेचैनी दूर करने के लिए कैसे प्रयोग कर सकता है, छात्र बोला, "यह सब बहुत रोचक है। परंतु मुझे लगता है कि दया और करुणा जगाना सबसे मुश्किल काम है।"

"हाँ, शायद यह सही बात है।" मुझे उसकी बात माननी पड़ी।

हमारी बातचीत अन्य विषयों की ओर मुड़ गई और हमारा भोजन समाप्त हो गया। अगले सप्ताह उसी रेस्तरां में मेरी उस छात्र से फिर मुलाकात हो गई।

वह ख़ुश होकर मुझसे बोला, "आपको याद है हम लोग उस दिन प्रेरणा और चिंता के बारे में बात कर रहे थे? मैंने कोशिश की और वह सचमुच कारगर है! एक लड़की है जो मॉल के एक स्टोर में काम करती है जिसे मैंने कई बार देखा है। मैं उसके साथ घूमने जाना चाहता

था लेकिन मैं उसे जानता नहीं था और मुझे हमेशा बहुत शर्म और चिंता रहती थी, इसलिए मैंने उससे कभी बात नहीं की। एक दिन मैं फिर से वहाँ गया लेकिन इस बार मैं उससे बात करने के लिए प्रेरित हुआ। मेरी प्रेरणा यही थी कि मैं उसके साथ बाहर घूमने जाना चाहता था। परंतु इसके पीछे सिर्फ़ यह इच्छा थी कि मुझे कोई मिले जिसे मैं प्यार कर सकूँ और जो मुझे प्यार करे। मैंने इस बारे में सोचा तो मुझे लगा कि इसमें कुछ ग़लत नहीं है और यह कि मेरी प्रेरणा सच्ची है; मैं उसे या स्वयं को कोई नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। इस बात को दिमाग़ में रखकर और स्वयं को यह बार-बार याद दिलाने से मुझे मदद मिली; इस कारण मैं उससे बात करने की हिम्मत जुटा पाया। मेरा दिल अब भी धड़क रहा है लेकिन मुझे ख़ुशी है कि मैं उससे बात करने का साहस कर सका।"

"मुझे यह सुनकर बहुत ख़ुशी हुई," मैंने कहा। "फिर क्या हुआ?"

"जैसा कि प्रायः होता है, पहले से ही कोई लड़का उसका कोई दोस्त है। मुझे थोड़ी निराशा हुई लेकिन, ठीक है। मुझे यह सोचकर अच्छा लग रहा है कि मैं अपने शर्मीले स्वभाव से ऊपर उठ सका। इससे मुझे यह एहसास हुआ कि यदि मेरी प्रेरणा सच्ची है और मैं इस बात को ध्यान में रखूँ तो इस तरह की परिस्थिति में मुझे काफ़ी मदद मिलेगी।"

ईमानदारी से कमज़ोर आत्म-सम्मान और अतिविश्वास का प्रतिकार

अपने महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों की प्राप्ति में आत्म-विश्वास की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। हमारा लक्ष्य कॉलेज की डिग्री लेना हो, सफल व्यवसाय करना हो, संतोषजनक रिश्ते निभाना हो या फिर अपने दिमाग़ को ख़ुश रहना सिखाना हो, इन सभी में यह बात लागू होती है। कमज़ोर आत्म-विश्वास हमें आगे बढ़ने, चुनौतियों का सामना करने से और यहाँ तक कि अपने लक्ष्यों को पाने के लिए ज़रूरी ख़तरे उठाने से रोकता है। अतिविश्वास भी इतना ही हानिकारक हो सकता है। जिन लोगों को अपनी उपलब्धियों और क्षमताओं के बारे में ज़्यादा घमंड होता है, जब उनका सामना सच्चाई से होता है और दुनिया स्वयं के बारे में उनके आदर्श स्वरूप को स्वीकार नहीं करती तो वे निरंतर निराशा, हताशा और ग़ुस्से के शिकार होते रहते हैं। जब वे अपनी ही बनाई आदर्श छवि के अनुरूप कार्य नहीं कर पाते तो उनके डिप्रेशन में जाने की संभावना बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, उनकी इस भव्यता के कारण उनके अंदर कुछ ऐसा अधिकार एवं दंभ का भाव पैदा हो जाता है जिसकी वजह से वे दूसरों से दूर हो जाते हैं और उनके लिए भावनात्मक रूप से संतोषदायक रिश्ते निभाना कठिन हो जाता है। अंत में, वे अपनी क्षमताओं को आवश्यकता से अधिक आँकने से ख़तरे उठाने लगते हैं। जैसा कि फ़िल्म मैग्नम फ़ोर्स में इंस्पेक्टर डर्टी हैरी कैलहन दार्शनिक अंदाज़ में (जब अतिविश्वासी खलनायक स्वयं को मारता है) कहता है, "व्यक्ति को अपनी सीमाओं का पता होना चाहिए।"

पाश्चात्य मनोचिकित्सा परंपरा में, विचारक बताते हैं कि कमज़ोर और अति दोनों ही

तरह के आत्म-विश्वास का संबंध लोगों की अपने बारे में छवि में होने वाली गड़बड़ी से होता है और उन्होंने लोगों के आरंभिक जीवन के दौरान आई परेशानियों के मूल कारणों को भी खोजा है। अनेक विचारक कमज़ोर और अति आत्म-विश्वास को एक ही सिक्के के दो पहलू मानते हैं और कहते हैं कि अति आत्म-विश्वास वाली छवि अपने ही बारे में भीतर मौजूद असुरक्षा तथा नकारात्मक भावनाओं के विरुद्ध अचेतन सुरक्षा प्रणाली का कार्य करती है। मनोविश्लेषण की ओर रुझान वाले मनोचिकित्सक ने इस विषय पर व्यापक सिद्धांत बनाए हैं कि आत्म-छवि में विकार कैसे उत्पन्न होते हैं। वे बताते हैं कि लोग अपने वातावरण से ली गई प्रतिक्रिया को अपने भीतर उतारकर किस तरह आत्म-छवि का निर्माण करते हैं। वे समझाते हैं कि अपने माता-पिता से अपने बारे में स्पष्ट एवं अस्पष्ट संदेश जोड़कर लोग किस तरह अपने बारे में धारणा बना लेते हैं और जब अपनी देखभाल करने वालों से उन्हें स्वस्थ एवं पोषक प्रतिक्रिया नहीं मिलती तो किस तरह इस छवि में विकार पैदा हो जाते हैं।

जब आत्म-छवि में इतनी ज़्यादा गड़बड़ियाँ आ जाती हैं कि जीवन में बड़ी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं तो लोग मनोचिकित्सा की मदद लेते हैं। अंतर्ज्ञान-रुझान वाले मनोचिकित्सक मरीज़ों को समस्या का कारण बने उनके शुरुआती संबंधों के दुष्क्रियात्मक स्वरूप को समझाकर उनकी मदद करने पर ध्यान देते हैं और उन्हें उचित प्रतिसूचना और चिकित्सा का माहौल उपलब्ध करवाते हैं, जहाँ मरीज़ धीरे-धीरे अपनी नकारात्मक आत्म-छवि को पुनर्गठित और ठीक कर सकते हैं। दूसरी ओर, दलाई लामा इस बात पर समय नष्ट न करके कि तीर किसने चलाया है, "तीर को बाहर खींचने" पर ध्यान देते हैं। यह सोचने के बजाय कि लोगों में आत्म-विश्वास कम क्यों होता है, वे इन नकारात्मक पहलुओं से निपटने का सीधा तरीका बताते हैं।

हाल के दशकों में, "मैं" की प्रकृति पर मनोविज्ञान के क्षेत्र में सबसे अधिक शोध हुआ है। उदाहरण के लिए, 1980 के "मैं दशक" के दौरान प्रति वर्ष हज़ारों लेख आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास के विषयों पर प्रकाशित हुए थे। इस बात को ध्यान में रखते हुए, मैंने दलाई लामा के सामने यह विषय उठाया। "अपनी एक अन्य वार्ता के दौरान आपने विनम्रता को सकारात्मक गुण माना था और बताया था कि यह किस तरह धैर्य और सहनशीलता के साथ संबद्ध है। पाश्चात्य मनोविज्ञान और सामान्य तौर पर हमारी संस्कृति में, ऐसा देखने में आता है कि आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास के उच्च स्तरों को विकसित करने के पक्ष में विनम्रता को नज़रअंदाज़ कर दिया गया है। वास्तव में, पश्चिम में इन गुणों पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है। मैं सोच रहा था - क्या आपको लगता है कि पश्चिम के लोग आत्म-विश्वास को ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्व देते हैं, कि यह एक प्रकार की आत्म-मग्नता या आत्म-लीनता है?"

"ज़रूरी नहीं है," दलाई लामा ने उत्तर दिया, "यह विषय बहुत जटिल है। उदाहरण के लिए, महान आध्यात्मिक लोग वही होते हैं जिन्होंने संकल्प लिया हो या दृढ़ विश्वास पैदा कर लिया हो कि वे समस्त प्राणियों को ख़ुशी देने के लिए उनकी सभी नकारात्मक

मानसिकताओं को दूर करेंगे। उनकी इसी तरह की सोच और इच्छा होती है। इसके लिए अत्यधिक आत्म-विश्वास की ज़रूरत होती है। यह आत्म-विश्वास बहुत महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि यह आपके दिमाग़ को हिम्मत देता है, ताकि आप महान उद्देश्यों को पूरा कर सकें। एक तरह से यह घमंड प्रतीत होता है, हालाँकि यह नकारात्मक नहीं है, यह ठोस तर्क पर आधारित है। मैं उन्हें अत्यंत साहसी मानता हूँ - मैं उन्हें नायक मानता हूँ।"

"ऊपरी तौर पर घमंड लगने वाली बात, किसी महान आध्यात्मिक गुरु के लिए आत्म-विश्वास और साहस का विषय हो सकती है," मैंने मान लिया। "परंतु साधारण लोगों के लिए, रोज़ के हालात में, इससे विपरीत होने की संभावना ज़्यादा है - किसी का मज़बूत आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान हो लेकिन वह देखने में घमंड लगता है। मैं जानता हूँ कि बौद्ध धर्म में, घमंड को 'मूल कष्टकारी भाव' में से एक माना जाता है। मैंने पढ़ा है कि एक पद्धति के अनुसार घमंड सात प्रकार के होते हैं। इसलिए, घमंड पर काबू पाना या उससे बचना बहुत आवश्यक है। इसी तरह दृढ़ आत्म-विश्वास होना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। कभी-कभी इनके बीच का अंतर बहुत बारीक होता है। आप इनके बीच का भेद जानकर किस तरह एक को कम और दूसरे को बढ़ा सकते हैं?"

"कभी-कभी आत्म-विश्वास और घमंड के बीच फ़र्क़ कर पाना बहुत कठिन होता है," उन्होंने स्वीकार किया। "शायद इन दोनों के बीच भेद करने का एक तरीका यह देखना है कि यह ठोस है अथवा नहीं। किसी व्यक्ति में, किसी अन्य व्यक्ति के संदर्भ में श्रेष्ठता का अत्यंत ठोस और उचित भाव होता है जो बिल्कुल औचित्यपूर्ण एवं वैध हो सकता है। इसके अतिरिक्त, अतिविश्वास का भाव भी हो सकता है जो बिल्कुल निराधार होता है। यह घमंड का रूप है। तो, उनके घटनात्मक संदर्भ में, वे एक जैसे दिखाई देते हैं..."

"परंतु घमंडी व्यक्ति को हमेशा ही ऐसा लगता है कि उसका उचित आधार है..."

"यह ठीक है, ठीक बात है," दलाई लामा ने उसे स्वीकार किया।

"तो फिर आप दोनों में अंतर कैसे कर सकते हैं?" मैंने पूछा।

"मुझे लगता है कभी-कभी सिर्फ़ अनुदर्शन में, उस व्यक्ति के द्वारा अथवा किसी तीसरे व्यक्ति के नज़रिए से इसकी जाँच की जा सकती है।" दलाई लामा रुके और फिर उन्होंने मज़ाक किया, "शायद उस व्यक्ति को यह जानने के लिए अदालत में जाना चाहिए कि वह अतिविश्वास है या घमंड!" वह हँस दिए।

"घमंड और उचित आत्म-विश्वास में अंतर करने के लिए," वे बोलने लगे, "व्यक्ति को अपने व्यवहार के परिणामों के सदंर्भ में सोचना चाहिए - आम तौर पर, घमंड और दंभ का परिणाम नकारात्मक होता है जबकि स्वस्थ आत्म-विश्वास का परिणाम हमेशा सकारात्मक होता है। यहाँ जबकि हम 'आत्म-विश्वास' की चर्चा कर रहे हैं तो आपको यह देखना होगा कि 'मैं' के पीछे का भाव क्या है। मेरे ख़्याल से यह दो तरह का हो सकता है। मैं का एक अर्थ है 'अहंकार', जो सिर्फ़ अपने स्वार्थ, अपनी इच्छाओं की पूर्ति से संबंधित होता है और उसे दूसरों की कोई परवाह नहीं होती। दूसरी तरह का मैं, दूसरों की सचमुच चिंता करता है

और उसमें सेवा की इच्छा होती है। सेवा की इस इच्छा को पूरा करने के लिए व्यक्ति के अंदर 'मैं' का दृढ़ भाव और मज़बूत आत्म-विश्वास होना ज़रूरी है। इस तरह के आत्म-विश्वास के सकारात्मक परिणाम होते हैं।"

मैंने कहा, "पहले, शायद आपने यह कहा था कि यदि व्यक्ति दंभ को दोष मानता है और उसे दूर करना चाहता है तो घमंड या अहंकार को कम करने का एक तरीका है अपने कष्ट के बारे में सोचना - उन सब तरीकों के बारे में सोचना जिनसे हमें कष्ट हो सकता है। अपनी पीड़ा पर विचार करने के अलावा, क्या घमंड को कम करने या उसके प्रतिकार की कोई अन्य तकनीक है?"

वे बोले, "एक प्रतिकार यह है कि आप उन विद्याओं की विविधता के विषय में सोचिए जिनकी आपको कोई जानकारी नहीं है। उदाहरण के लिए, आधुनिक शिक्षा प्रणाली में अनेक विद्याएँ होती हैं। तो यह सोचने से कि आपको कितने क्षेत्रों की जानकारी नहीं है, आपका घमंड कम हो सकता है।"

दलाई लामा ने बोलना बंद कर दिया। मैं यह सोचकर कि उन्हें इस विषय पर और कुछ नहीं कहना, अपने कागज़ देखने लगा ताकि नया विषय शुरू किया जा सके। वे अचानक विचारपूर्ण स्वर में बोलने लगे, "आप जानते हैं, हम लोग स्वस्थ आत्म-विश्वास विकसित करने के बारे में बात कर रहे हैं... मुझे लगता है कि ईमानदारी और आत्म-विश्वास का नज़दीकी संबंध है।"

"क्या आपका आशय अपनी क्षमताओं के प्रति खुद से ईमानदार रहने से है? या फिर आप दूसरों के साथ ईमानदार होने की बात कर रहे हैं?" मैंने पूछा।

"दोनों," वे बोले। "आप जितने ईमानदार होंगे, उतने ही उदार-हृदय होंगे और आपको उतना ही डर कम लगेगा, क्योंकि फिर दूसरों के सामने सच खुल जाने का खतरा नहीं रहता। तो मुझे लगता है कि आप जितने ज़्यादा ईमानदार होंगे, आपका आत्म-विश्वास उतना ही अधिक होगा..."

"मैं इस बात को थोड़ा और जानने के लिए उत्सुक हूँ कि आत्म-विश्वास के मामले से, आप निजी तौर पर कैसे निपटते हैं," मैंने कहा। "आपने कहा कि लोग आपके पास आते हैं और आपसे चमत्कार की अपेक्षा करते हैं। वे आपके ऊपर इतना दबाव बना देते हैं और उनकी आपसे इतनी ज़्यादा उम्मीदें होती हैं। यदि आपके पास कोई उचित प्रेरणा भी हो, तो क्या फिर भी इससे आपको अपनी क्षमताओं में आत्म-विश्वास की कमी महसूस होती है?"

"यहाँ, मेरे ख़्याल से आपको यह दिमाग़ में रखना होगा कि किसी विशिष्ट संदर्भ में, 'आत्म-विश्वास की कमी' या 'आत्म-विश्वास के होने' से आपका क्या अभिप्राय है। किसी चीज़ में आत्म-विश्वास की कमी होने का अर्थ यह है कि आपको यह विश्वास है कि आप उस काम को कर सकते हैं, और सामान्य रूप से कहें तो वह आपके वश में है। फिर, यदि कोई चीज़ आपके वश में है और आप उसे नहीं कर पाते तो आपको, 'ओह, मैं शायद इस काम के लिए ठीक नहीं हूँ या असमर्थ हूँ आदि' जैसा कुछ लगता है। हालाँकि, मेरे लिए इस बात का

बोध कि मैं चमत्कार नहीं कर सकता - आत्म-विश्वास की कमी का कारण नहीं है क्योंकि मैंने कभी सोचा ही नहीं कि मैं ऐसा कुछ कर सकता हूँ। मैं स्वयं से पूर्ण बोध प्राप्त किए हुए बुद्ध की तरह - मैं सबकुछ जानता हूँ, मुझे सब पता है और हर समय एवं किसी भी समय पर सब कुछ सही कर सकता हूँ - बनने की उम्मीद नहीं करता। तो जब लोग मेरे पास आते हैं और उपचार द्वारा उन्हें ठीक करने या मुझे कोई चमत्कार दिखाने के लिए कहते हैं तो मुझे अपने अंदर आत्म-विश्वास की कमी नहीं लगती, बल्कि मैं असहज महसूस करता हूँ।"

"मुझे लगता है कि सामान्य तौर पर, स्वयं से और दूसरों से, जो आप कर सकते हैं और जो आप नहीं कर सकते हैं, के संदर्भ में ईमानदार रहने से आप आत्म-विश्वास की कमी को दूर कर सकते हैं।"

"परंतु, उदाहरण के लिए, चीन के साथ स्थिति से निपटने के संदर्भ में, मुझे कभी-कभी खुद में आत्म-विश्वास की कमी महसूस होती है। परंतु मैं प्रायः अधिकारियों एवं गैर-अधिकारियों से ऐसी स्थितियों पर चर्चा करता हूँ। मैं अपने मित्रों से इस विषय पर परामर्श लेता हूँ और उसके बाद ही चर्चा करता हूँ। चूंकि बहुत-से निर्णय लापरवाही से नहीं, बल्कि विभिन्न लोगों से चर्चा करने के बाद लिए जाते हैं, जो भी निर्णय लिया जाते हैं, मुझे उनसे काफ़ी विश्वास प्राप्त होता है और फिर उन निर्णयों पर कोई पछतावा नहीं होता।"

आत्म-संशय और कमज़ोर आत्म-विश्वास के विरुद्ध निर्भय एवं ईमानदार आत्म-विश्लेषण शक्तिशाली हथियार होता है। दलाई लामा का इस बात में विश्वास कि ईमानदारी से नकारात्मक मानसिकता का प्रतिकार किया जा सकता है, अनेक अध्ययनों द्वारा पुष्ट किया जा चुका है जो यह बताते हैं कि जिन लोगों का अपने बारे में यथार्थवादी और सटीक नज़रिया होता है, वे स्वयं को पसंद करते हैं तथा उनमें कम या ग़लत आत्म-ज्ञान वाले लोगों की तुलना में आत्म-विश्वास अधिक होता है।

मैंने पिछले कई सालों में दलाई लामा को यह दर्शाते देखा है कि अपनी क्षमता को लेकर ईमानदार और स्पष्ट होने से किस तरह आत्म-विश्वास पैदा होता है। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ था जब मैंने उन्हें बहुत-से श्रोताओं के सामने किसी प्रश्न के उत्तर में यह कहते सुना कि "मुझे नहीं पता।" जो लोग इस तरह के शैक्षिक आख्यान देते हैं अथवा स्वयं को किसी चीज़ का विशेषज्ञ समझते हैं, उनसे अलग दलाई लामा ने बिना शर्म महसूस किए या कोई सफ़ाई दिए अथवा बात को बिना घुमाए, किसी चीज़ का ज्ञान न होने की बात स्वीकार की।

वास्तव में, कोई मुश्किल प्रश्न पूछे जाने पर जिसका उनके पास कोई उत्तर नहीं था, उन्हें अच्छा लगता था और वे उस पर मज़ाक भी कर लेते थे। उदाहरण के लिए, टक्सन में एक दिन, वे शांतिदेव की पुस्तक गाइड टू दि बोधिसत्व लाइफ़ के एक छंद पर टिप्पणी कर रहे थे जो काफ़ी जटिल था। वे कुछ देर कोशिश करते रहे, फिर उलझ गए और हँसकर बोले:

"मैं उलझ गया हूँ! मेरे ख़्याल से इसे छोड़ देना बेहतर है। अब अगले छंद में..."

इस पर श्रोताओं द्वारा प्रशंसात्मक रूप से हँसने पर वे और ज़ोर से हँसे और बोले,

“इस सोच के लिए एक ख़ास तरह की अभिव्यक्ति है। यह ऐसा है जैसे कोई बूढ़ा व्यक्ति भोजन कर रहा हो - एक बहुत बूढ़ा जिसके दाँत न हों। वह नर्म चीज़ें खा लेता है; सख़्त चीज़ें छोड़ देता है!” दोबारा हँसते हुए, वे बोले, “तो हम इसे आज के लिए यहीं छोड़ देते हैं।” वे अपने परम आत्म-विश्वास से बिल्कुल नहीं डिगे।

आत्म-घृणा के प्रतिकार के रूप में हमारी क्षमता पर चिंतन

दलाई लामा के ऐरिज़ोना दौरे से दो वर्ष पूर्व, 1991 में अपनी भारत यात्रा के दौरान, मैं कुछ समय के लिए उनसे उनके घर धर्मशाला में मिलने गया था। वे उस सप्ताह प्रतिदिन पश्चिम के वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, मनोवैज्ञानिकों और ध्यान गुरुओं से मिल रहे थे और मस्तिष्क-शरीर के संबंध को समझकर भावनात्मक अनुभव एवं शारीरिक स्वास्थ्य के बीच संबंध को जानने का प्रयास कर रहे थे। एक दिन दोपहर में, कुछ वैज्ञानिकों से मिलने के बाद दलाई लामा मुझसे भी मिले। हमारे साक्षात्कार के अंत में, दलाई लामा ने पूछा, “आपको पता है कि इस सप्ताह मैं वैज्ञानिकों से मिल रहा था?”

“हाँ...”

“इस सप्ताह कुछ ऐसा हुआ जिससे मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है। आत्म-घृणा की अवधारणा। आपको इसके बारे में पता है?”

“निश्चय ही पता है। मेरे बहुत-से मरीज़ इससे पीड़ित हैं।”

“जब वे लोग इस विषय पर बात कर रहे थे तो मुझे नहीं पता कि मुझे उनकी बात ठीक से समझ में आ रही थी या नहीं,” वे हँसे। “मैंने सोचा, ‘निश्चय ही, हम स्वयं से प्रेम करते हैं! कोई व्यक्ति स्वयं से घृणा कैसे कर सकता है?’ हालाँकि मुझे लगता है कि मैं दिमाग़ की कार्य प्रणाली को थोड़ा समझता हूँ, लेकिन स्वयं से घृणा करने का यह विचार मेरे लिए बिल्कुल नया है। मुझे यह अविश्वसनीय लगा क्योंकि बौद्धधर्मी अपनी स्वार्थी सोच, स्वार्थी विचार एवं उद्देश्यों को दूर करने के लिए बहुत मेहनत करते हैं। इस नज़रिए से मुझे लगता है कि हम लोग स्वयं को बहुत पसंद करते है। इसलिए स्वयं को नापसंद करने या खुद से घृणा करने की संभावना बहुत ज़्यादा अविश्वसनीय लगती है। मनोवैज्ञानिक होने के नाते, क्या आप मुझे यह समझा सकते हैं, कि यह कैसे होता है?”

मैंने उन्हें संक्षेप में बताया कि मन में आत्म-घृणा कैसे उठती है। मैंने बताया कि माता-पिता और हमारे पालन-से पोषण द्वारा हमारी आत्म-छवि तैयार होती है, बड़े होते समय हम अप्रत्यक्ष संदेश ग्रहण करते चलते हैं। मैंने नकारात्मक छवि बनाने वाली विशिष्ट स्थितियों का भी उल्लेख किया। मैंने वे कारण बताए जिनसे आत्म-घृणा का भाव बढ़ता है, जैसे: अपनी आदर्शवादी आत्म-छवि के अनुकूल व्यवहार न कर पाना और मैंने वे तरीके भी बताए जिनके द्वारा, विशेषकर कुछ महिलाओं और जातियों में आत्म-घृणा को बढ़ावा मिलता है। मैं जिस समय दलाई लामा के साथ इस विषय पर चर्चा कर रहा था, दलाई लामा विचारपूर्ण मुद्रा में सुन रहे थे और उनके चेहरे पर प्रश्नवाची भाव था मानो उन्हें इस विचित्र अवधारणा

को समझने में अब भी परेशानी हो रही थी।

ग्राउचो मार्क्स ने एक बार कहा था, "मैं ऐसे किसी क्लब से नहीं जुड़ूँगा जो मुझे अपना सदस्य बनाए।" इस नकारात्मक आत्म-विचार को मानवीय स्वभाव पर टिप्पणी का रूप देते हुए, मार्क ट्वेन ने कहा, "अपने हृदय की निजी गहराई में, किसी व्यक्ति के मन में स्वयं के लिए सम्मान नहीं होता।" मानवता पर इस निराशावादी दृष्टिकोण को अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से जोड़कर, मनोवैज्ञानिक कार्ल रॉजर्स ने एक बार दावा किया, "अधिकतर लोग स्वयं से घृणा करते हैं, और खुद को बेकार एवं अप्रिय समझते हैं।"

हमारे समाज में एक चर्चित धारणा है, अधिकतर समकालीन मनोचिकित्सक जिससे सहमत हैं, कि पाश्चात्य संस्कृति में आत्म-घृणा निरंकुश ढंग से व्याप्त है। हालाँकि यह निश्चित रूप से समाज में मौजूद है, लेकिन इतनी भी फैली हुई नहीं है जितना माना जाता है। मनोचिकित्सा का सहारा लेने वालों के बीच यह एक आम समस्या है, लेकिन कभी-कभी मनोचिकित्सक इसे ग़लत समझ लेते हैं और अपने क्लीनिक पर आए कुछ लोगों के आधार पर, इसे मानव स्वभाव संबंधी आम धारणा मान लेते हैं। प्रयोगात्मक प्रमाण पर आधारित अधिकांश आँकड़े यह बताते हैं कि प्रायः लोग स्वयं को अच्छे ढंग से देखा जाना पसंद करते हैं, तथा व्यक्तिपरक व सामजिक रूप से वांछित गुणों पर किए गए लगभग सभी सर्वेक्षणों में, वे स्वयं को "औसत से बेहतर" मानते हैं।

तो, हालाँकि आत्म-घृणा उतनी व्यापक नहीं है जितना उसे समझा जाता है, फिर भी यह अनेक लोगों के लिए एक बहुत बड़ी बाधा है। मैं दलाई लामा की प्रतिक्रिया पर उतना ही आश्चर्यचकित हुआ, जितना वे आत्म-घृणा की अवधारणा से हैरान हुए थे। उनकी आरंभिक प्रतिक्रिया हैरान करने वाली और सुकून देने वाली है।

उनकी शानदार प्रतिक्रिया मुख्य रूप से दो बातों से संबंधित है जिन पर विचार करने की आवश्यकता है। पहली बात यह कि वे आत्म-घृणा के अस्तित्व से अनभिज्ञ थे। इस धारणा से कि आत्म-घृणा व्यापक रूप से फैली समस्या है, ऐसा विचार बनता है मानो यह मनुष्य की मनोदशा में गहराई से अंकित एक विशेषता है। परंतु यह तथ्य कि अनेक संस्कृतियों, जैसे तिब्बती संस्कृति में कभी इसके बारे में सुना ही नहीं गया, इस बात की याद दिलाता है कि अन्य सभी नकारात्मक मानसिक अवस्थाओं की तरह, जिनकी हमने चर्चा की, यह कष्टकारी मानसिकता मानव मस्तिष्क का मूलभूत अंश नहीं है। हम इसे अपने साथ लेकर पैदा नहीं होते। यह हमारे साथ हमेशा के लिए बँधी हुई नहीं है, और न ही यह हमारे स्वभाव का ऐसा गुण है जिसे मिटाया नहीं जा सकता। इस बात का बोध होने मात्र से ही इसकी शक्ति कम हो जाती है, हमें उम्मीद मिलती है और इसे दूर करने के लिए हमारी वचनबद्धता बढ़ जाती है।

दूसरी बात दलाई लामा की आरंभिक प्रतिक्रिया, 'स्वयं से घृणा? निश्चय ही, हम स्वयं से प्रेम करते हैं!' से संबंधित है। हम में से जो लोग आत्म-घृणा से ग्रस्त हैं या किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जो इससे पीड़ित है, उनके लिए यह प्रतिक्रिया, पहली नज़र में, अत्यंत

भोली-भाली प्रतीत होती है। परंतु नज़दीक से देखने पर, इस प्रतिक्रिया में मर्मभेदी सत्य छिपा हुआ है। प्रेम को परिभाषित करना बहुत कठिन है, और इसकी अनेक परिभाषाएँ हो सकती हैं। परंतु प्रेम, और शायद सबसे शुद्ध एवं उन्नत प्रेम की एक परिभाषा यह है कि व्यक्ति सिर्फ़ और सिर्फ़, पूरी तरह से दूसरे व्यक्ति की ख़ुशी चाहता है। यह दूसरे के लिए दिल से माँगी गई ख़ुशी होती है तथा इस बात से भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि दूसरे व्यक्ति ने आपको दुख पहुँचाया है या हम उसे पसंद भी करते हैं या नहीं। अब दिल की गहराइयों में भी यह सवाल बाकी नहीं है और हम सब ख़ुश रहना चाहते हैं। तो, प्रेम की हमारी परिभाषा यदि दूसरे की ख़ुशी पर आधारित है तो इसका अर्थ यह है कि हम सब स्वयं से भी प्रेम करते हैं - प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए ख़ुशी की कामना करता है। अपने चिकित्सा के व्यवसाय में मैंने आत्म-घृणा के अत्यंत विकट मामले देखे हैं जहाँ व्यक्ति के मन में बार-बार आत्महत्या का विचार आता है। परंतु ऐसे मामलों में भी मृत्यु का विचार भी आख़िरकार व्यक्ति की स्वयं को कष्ट और पीड़ा से मुक्ति दिलाने की इच्छा (हालाँकि यह इच्छा विकृत या अनुचित है) पर ही आधारित होती है।

तो दलाई लामा यदि इस बात में विश्वास करते हैं कि हम सबके भीतर स्वयं के लिए प्रेम होता है तो वह ग़लत नहीं सोचते और यही प्रेम आत्म-घृणा का शक्तिशाली प्रतिकार सुझाता है: हम आत्म-प्रवंचना के विचारों को बार-बार यह याद करके दूर कर सकते हैं कि हमें अपनी कुछ बातें कितनी भी नापसंद क्यों न हों, अंदर से हम सब ख़ुश रहना चाहते हैं और यही सच्चा प्रेम है।

धर्मशाला की एक अन्य यात्रा के दौरान, मैंने आत्म-घृणा के विषय पर दलाई लामा से दोबारा बात की। उस समय तक वे उस विषय से परिचित हो चुके थे और उसे दूर करने के तरीकों पर काम करना शुरू कर दिया था।

“बौद्ध धर्म के नज़रिए से,” उन्होंने बताया, “निराशाजनक स्थिति में होना या हतोत्साहित होना एक तरह की चरम स्थिति है जो साफ़ तौर पर लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कदम उठाने की राह में बाधा है। आत्म-घृणा की स्थिति निराश होने की स्थिति से भी कहीं अधिक ख़राब है और यह बहुत ख़तरनाक हो सकती है। बौद्ध पद्धतियों का अभ्यास करने वालों के लिए, आत्म-घृणा का प्रतिकार इस सोच में निहित है कि व्यक्ति की वर्तमान स्थिति कितनी भी बुरी क्यों न हो, उसके भीतर बुद्ध स्वभाव होता है - जिसमें आदर्श बनने और पूर्ण बोध प्राप्त करने का सामर्थ्य मौजूद है। इसलिए बौद्ध धर्म के अभ्यासों में लीन लोगों को, जो आत्म-घृणा या आत्म-प्रवंचना से ग्रस्त हैं, जीवन के कष्टों या असंतोष पर अधिक विचार नहीं करना चाहिए, बल्कि उन्हें मनुष्य के भीतर व्याप्त ज़बर्दस्त सामर्थ्य जैसे जीवन के अन्य सकारात्मक पहलुओं के बारे में सोचना चाहिए। इन अवसरों और क्षमताओं पर विचार करने से वे स्वयं की दृष्टि में अपना महत्त्व और आत्म-विश्वास बढ़ा पाएँगे।”

एक ग़ैर- बुद्धधर्मी के दृष्टिकोण से प्रश्न उठाते हुए, मैंने पूछा, “जिसने बुद्धि स्वभाव के बारे में न सुना हो या जो बौद्धधर्मी न हो, उसके लिए प्रतिकार का क्या तरीका है?”

"ऐसे लोगों को हम एक सामान्य बात कह सकते हैं कि मनुष्य होने के नाते हमें मानव बुद्धि का विलक्षण उपहार मिला है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सभी मनुष्यों के पास दृढ़ रहने की क्षमता है और हम इस दृढ़ता के प्रबल भाव का अपनी इच्छा से किसी भी दिशा में उपयोग कर सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है। व्यक्ति को अपनी इन क्षमताओं के प्रति जागरूक रहकर, स्वयं को बार-बार इनका स्मरण करवाना चाहिए जिससे यह उसके साथ-साथ दूसरे मनुष्यों को समझने का - आम तरीका बन जाए और तब ऐसा करने से हताशा, असहाय होने एवं आत्म-प्रवंचना की भावना कम हो जाती है।"

दलाई लामा एक पल के लिए ठहरे और फिर सोचने की मुद्रा में आ गए जिससे पता लग रहा था कि वह अब भी कुछ खोज रहे थे और खोजबीन करने की उनकी यह प्रक्रिया चलती ही रहती है। चिंता से निपटना और स्वाभिमान का निर्माण

"मेरे ख़्याल से हम जिस तरह से शारीरिक बीमारी का इलाज करते हैं, यह बात उससे बहुत मिलती है। डॉक्टर जब किसी ख़ास बीमारी का इलाज करते हैं तो वे उस बीमारी के लिए न सिर्फ़ एंटीबायोटिक दवाएँ देते हैं, बल्कि यह भी सुनिश्चित करते हैं कि वह बीमार व्यक्ति उन एंटीबायोटिक दवाओं को लेना सहन भी कर सकता है अथवा नहीं। तो, यह सुनिश्चित करने के लिए, डॉक्टर इस बात का ध्यान रखते हैं कि उसका खाना-पीना अच्छा हो और उन्हें मरीज़ को विटामिन आदि देने की भी ज़रूरत पड़ सकती है। जब तक मरीज़ के शरीर में अंदरूनी ताकत है, तब तक वह दवाओं की सहायता से खुद को ठीक कर सकता है। इसी तरह, अगर हम इस बात के प्रति सजग हैं कि हमारे पास बुद्धि का शानदार उपहार है और दृढ़ता विकसित करने और उसे सकारात्मक तरीके से प्रयोग करने की क्षमता है, तो एक तरह से हमारा मानसिक स्वास्थ्य अच्छा है। इससे हमें शक्ति मिलती है जो इस बात के एहसास से आती है कि हमारे पास यह महान मानवीय क्षमता है। यह एहसास ऐसी प्रणाली का कार्य करता है जिसकी मदद से हम बिना निराश हुए या आत्म-घृणा में डूबे, किसी भी परेशानी, किसी भी स्थिति से निपट सकते हैं।"

हम अपने उन महान गुणों को याद करके जो हम दूसरों के साथ साझा करते हैं, हमें इस सोच को दूर करने में मदद मिलती है कि हम बुरे या असक्षम हैं। बहुत से बौद्ध भिक्षु इस ध्यान को प्रतिदिन करते हैं। शायद यही कारण है कि तिब्बती संस्कृति में आत्म-घृणा की अवधारणा कभी ज़ोर नहीं पकड़ सकी।

---

*पोताला सर्दियों में दलाई लामाओं का महल हुआ करता था और यह तिब्बत की धार्मिक एवं ऐतिहासिक धरोहर का प्रतीक था। यह मूल रूप से सातवीं शताब्दी में तिब्बत के राजा सोंग-सेन गैंपो द्वारा बनवाया गया था और इसे बाद में नष्ट कर दिया गया, लेकिन सत्रहवीं शताब्दी में पाँचवें दलाई लामा ने इसे फिर से बनवाया। वर्तमान में यह ल्हासा में "रेड हिल" के शिखर से शानदार 440 फ़ीट की ऊँचाई पर बना हुआ है। यह लगभग चौथाई मील लंबा

है, इसमें तेरह मंज़िलें हैं और एक हज़ार से अधिक कमरे, सभागृह, मठ और प्रार्थनाघर हैं।

भाग 5

आध्यात्मिक जीवन पर अंतिम चिंतन

अध्याय 15

बुनियादी आध्यात्मिक मूल्य

ख़ुश रहने की कला के अनेक तत्त्व हैं। जैसा कि हमने देखा, इसकी शुरुआत ख़ुशी के सच्चे स्रोत समझने और इन स्रोतों के विकास के आधार पर जीवन की प्राथमिकताओं में ढालने से होती है। इसमें भीतरी अनुशासन, विनाशकारी मानसिकता के उन्मूलन और उसके स्थान पर दया, करुणा और क्षमाशीलता जैसे सकारात्मक और रचनात्मक गुणों की स्थापना की धीमी प्रक्रिया शामिल है। पूर्ण और संतुष्ट जीवन जीने के लिए आवश्यक तत्त्वों की पहचान करते हुए हम अपनी चर्चा के अंतिम चरण 'आध्यात्मिकता' तक पहुँच गए हैं।

हमारे भीतर आध्यात्मिकता को धर्म के साथ जोड़ने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। ख़ुशी प्राप्त करने की दलाई लामा की सोच उनके बौद्ध भिक्षु बनने के वर्षों के कठिन प्रशिक्षण से बनी है। उन्हें श्रेष्ठ बौद्ध विद्वान भी माना जाता है। हालाँकि बहुत-से लोग, इसका कारण जटिल दार्शनिक विषयों पर उनकी पकड़ को नहीं, बल्कि उनकी निजी आत्मीयता, विनोदप्रियता और जीवन के प्रति व्यावहारिक सोच को मानते हैं। यहाँ तक कि हमारे संवाद के दौरान, उनकी मूल मानवता उनके बौद्ध भिक्षु होने की मुख्य भूमिका पर भी हावी हो जाती थी। उनके घुटे हुए सिर और लाल रंग के वस्त्रों के बावजूद, विश्व के सबसे प्रमुख धार्मिक नेता होने के बाद भी, हमारी बातचीत का स्वर बिल्कुल ऐसा था जैसे एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य से बातचीत और अपनी समस्याओं को साझा करता है।

आध्यात्मिकता का सही अर्थ समझने में हमारी मदद करते हुए, दलाई लामा ने धर्म और आध्यात्मिकता का अंतर बताना शुरू कर दिया: "मेरा मानना है कि हमारे लिए मनुष्य के रूप में अपनी क्षमता और भीतरी रूपांतरण के महत्त्व को समझना ज़रूरी है। इसे मानसिक विकास की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। मैं, कभी-कभी इसे जीवन का

आध्यात्मिक आयाम कहता हूँ।"

"आध्यात्मिकता के दो स्तर होते हैं। एक स्तर हमारे धार्मिक विश्वास से जुड़ा है। इस संसार में, अनेक तरह के लोग, अनेक तरह की स्थितियाँ हैं। यहाँ सात अरब लोग हैं और एक तरह से मुझे लगता है कि हमारे यहाँ सात अरब धर्म होने चाहिए क्योंकि इतने विभिन्न तरह के विन्यास मौजूद हैं। मेरा मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अलग आध्यात्मिक मार्ग पर चलाना चाहिए जो उसके अपने मानसिक विन्यास, स्वाभाविक रुझान, चित्त प्रकृति, मत, परिवार और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुसार हो।"

"उदाहरण के लिए, बौद्ध भिक्षु होने के नाते, मुझे बौद्ध धर्म सबसे अनुकूल लगता है। इसलिए मेरे अपने लिए, बौद्ध धर्म सबसे अच्छा है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि बौद्ध धर्म सबके लिए सर्वश्रेष्ठ है। यह साफ़ बात है। यह निश्चित भी है। यदि मैं सोचूँ कि बौद्ध धर्म ही सबके लिए अच्छा है तो यह मूर्खता होगी, क्योंकि अलग-अलग लोगों की सोच अलग होती है। इसलिए विभिन्न लोगों के लिए विभिन्न धर्मों की ज़रूरत है। धर्म का उद्देश्य लोगों को लाभ पहुँचाना है और मुझे लगता है यदि एक ही धर्म होगा तो वह कुछ समय के बाद अधिक लोगों को लाभ नहीं दे सकेगा। यदि एक ही रेस्तरां हो और उसमें हर रोज़ एक ही तरह का भोजन मिलता हो, तो जल्द ही उस रेस्तरां में आने वाले ग्राहक कम हो जाएँगे। लोगों के लिए खाने में विविधता होनी ज़रूरी है क्योंकि सबको अलग-अलग स्वाद पसंद होता है। इसी तरह, धर्म का उद्देश्य मनुष्य की आत्मा को पोषित करना है। मुझे लगता है कि हम धर्मों की विविधता पर ख़ुश होकर उनकी विभिन्नता के लिए गहरी अभिरुचि विकसित कर सकते हैं। कुछ लोगों को यहूदीवाद, कुछ को ईसाई धर्म, तो कुछ को इस्लाम अच्छा लग सकता है। इसलिए हमें विश्व की सभी विभिन्न मुख्य धार्मिक परंपराओं का आदर करना चाहिए।"

"ये सभी धर्म मानवता के हित में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। इन सभी का उद्देश्य व्यक्ति को ख़ुशी देना और संसार को बेहतर जगह बनाना है। मेरे ख़्याल से संसार को बेहतर स्थान बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि उस धर्म का प्रशिक्षु व्यक्ति अपने धर्म की शिक्षाओं का निष्ठा से अभ्यास करे। व्यक्ति कहीं भी रहे, उसे धार्मिक शिक्षाओं को जीवन में ढालने की ज़रूरत होती है क्योंकि वे भीतरी ताकत का स्रोत होती हैं। व्यक्ति को धर्म के विचारों की गहन समझ भी विकसित करनी चाहिए और यह सिर्फ़ बौद्धिक स्तर पर नहीं, बल्कि मन की गहराई से किया जाना चाहिए ताकि यह व्यक्ति के भीतरी अनुभवों का हिस्सा बन सके।"

"मेरा ऐसा मानना है कि व्यक्ति विभिन्न धर्मों के लिए आदर विकसित कर सकता है। अन्य परंपराओं का आदर करने का एक कारण यह है कि ये सभी परंपराएँ एक नीतिपरक ढाँचा तैयार कर सकती हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित कर सकता है और उसके सकारात्मक प्रभाव होते हैं। उदाहरण के लिए, ईसाई धर्म में ईश्वर में विश्वास होने से एक स्पष्ट और सुसंगत नीतिपरक ढाँचा तैयार हो जाता है जिससे व्यक्ति का व्यवहार और उसकी जीवनशैली नियंत्रित हो सकती है - और यह अत्यंत शक्तिशाली तरीका है क्योंकि इसमें व्यक्ति का ईश्वर के साथ घनिष्ठ संबंध होता है और ईश्वर के प्रति - जिस ईश्वर ने आपको बनाया है - प्रेम व्यक्त करने का तरीका यह है कि आप अपने साथियों के प्रति प्रेम और

करुणा को व्यक्त करें।"

"मुझे लगता है कि अन्य धार्मिक परंपराओं का आदर करने के ऐसे ही मिलते-जुलते कारण होंगे। सभी मुख्य धर्मों ने निश्चित तौर पर, अनेक शताब्दियों के दौरान लाखों लोगों को बहुत लाभ पहुँचाया है। यहाँ तक कि इस वर्तमान क्षण में, लाखों लोगों को इन विभिन्न धार्मिक परंपराओं से लाभ मिल रहा है और प्रेरणा मिल रही है। यह स्पष्ट है। भविष्य में भी, ये विभिन्न धार्मिक परंपराएँ आने वाली पीढ़ियों के लाखों लोगों को प्रेरणा देती रहेंगी। यह एक तथ्य है। इस सच्चाई को समझना और अन्य परंपराओं का आदर करना बहुत ही ज़रूरी है।"

"मेरे ख़्याल से परस्पर आदर को पुष्ट करने का एक तरीका भिन्न धार्मिक मतों के लोगों के बीच नज़दीकी संपर्क - निजी संपर्क स्थापित करना है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान मैंने ईसाई और यहूदी समुदायों से मिलकर उनसे बातचीत करने का प्रयास किया है और मुझे लगता है कि इससे सचमुच कुछ सकारात्मक नतीजे सामने आए हैं। इस तरह के निकटस्थ संपर्क से हमें उन धर्मों द्वारा मानवता के प्रति उनके योगदान की और अन्य परंपराओं के उपयोगी पहलुओं के विषय में जानकारी मिलती है जिससे हम काफ़ी सीख सकते हैं। यहाँ तक कि हम ऐसे कई तरीके और पद्धतियाँ जान सकते हैं जिन्हें अपनाकर हम भी उनका अभ्यास कर सकते हैं।"

"तो, यह ज़रूरी है कि हम विभिन्न धर्मों के बीच नज़दीकी संबंध स्थापित करें; इसके माध्यम से हम मानवता के लाभ के लिए समान प्रयास कर सकते हैं। ऐसी बहुत-सी चीज़ें, कई समस्याएँ हैं जिन्होंने मानवता को बाँट दिया है। धर्म को, इस संसार में चल रहे संघर्ष को बढ़ाने का स्रोत न होकर, लड़ाई-झगड़े तथा पीड़ा को कम करने का उपचार बनना चाहिए।"

"हम प्रायः लोगों से ऐसा सुनते हैं कि सभी मनुष्य बराबर हैं। इसका अर्थ यह है कि सभी में ख़ुश रहने की स्वाभाविक इच्छा है। सबके पास ख़ुश रहने का अधिकार है। सबको पीड़ा से मुक्त होने का भी अधिकार है। यदि कोई किसी विशेष धार्मिक परंपरा से ख़ुशी या अन्य लाभ ले रहा है, तो दूसरों के अधिकारों का सम्मान करना बहुत ज़रूरी हो जाता है; इसलिए हमें इन सभी मुख्य धार्मिक परंपराओं का आदर करना सीखना चाहिए। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है।"

टक्सन में दलाई लामा की वार्ताओं के दौरान, परस्पर आदर का भाव अभिलाषी सोच से कुछ अधिक था। श्रोताओं में विभिन्न धार्मिक परंपराओं के लोग बैठे थे और उनमें ईसाई पुरोहित वर्ग के बहुत-से लोग थे। परंपराओं में फ़र्क़ होने के बावजूद कमरे में शांतिपूर्ण और अच्छा माहौल था। उसे महसूस किया जा सकता था। वहाँ आदान-प्रदान का भाव भी था और वहाँ बैठे ग़ैर-बौद्धधर्मियों के मन में दलाई लामा के दैनिक आध्यात्मिक अभ्यास के बारे में जानने की उत्सुकता भी थी। इस उत्सुकता के चलते एक श्रोता ने पूछ लिया: "कोई व्यक्ति बौद्धधर्मी हो या नहीं, प्रार्थना पर हमेशा ज़ोर दिया जाता है। आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रार्थना महत्त्वपूर्ण क्यों है?"

दलाई लामा ने उत्तर दिया, “मेरे विचार से, मौटे तौर पर, प्रार्थना आपके सिद्धांतों और विश्वास का दैनिक अनुस्मारक है। मैं स्वयं भी प्रतिदिन कुछ बौद्ध छंद पढ़ता हूँ। ये छंद प्रार्थनाओं जैसे लगते हैं, लेकिन वास्तव में ये अनुस्मारक ही हैं। ये इस बात की याद दिलाते हैं कि आपको दूसरों से कैसे बात करनी है, लोगों के साथ कैसा व्यवहार करना है, अपनी रोज़ की समस्याओं को कैसे हल करना है इत्यादि। इसलिए, मेरे अभ्यास में ये अनुस्मारक शामिल हैं - जिनकी मदद से मैं करुणा, क्षमाशीलता आदि के मूल्य की समीक्षा करता रहता हूँ। इनमें निश्चय ही, सत्य की प्रकृति और कुछ विशिष्ट तरह के कल्पना अभ्यास भी शामिल हैं। तो, मैं अपने रोज़ के अभ्यास, अपनी रोज़ की प्रार्थनाओं को आराम से करूँ तो इसमें लगभग चार घंटे लगते हैं। यह बहुत लंबा समय है।”

प्रतिदिन चार घंटे प्रार्थना आदि में बिताने का विचार सुनकर किसी अन्य श्रोता ने पूछा, “मैं कामकाजी महिला हूँ और मेरे छोटे बच्चे हैं जिसके कारण मुझे अपने लिए समय नहीं मिलता। कोई व्यक्ति जो बहुत ज़्यादा व्यस्त रहता है, वह इस तरह की प्रार्थनाओं और ध्यान आदि के लिए समय कैसे निकालेगा?”

“मैं अपने मामले में, यदि शिकायत करना चाहूँ तो मैं भी समय के अभाव को लेकर शिकायत कर सकता हूँ,” दलाई लामा ने कहा, “मैं बहुत व्यस्त रहता हूँ। परंतु, यदि आप प्रयास करें तो सुबह जल्दी उठकर, कुछ समय अवश्य निकाल सकते है। इसके बाद, शायद सप्ताह के अंत में समय मिल सकता है। आप अपने मनोरंजन में से कुछ समय निकाल सकते हैं,” वे हँसे। “तो, रोज़ कम से कम आधा घंटा निकल सकता है या फिर अगर आप थोड़ा प्रयास करें तो तीस मिनट सुबह और तीस मिनट शाम को इस काम के लिए निकाल सकते हैं। यदि आप इस विषय में ध्यान से सोचें, तो आपको समय निकालने का तरीका मिल जाएगा।”

“यदि आप आध्यात्मिक अभ्यास के बारे में गंभीरता से विचार करें, तो यह आपकी मानसिक अवस्था, व्यवहार, और आपके मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक कल्याण से संबंधित हैं। आपको आध्यात्मिक अभ्यास को किस तरह की शारीरिक या मौखिक क्रिया, जैसे: प्रार्थना पढ़ना और मंत्रोच्चारण करना आदि तक सीमित नहीं समझना चाहिए। यदि आप आध्यात्मिक अभ्यास को इन्हीं क्रियाओं तक सीमित मानने लगेंगे तो आपको निश्चित ही, इनके अभ्यास के लिए एक ख़ास समय निर्धारित करना पड़ेगा - क्योंकि आप अपने दैनिक कार्यों जैसे खाना पकाना, आदि के साथ मंत्रोच्चारण नहीं कर सकते। इससे आपके आस-पास के लोगों को परेशानी होगी। यदि आप आध्यात्मिक अभ्यास को सही अर्थों में समझेंगे तो आप दिन के चौबीसों घंटों को इन अभ्यास के लिए प्रयोग कर सकते हैं। सच्चा अध्यात्म एक मानसिकता है, जिसका अभ्यास आप किसी भी समय कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, अगर आपका मन किसी का अपमान करने को करता है तो आप तुरंत ऐसा करने से बचने की कोशिश करते हैं। इसी तरह यदि किसी स्थिति में आपको ग़ुस्सा आ जाता है, तो आप तत्काल सँभल जाते हैं और कहते हैं, ‘नहीं, ऐसा करना ठीक नहीं है।’ यही वास्तविक आध्यात्मिक अभ्यास है। इस नज़र से देखें तो आपके पास हमेशा समय होता है।”

"इससे मुझे एक तिब्बती कदम गुरु, पोटोवा की याद आती है जिन्होंने यह कहा था कि ध्यान करने वाला व्यक्ति, जिसे थोड़ी भी भीतरी स्थिरता एवं बोध प्राप्त है, प्रत्येक घटना, प्रत्येक अनुभव से कुछ सीखता है। यह उसके लिए सबक देने वाला अनुभव होता है। मेरे ख़्याल से यह बिल्कुल सही बात है।"

"तो इस दृष्टिकोण से, मान लीजिए, यदि आप टीवी या फ़िल्मों में हिंसा और सेक्स के दृश्य देख रहे हैं, तो इन्हें इनके दुष्प्रभावों के बोध के साथ भी देखा जा सकता है। ऐसा करने पर, ये दृश्य आपके ऊपर हावी नहीं होंगे, बल्कि आप उन दृश्यों को हानिकारक एवं अनियंत्रित नकारात्मक भावनाओं का संकेत समझ सकते हैं - कुछ ऐसा जिससे आप सबक ले सकते हैं।"

परंतु द ए-टीम अथवा मेलरोज़ प्लेस को दोबारा देखने से सबक लेना अलग बात है। हालाँकि भिक्षु होने के नाते, दलाई लामा की निजी आध्यात्मिक दिनचर्या में बौद्ध धर्म से संबंधित अनेक विशिष्ट अभ्यास शामिल हैं। अपने दैनिक अभ्यास के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा सत्य की प्रकृति पर ध्यान और कुछ कल्पना से जुड़े अभ्यास करते हैं। इस चर्चा के दौरान उन्होंने इन बातों का सिर्फ़ सरसरी तौर पर उल्लेख किया था, लेकिन पिछले कई वर्षों में मैंने उन्हें इन विषयों पर विस्तार से बात करते सुना है - वे अपनी चर्चाओं में ऐसे विषयों पर बात कर चुके हैं कि मैंने किसी भी इतने जटिल विषय के बारे में पहले कभी नहीं सुना। सत्य संबंधी उनकी वार्ताएँ अत्यंत पेचीदा दार्शनिक तर्कों और विश्लेषणों से भरी होती थीं; उनके द्वारा बताए गए तांत्रिक कल्पनाओं के विवरण अविश्वसनीय ढंग से जटिल और विस्तृत थे - उनमें ऐसे ध्यान और ऐसी कल्पनाएँ थीं जिनका उद्देश्य व्यक्ति की कल्पना के अंतर्गत ब्रह्मांड की स्वलेख मानचित्रवली तैयार करना था। उन्होंने इन बौद्ध ध्यान प्रक्रियाओं के अध्ययन और अभ्यास में पूरा जीवन लगा दिया है। मैंने इस बात को ध्यान में रखते हुए और उनके प्रयासों के विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण विस्तार को समझते हुए उनसे पूछा: "क्या आप बता सकते हैं कि इस तरह के आध्यात्मिक अभ्यास से आपको अपने दैनिक जीवन में क्या व्यावहारिक लाभ हुआ है?"

दलाई लामा कुछ देर शांत रहे और फिर धीरे से बोले, "हालाँकि मेरा अपना अनुभव बहुत कम है, लेकिन मैं एक बात पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि बौद्ध प्रशिक्षण के माध्यम से, मुझे लगता है कि मेरा मन पहले से अधिक शांत हुआ है। इतना तो तय है। हालाँकि यह बदलाव, शायद सूत-दर-सूत बहुत धीरे-धीरे हुआ है," वे हँसे, "मेरे ख़्याल से मेरे व्यवहार में अपने प्रति और दूसरों के प्रति बदलाव आया है। यद्यपि, इस बदलाव के निश्चित कारणों को बता पाना मुश्किल है, फिर भी मुझे लगता है कि ये सब एक तरह के बोध, हालाँकि यह पूर्ण बोध नहीं है, सत्य की मूल प्रकृति के बोध के कारण तथा नश्वरता, हमारा कष्टमय स्वभाव एवं करुणा व परोपकार के मूल्य पर चिंतन करने के कारण संभव हो पाया है।"

"तो, उदाहरण के लिए, उन कम्युनिस्ट चीनी लोगों के बारे में सोचने से भी, जिन्होंने

तिब्बती लोगों पर अत्याचार किए, मेरे मन में बौद्धधर्मी प्रशिक्षण के चलते, उन अत्याचारियों के प्रति भी करुणा का भाव महसूस होता है क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह अत्याचारी वास्तव में कुछ नकारात्मक शक्तियों के प्रभाव में था। यदि किसी ने अत्याचार किए भी हैं, तो इन चीज़ों के कारण और मेरे बोधिसत्व के प्रण एवं संकल्पों* की वजह से, मुझे ऐसा महसूस नहीं होता कि उनके साथ कुछ ग़लत हो या उन्हें दुख पहुँचे। इस बोधिसत्व के संकल्प ने इस तरह का दृष्टिकोण विकसित करने में मेरी सहायता की है; यह बहुत उपयोगी रहा है, इसलिए मुझे यह बहुत पसंद है।"

"इससे मुझे एक वरिष्ठ मंत्रेच्चारक गुरु की याद आ गई जो नैमग्याल मठ में रहते हैं। वे बीस सालों तक चीनी कारागृह में राजनीतिक बंधक के रूप में तथा श्रमिक शिविरों में रह चुके हैं। मैंने एक बार उनसे पूछा कि कारागृह में रहते हुए उनके सामने सबसे मुश्किल परिस्थिति क्या थी। आश्चर्यजनक रूप से, वह बोले कि उन्हें सबसे ज़्यादा डर इस बात का था कि कहीं उनके मन में चीनी लोगों के लिए करुणा समाप्त न हो जाए!"

"ऐसी बहुत-सी कथाएँ हैं। उदाहरण के लिए, मैं तीन दिन पहले एक भिक्षु से मिला था जिसने चीनी जेलों में कई साल बिताए थे। उसने बताया कि 1959 के तिब्बती आंदोलन के समय वह चौबीस साल का था। उस समय, वह नौर्बूलिंगा में तिब्बती सेना में भर्ती हो गया। चीनियों ने उसे पकड़ लिया और जेल में उसके तीन भाइयों के साथ बंद कर दिया जिन्हें बाद में मार दिया गया था। दो अन्य भाई भी मारे गए। उसके बाद श्रमिक शिविर में उसके माता-पिता का भी देहांत हो गया। परंतु उसने मुझे बताया कि जब वह जेल में था तो उसने जीवन के विषय में चिंतन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि हालाँकि उसने द्रेपुंग मठ में पूरा जीवन भिक्षु के रूप में बिताया था, उसे तब तक यह नहीं लगा कि वह एक अच्छा भिक्षु है। उसे लगता था कि वह मूर्ख भिक्षु है। तब उसने यह निर्णय लिया कि जेल में रहते हुए, वह अच्छा भिक्षु बनने का प्रयास करेगा। अपने बौद्ध अभ्यासों के कारण, अपने मस्तिष्क के प्रशिक्षण की मदद से, वह शारीरिक कष्ट सहने के बावजूद मानसिक रूप से बहुत ख़ुश रहता था। यहाँ तक कि यातना और अत्यधिक पिटाई के बाद भी, वह जीवित रहा और आज भी वह इस बात से ख़ुश है कि उसके द्वारा पूर्व में किए गए बुरे कर्म मिट गए।"

"तो, इन उदाहरणों के माध्यम से, व्यक्ति अपने रोज़ की जीवनशैली में आध्यात्मिक अभ्यास को जोड़ने के महत्त्व को सचमुच ठीक से समझ सकता है।"

इस तरह दलाई लामा ने जीवन में ख़ुश रहने के अंतिम तत्त्व - आध्यात्मिक आयाम - का समावेश कर दिया। बुद्ध की शिक्षाओं के माध्यम से दलाई लामा और अनेक लोगों ने ऐसा सार्थक ढाँचा खोजा है जो उन्हें जीवन में आने वाले कष्ट और पीड़ाओं को सहन करने और उनसे ऊपर उठने में सहायता करता है। जैसा कि दलाई लामा सुझाव देते हैं, विश्व की सभी मुख्य धार्मिक परंपराएँ व्यक्ति को ख़ुश रहने के समान अवसर प्रदान करती हैं। इन धार्मिक परंपराओं द्वारा विकसित विश्वास की शक्ति लाखों लोगों के जीवन में गुँथी हुई है। उसी गहन धार्मिक विश्वास की मदद से असंख्य लोग कठिन परिस्थितियों में जीवित रह पाए हैं। कभी-

कभी यह विश्वास छोटे और शांत तरीके से काम करता है और कभी-कभी यह बहुत गहरे परिवर्तन लाता है। हम सभी लोगों ने, अपने जीवनकाल में कभी न कभी, निश्चित तौर पर, अपने किसी परिवार के सदस्य, मित्र या परिचित पर इस शक्ति को महसूस किया है। कई बार, आस्था और विश्वास के ऐसे उदाहरण अख़बार के मुख्य पृष्ठ पर भी नज़र आते हैं। बहुत-से लोग एक आम इंसान टेरी ऐंडरसन से परिचित हैं जिसका 1985 में अचानक एक दिन सुबह बेरुत की एक सड़क से अपहरण कर लिया गया था। उसके ऊपर कंबल फेंककर, उसे गाड़ी में खींच लिया गया और उसे इस्लाम के एक कट्टर आतंकी समूह हिज्बुल्लाह ने अगले सात साल तक बंदी बनाए रखा। 1991 तक, उसे आँखों पर पट्टी बाँधकर और ज़ंजीरों में जकड़कर गीले और गंदे तहखाने व कोठरियों में लंबे समय तक रखा गया। उसे बहुत पीटा गया। उसे अत्यंत कठिन परिस्थितियों में रखा जाता था। जब अंत में उसे छोड़ा गया तो पूरे विश्व ने उसे देखा। वह व्यक्ति अपने परिवार से मिलकर बहुत ख़ुश हुआ लेकिन हैरानी की बात यह थी कि उसके मन में अपने अपहरणकर्ताओं के लिए ज़रा भी कटुता या घृणा नहीं थी। जब पत्रकारों ने उसकी ज़बर्दस्त ताकत का कारण पूछा, तो उसने बताया कि विश्वास एवं प्रार्थना के बल पर ही उसने उस पीड़ा को सहन किया।

संसार में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जहाँ धार्मिक विश्वास ने कष्ट के समय लोगों की सहायता की है। व्यापक सर्वेक्षण इस बात की पुष्टि करते हैं कि धार्मिक विश्वास व्यक्ति को ख़ुश रहने में बहुत योगदान देता है। स्वतंत्र शोधकर्त्ताओं और मतदान संस्थाओं (जैसे: गैलप कंपनी) के सर्वे बताते हैं कि ग़ैर-धार्मिक लोगों की तुलना में धार्मिक लोग अधिक ख़ुश रहते हैं। अध्ययनों से पता लगता है कि न सिर्फ़ विश्वास व्यक्ति की ख़ुशी का भविष्यवक्ता है, बल्कि दृढ़ धार्मिक विश्वास भी लोगों को बढ़ती आयु या निजी संकटों और पीड़ादायक घटनाओं से निपटने में बहुत सहायता करता है। इसके अतिरिक्त, आँकड़े दर्शाते हैं कि मज़बूत धार्मिक विश्वास वाले परिवारों में बाल-अपराध, शराब व नशीले पदार्थों के सेवन एवं वैवाहिक अशांति की दर कम होती है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि विश्वास का शारीरिक स्वास्थ्य में - यहाँ तक कि गंभीर बीमारियों में भी - काफ़ी लाभ मिलता है। ऐसे सैकड़ों वैज्ञानिक एवं महामारी विज्ञान संबंधी अध्ययन हो चुके हैं जो दृढ़ धार्मिक विश्वास तथा निम्न मृत्यु दर और बेहतर स्वास्थ्य के बीच संबंध होने की बात करते हैं। एक अध्ययन के मुताबिक, कूल्हे की सर्जरी के बाद, धार्मिक विश्वास वाली वृद्ध महिलाएँ, कमज़ोर विश्वास वाली महिलाओं की तुलना में ज़्यादा दूर चल पाती हैं और उन्हें सर्जरी के बाद डिप्रेशन भी कम होता है। पीट्सबर्ग मेडिकल सेंटर युनिवर्सिटी में रॉना कज़ार हैरिस और मैरी अमांडा ड्यू द्वारा किए एक अध्ययन से पता लगा कि दृढ़ धार्मिक विश्वास युक्त हृदय प्रत्यारोपण के मरीज़ों को सर्जरी के बाद की चिकित्सा से निपटने में कम परेशानी होती है और उनका शारीरिक व भावनात्मक स्वास्थ्य भी बेहतर होता है। डार्थमाथ मेडिकल स्कूल के डॉ. थॉमस ऑक्समैन और उनके सहकर्मियों द्वारा किए गए एक अन्य अध्ययन से यह पता लगा कि पचपन वर्ष की आयु से अधिक के मरीज़ों की, जिनकी कोरोनरी आर्टरी या हृदय के वॉल्व की ओपन-हार्ट सर्जरी हुई और जिन्होंने धार्मिक विश्वास की शरण ली, दूसरों की तुलना में,

जीवित बचने की संभावना तीन गुना अधिक थी।

कभी-कभी मज़बूत धार्मिक विश्वास के लाभ किसी विशिष्ट परंपरा के ख़ास सिद्धांतों और मतों के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में नज़र आते हैं। उदाहरण के लिए, अनेक बौद्धधर्मियों को कर्म सिद्धांत में दृढ़ विश्वास के चलते पीड़ा को सहन करने में मदद मिलती है। इसी तरह, ईश्वर में आस्था रखने वाले लोग, अपने सर्वव्यापी ईश्वर, ऐसे ईश्वर में जिसकी योजना अभी हमसे छिपी हो सकती है, लेकिन अंत में, विवेकपूर्ण ढंग से हमें अपना प्रेम प्रदर्शित करेगा - इसी विश्वास के सहारे जीवन में आए भयंकर कष्ट सहन कर लेते हैं। बाइबल की शिक्षा के सहारे, वे अपने रोमन्स 8:28 जैसे छंदों में सुकून प्राप्त करते हैं जिसमें लिखा है: “जो लोग ईश्वर से प्रेम करते हैं, जो उसके उद्देश्य में आस्था रखते हैं, उनके लिए सबकुछ अच्छा होता है।”

हालाँकि आस्था के कुछ पुरस्कार किसी धार्मिक परंपरा के विशिष्ट सिद्धांतों पर आधारित होते हैं, आध्यात्मिक जीवन की कई अन्य ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे शक्ति मिलती है और जो सभी धर्मों में एक समान हैं। किसी भी धार्मिक समूह के साथ जुड़ाव से, अपनापन, सामुदायिक लगाव, साथी प्रशिक्षुओं के साथ अच्छा संबंध विकसित हो जाता है। इससे प्राप्त सार्थक ढाँचे की मदद से व्यक्ति दूसरों के साथ संबंध स्थापित कर सकता है। इससे स्वीकृति का भाव भी पैदा होता है। दृढ़ धार्मिक विश्वास से व्यक्ति को अपना उद्देश्य समझ में आता है जो जीवन को अर्थ प्रदान करता है। यह विश्वास कठिनाई, पीड़ा और मृत्यु के समय में, व्यक्ति को आशा बँधाता है। इससे शाश्वत दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता मिलती है जिससे व्यक्ति अपने जीवन की दैनिक समस्याओं से परेशान होकर स्वयं के दायरे से बाहर निकल पाता है।

हालाँकि ये सभी संभावित लाभ उन सब लोगों को मिलते हैं जो किसी भी स्थापित धर्म की शिक्षा को मानते हैं। इतना स्पष्ट है कि सिर्फ़ धार्मिक विश्वास से ही ख़ुशी या शांति मिल जाए, ज़रूरी नहीं है। उदाहरण के लिए, जिस पल टैरी ऐंडरसन अपने कमरे में ज़ंजीरों में जकड़ा बैठा धार्मिक आस्था की श्रेष्ठ विशेषताओं को दर्शा रहा था, उसी पल में, उसके कमरे के ठीक बाहर जनता धार्मिक विश्वास के सबसे ख़राब रूप में हिंसा और घृणा प्रदर्शित कर रही थी। लेबनान में, अनेक वर्षों तक, विभिन्न मुस्लिम संप्रदाय ईसाइयों और यहूदियों के साथ हिंसक और घृणा से भरकर युद्ध करते रहे और आस्था के नाम पर भयंकर अत्याचार करते रहे। यह पुरानी कथा है, जिसे इतिहास में तथा आधुनिक समय में अनेक बार दोहराया जा चुका है।

विभाजन और घृणा को जन्म देने की अपनी इसी संभावना के चलते, धार्मिक संस्थाएँ बहुत आसानी से विश्वास खो देती हैं। इसी कारण दलाई लामा जैसे कुछ धार्मिक व्यक्तित्वों ने आध्यात्मिक जीवन के उन तत्त्वों का सार निकालने का प्रयास किया है जिन्हें किसी भी धर्म को मानने वाला कोई भी व्यक्ति, अपने जीवन में अपनाकर ख़ुशी प्राप्त कर सकता है।

इस तरह, पूर्ण विश्वास से भरे स्वर में दलाई लामा ने सच्चे आध्यात्मिक जीवन के

अपने दृष्टिकोण के साथ चर्चा को समाप्त कर दिया: “तो, अपने जीवन को आध्यात्मिक आयाम देने के संदर्भ में, हमने अपनी धार्मिक आस्था को अध्यात्म का एक स्तर मान लिया है। अब धर्म के संदर्भ में, यदि हम किसी भी धर्म को मानते हैं तो यह अच्छी बात है। परंतु धार्मिक आस्था के बिना भी हमारा काम चल सकता है। कुछ मामलों में तो ऐसा होना ज़्यादा बेहतर है। परंतु यह हमारा व्यक्तिगत अधिकार है; अगर हम विश्वास करना चाहते हैं, तो अच्छी बात है! अगर नहीं, तो कोई बात नहीं। परंतु अध्यात्म का एक और स्तर होता है। इसे मैं मूल अध्यात्म कहता हूँ - मूल मानवीय गुण जैसे सदाचार, दया, करुणा और देखभाल का भाव। हम चाहे आस्थावान हों या नास्तिक हों, यह अध्यात्म होना आवश्यक है। मैं निजी तौर पर, इस दूसरे प्रकार के अध्यात्म को पहले वाले से अधिक महत्त्वपूर्ण मानता हूँ, क्योंकि कोई धर्म कितना भी शानदार हो, उसे मानवता का एक हिस्सा, सीमित लोग ही अपना सकते हैं। परंतु जब तक मनुष्य हैं, जब तक हम मानव परिवार के सदस्य हैं, हम सबको इन मूल आध्यात्मिक गुणों की आवश्यकता है। इनके बिना मनुष्य का अस्तित्व कठिन और नीरस हो जाता है। इसके फलस्वरूप कोई भी व्यक्ति ख़ुश नहीं रह सकता, हमारा परिवार पीड़ा भोगता है और इसके कारण पूरा समाज परेशान हो जाता है। तो, यह स्पष्ट हो गया है कि इन मूल आध्यात्मिक गुणों का होना अत्यंत ज़रूरी है।”

“इन मूल आध्यात्मिक गुणों को विकसित करते समय मेरे ख़्याल से हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इस ग्रह पर रहने वाले सात अरब लोगों में से शायद एक या दो अरब लोग ईमानदार और धर्म में आस्था रखने वाले हैं। निश्चित ही, जब मैं ईमानदार आस्थावान लोगों की बात करता हूँ तो इसमें वे लोग शामिल नहीं है जो, उदाहरण के लिए, ‘मैं ईसाई हूँ’ सिर्फ़ इसलिए कहते हैं क्योंकि उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि ईसाई है, लेकिन हो सकता है कि उनका ईसाई धर्म में ज़्यादा विश्वास न हो या वे उसका पालन न करते हों। तो इन लोगों को छोड़कर मेरा मानना है कि लगभग एक अरब लोगों की अपने धर्म में ईमानदारी से आस्था है। इसका अर्थ है कि बाकी छह अरब, यानि इस पृथ्वी के अधिकतर लोग नास्तिक हैं। तो यह हमें इन छह अरब लोगों के - जो किसी धर्म के साथ सक्रिय तौर पर जुड़े हुए नहीं है - जीवन को बेहतर बनाने के तरीके खोजने चाहिए तथा बेहतर और ज़्यादा नैतिक इंसान बनने में उनकी सहायता करनी चाहिए। यहाँ, मेरे विचार से शिक्षा भी ज़रूरी है - जो लोगों में यह भाव जगाती है कि करुणा, दया आदि सिर्फ़ धार्मिक विषय न होकर, मनुष्यों के लिए सद्गुण हैं। हमने पहले मानवीय आत्मीयता, स्नेह और लोगों के शारीरिक स्वास्थ्य में करुणा, ख़ुशी, तथा मानसिक शांति के बारे में विस्तार से चर्चा की थी। यह धार्मिक सिद्धांत या दार्शनिक चिंतन का विषय न होकर, अत्यंत व्यावहारिक मुद्दा है। यह महत्त्वपूर्ण विषय है। मुझे लगता है कि विभिन्न परंपराओं की सभी धार्मिक शिक्षा का यही सार है। परंतु यह उन लोगों के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जो किसी विशिष्ट धर्म को नहीं मानते। ऐसे लोगों को हमें शिक्षित करना चाहिए और यह समझाना चाहिए कि वे किसी धर्म के बिना रहें तो कोई बात नहीं, लेकिन उन्हें अच्छा इंसान, समझदार मनुष्य बनना चाहिए और दुनिया को बेहतर और सुखी स्थान बनाने के लिए उन्हें भी उत्तरदायी और वचनबद्ध रहना होगा।”

"सामान्य तौर पर, किसी बाहरी ज़रिए से अपनी धार्मिक या आध्यात्मिक जीवनशैली का संकेत देना संभव है जैसे: कुछ ख़ास तरह के कपड़े पहनना या अपने घर में मंदिर अथवा वेदिका बनवाना या फिर मंत्रोच्चारण, प्रार्थना आदि करना। इसे बाहरी ढंग से दर्शाने के तरीके हैं। हालाँकि, सच्चे आध्यात्मिक जीवन के नज़रिए से ये क्रियाएँ और गतिविधियाँ गौण हैं, क्योंकि ऐसा संभव है कि इन सब बाहरी धार्मिक क्रियाओं के चलते हुए भी व्यक्ति की मानसिकता नकारात्मक हो। सच्ची आध्यात्मिकता से व्यक्ति अधिक शांत और ख़ुश रहता है।"

"मस्तिष्क की सभी विशेषताएँ - करुणा, सहनशीलता, क्षमाशीलता, देखभाल आदि - ये मानसिक गुण सच्चा धर्म या सच्ची आध्यात्मिक विशेषताएँ हैं क्योंकि ये सब भीतरी मानसिक गुण दुर्भावना या नकारात्मक मानसिकता के साथ नहीं रह सकते।"

"तो मस्तिष्क को प्रशिक्षित करना और ऐसा भीतरी विकास करना, जो सकारात्मक मानसिकता को उत्पन्न कर सके, धार्मिक जीवन का सार है। व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन जी रहा है या नहीं, इस बात पर निर्भर करता है कि क्या वह अपने दिमाग़ को अनुशासित और नियंत्रित करने और फिर उस मानसिक अवस्था को अपने दैनिक जीवन में उतारने में सफल हो पाया है।"

दलाई लामा को तिब्बत की लड़ाई के लिए ज़ोरदार समर्थन देने वाले दानियों के एक समूह के सम्मान में आयोजित एक समारोह में भाग लेना था। उन्हें देखने के लिए समारोह हॉल के बाहर बहुत भारी संख्या में लोग आए थे। दलाई लामा के आने तक भीड़ काफ़ी ज़्यादा हो गई थी। मैंने दर्शकों में एक व्यक्ति को देखा जिसे मैंने पहले भी उस सप्ताह कई बार देखा था। हालाँकि उसकी आयु का पता नहीं लग रहा था, किंतु मैंने अनुमान लगाया कि वह युवक बीस या तीस वर्ष के आस-पास होगा। वह ऊँचे कद का दुबला व्यक्ति था। वह अस्त-व्यस्त स्थिति में था, लेकिन मेरा ध्यान उसके चेहरे के भावों ने आकर्षित किया, जो मैंने प्रायः अपने मरीज़ों के चेहरे पर देखे थे - चिंता, निराशा और पीड़ा के भाव। उसके मुँह के आस-पास वाले हिस्से में कुछ बार-बार हल्की अनैच्छिक मांसल हरकतें हो रही थीं। मैं समझ गया कि वह "टार्डिव डिसकानेसिआ" से पीड़ित था, जो एक तरह का तंत्रिका संबंधी रोग होता है, जो मनोरोग की दवाओं के ज़्यादा प्रयोग से हो जाता है। मैंने सोचा, "बेचारा" और फिर मैं उसके बारे में भूल गया।

दलाई लामा जैसे ही पहुँचे, भीड़ एकत्रित होकर उनसे मिलने के लिए आगे बढ़ने लगी। सुरक्षाकर्मी, जिनमें अधिकतर स्वयंसेवी कार्यकर्त्ता थे, लोगों को आगे बढ़ने से रोक रहे थे और समारोह हॉल का रास्ता ख़ाली करवा रहे थे। वह परेशान युवक जिसे मैंने पहले देखा था, अब कुछ हैरान था और भीड़ द्वारा दबाए जाने के बाद सुरक्षा टीम द्वारा ख़ाली कराए गए रास्ते के किनारे तक आ पहुँचा था। दलाई लामा जैसे वहाँ से गुज़रे, उन्होंने उस युवक को देख लिया और उससे बात करने के लिए रुक गए। वह व्यक्ति पहले तो आश्चर्यचकित हो गया और फिर दलाई लामा के साथ बहुत जल्दी-जल्दी बोलने लगा। दलाई लामा उत्तर में

बहुत कम बोले। मैं यह तो नहीं सुन सका कि वे क्या बात कर रहे थे, लेकिन मैंने देखा कि बात करते-करते वह व्यक्ति बहुत ग़ुस्से में आ गया। वह कुछ बोल रहा था, लेकिन उसकी बात का जवाब न देकर, दलाई लामा ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया और उसे धीरे-धीरे थपथपाते हुए कुछ देर वहीं खड़े सिर हिलाते हुए चुपचाप उसकी बात सुनते रहे। जिस समय वे उस युवक का हाथ थामे, उसकी आँखों में देख रहे थे, ऐसा लग रहा था मानो वे अपने आस-पास जमा भीड़ से बिल्कुल बेख़बर थे। अचानक युवक के चेहरे पर छाया पीड़ा व क्रोध का भाव गायब हो गया और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। हालाँकि उसके चेहरे पर आई मुस्कराहट बहुत हल्की थी, उसकी आँखों में सांत्वना और ख़ुशी का भाव साफ़ दिख रहा था।

दलाई लामा इस बात पर बार-बार ज़ोर देते रहे हैं कि भीतरी अनुशासन ही आध्यात्मिक जीवन का आधार है। यही ख़ुशी प्राप्त करने का मूल तरीका है। जैसा कि उन्होंने इस पूरी पुस्तक में बताया है, उनके दृष्टिकोण से भीतरी अनुशासन का अर्थ क्रोध, घृणा एवं लालच जैसे नकारात्मक भावों से लड़ना तथा दया, करुणा और सहनशीलता जैसे सकारात्मक भावों को विकसित करना है। उन्होंने यह भी बताया कि ख़ुशहाल जीवन की नींव में शांत एवं स्थिर दिमाग़ होता है। भीतरी अनुशासन के अभ्यास में औपचारिक ध्यान पद्धतियाँ शामिल होती हैं जिनका उद्देश्य मस्तिष्क को स्थिर करना और शांत अवस्था को प्राप्त करना है। अधिकांश आध्यात्मिक परंपराएँ मस्तिष्क को शांत करने तथा हमें अपनी आध्यात्मिक प्रकृति के संपर्क में लाने के लिए होती हैं। टक्सन में दलाई लामा की सार्वजनिक वार्ताओं की समाप्ति के समय, उन्होंने एक ध्यान प्रक्रिया संबंधी निर्देश दिए जिसका उद्देश्य हमारे विचारों को शांत करना, अपने दिमाग़ की मूल प्रकृति को देखना और इस तरह "मस्तिष्क की स्थिरता" को विकसित करना था।

सामने लोगों को देखते हुए उन्होंने अपने अंदाज़ में बोलना शुरू किया मानो वे किसी बड़े समूह को संबोधित न करके, दर्शकों में बैठे प्रत्येक व्यक्ति से निजी तौर पर बात कर रहे हों। कभी-कभी वे शांतिपूर्वक और बहुत ध्यान से बोलते थे, तो कभी-कभी जोश से भर जाते थे और अपने निर्देशों के बीच-बीच में धीरे-से गर्दन हिलाते, हाथ से इशारे करते और धीमे-धीमे हिलते रहते थे।

मस्तिष्क के स्वभाव से संबंधित ध्यान

"इस अभ्यास का उद्देश्य, कम से कम परंपरागत स्तर पर, अपने दिमाग़ को पहचानना और उसके स्वभाव को महसूस करना है," उन्होंने बोलना शुरू कर दिया। "सामान्य तौर पर, जब हम 'मस्तिष्क' की बात करते हैं तो हम एक अमूर्त विचार पर चर्चा कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, हमें किसी प्रत्यक्ष अनुभव के बिना, यदि अपने मस्तिष्क को पहचानने को कहा जाए तो हम सिर्फ़ अपने सिर की तरफ़ इशारा कर देंगे। यदि हमें अपने मस्तिष्क को परिभाषित करने को कहा जाए तो हम कहेंगे कि यह वह है, जिसमें 'स्पष्ट' एवं ज्ञानात्मक' चीज़ों को

‘जानने’ की क्षमता है। परंतु ध्यान संबंधी अभ्यास द्वारा मस्तिष्क को जाने बिना, ये परिभाषाएँ शब्द मात्र हैं। मस्तिष्क को अमूर्त विचार की तरह नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा पहचानना ज़रूरी है। तो इस अभ्यास का उद्देश्य मस्तिष्क की परंपरागत प्रकृति को महसूस करना है, इसलिए जब आप कहते हैं कि दिमाग़ के पास ‘स्पष्टता’ और ‘ज्ञानात्मक’ गुण हैं, तो आप इसे अमूर्त अवधारणा के रूप में नहीं, बल्कि अनुभव द्वारा जान पाएँगे।”

“यह अभ्यास तर्कमूलक विचारों पर रोक लगाकर और मस्तिष्क को लंबी अवधि के लिए उसी अवस्था में रखने में मदद करता है। इस अभ्यास को करने से, अंत में आपको यह एहसास होगा मानो कहीं कुछ नहीं है, सब जगह शून्य है। परंतु यदि आप आगे जाएँगे तो आपको धीरे-धीरे मस्तिष्क की सहज प्रकृति का, उसकी ‘स्पष्टता’ और ‘ज्ञानात्मक’ गुणों का बोध होने लगेगा। यह एकदम शुद्ध साफ पानी के गिलास जैसा है। अगर पानी साफ है, तो आप गिलास के तल को देख सकते हैं, लेकिन फिर भी आपको यह मालूम होता है कि गिलास में पानी है।”

“आज हम अवैचारिकता पर चिंतन करेंगे। यह सिर्फ़ नीरसता या दिमाग़ की ढँकी हुई अवस्था नहीं है, बल्कि सबसे पहले, आपको इस बात की दृढ़ता पैदा करनी चाहिए,‘मैं मस्तिष्क की अवैचारिक अवस्था को बरकरार रखूँगा’। इसे इस तरह से करना चाहिए: “आम तौर पर, हमारा दिमाग़ मुख्य रूप से बाहरी वस्तुओं पर केंद्रित रहता है। हमारा ध्यान संवेदी अनुभव के बाद आकृष्ट होता है। यह मुख्य रूप से संवेदी एवं वैचारिक स्तर पर रहता है। दूसरे शब्दों में, हमारी चेतना आम तौर पर शारीरिक संवेदी अनुभवों और मानसिक अवधारणाओं पर आधारित होती है। परंतु, इस अभ्यास के दौरान आपको अपने दिमाग़ को भीतर की ओर लाना है; उसे संवेदी वस्तुओं का पीछा मत करने या उनकी ओर ध्यान मत देने दीजिए। इसी के साथ, इसे इतना भी मत खींचिए कि नीरसता आ जाए या दिमाग़ सुन्न हो जाए। आपको सतर्क रहना है एवं पूरा ध्यान रखना है और फिर अपनी चेतना की स्वाभाविक अवस्था को देखना है - वह अवस्था जिसमें आपकी चेतना आपके पूर्व के विचारों या जो कुछ पहले हो चुका है, आपकी स्मृतियों और यादों से कष्ट महसूस न करे; न ही भविष्य के विचारों से परेशान होना है, जैसे आपके भविष्य की योजनाएँ, अपेक्षाएँ, भय और उम्मीदें। इसके बजाय आपको स्वाभाविक तथा तटस्थ अवस्था में रहने का प्रयास करना चाहिए।”

“यह किसी तेज़ बहती नदी के जैसा है, जिसमें आपको नदी का तल साफ दिखाई नहीं देता। यदि, किसी तरह आप नदी का बहाव दोनों दिशाओं में रोक पाते, यानि जहाँ से पानी आ रहा है और जहाँ वह जा रहा है, तो आप पानी को स्थिर कर सकते हैं। ऐसा करने से आप नदी का तल स्पष्ट देख सकते हैं। इसी तरह, यदि आप अपने मस्तिष्क को संवेदी वस्तुओं के पीछे जाने से रोक लें और अतीत एवं भविष्य के विषय में विचार न करें और अपने दिमाग़ को विचारशून्य होने से भी रोक लें, तब आप इस हलचल के नीचे की विचार प्रक्रिया को देख पाएँगे। इसके नीचे स्थिरता है, मस्तिष्क की स्पष्टता है। आपको इसे देखने या अनुभव करने की कोशिश करनी चाहिए...”

"शुरू में यह बहुत कठिन लगता है। हम इसी समय इसका अभ्यास शुरू करते हैं। आरंभ में, जब आप चेतना की इस स्वाभाविक अवस्था को अनुभव करने लगेंगे तो यह आपको किसी तरह की 'अनुपस्थिति' जैसी महसूस होगी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हम अपने दिमाग़ को बाहरी चीज़ों के साथ जोड़कर देखने के बहुत ज़्यादा आदी हो चुके हैं; हम संसार को अपनी धारणाओं, छवियों आदि के नज़रिए से देखते हैं। तो जब आप अपने दिमाग़ को इन बाहरी चीज़ों से हटा लेते हैं तो लगभग ऐसा हो जाता है कि आप अपने ही दिमाग़ को पहचान नहीं पाते। वहाँ एक तरह की अनुपस्थिति, एक प्रकार की रिक्तता पैदा हो जाती है। हालाँकि, जैसे-जैसे आप इसमें प्रगति करते हैं, आपको इसके अंदर की स्पष्टता, भीतर का प्रकाश नज़र आने लगता है। तब आप मस्तिष्क की स्वाभाविक अवस्था को पहचान और समझ पाते हैं।"

"बहुत-से गहन ध्यान-आधारित अनुभव मस्तिष्क की इसी स्थिरता के आधार पर प्रकट होते हैं... ओह," दलाई लामा हँसे, "यह चेताना ज़रूरी है कि इस तरह के ध्यान अभ्यास में चूंकि ध्यान लगाने के लिए कोई विशिष्ट वस्तु नहीं होती, ऐसे में नींद आ जाने का ख़तरा होता है।"

"तो, अब हम ध्यान लगाते हैं...। सबसे पहले, तीन बार श्वास प्रक्रिया को दोहराएँ और अपना सारा ध्यान अपनी श्वास पर केंद्रित कर दें। आपको सिर्फ़ साँस लेने और साँस छोड़ने पर ध्यान देना है, फिर से साँस लेना, छोड़ना तीन बार। इसके बाद ध्यान आरंभ करेंगे।"

दलाई लामा ने अपना चश्मा उतारा, अपने हाथों को गोद में रखा और ध्यान मुद्रा में लीन हो गए। हॉल में पूर्ण शांति थी। पंद्रह सौ लोग अपने भीतर, पंद्रह सौ निजी संसारों के एकांत में उतर रहे थे। वे सब अपने विचारों को स्थिर करने और अपने मस्तिष्क की सत्य प्रकृति की झलक पाने का प्रयास कर रहे थे। पाँच मिनट के बाद, शांति चटकी, लेकिन भंग नहीं हुई जब दलाई लामा ने अपनी धीमी और मधुर आवाज़ में मंत्र पढ़ने शुरू किए और वे धीरे-से अपने श्रोताओं को उनके ध्यान में आगे ले गए। उस दिन, हमेशा की भांति, चर्चा समाप्त होने पर दलाई लामा ने हाथ जोड़े, अपने श्रोताओं को स्नेह व आदरपूर्वक झुककर प्रणाम किया, फिर उठे और अपने आस-पास फैली भीड़ के बीच से होकर चले गए। बाहर निकलते समय भी उनके हाथ जुड़े हुए थे और वे झुकते हुए जा रहे थे। भारी भीड़ के बीच से गुज़रते हुए, वे इतना ज़्यादा झुक रहे थे कि कुछ फ़ीट की दूरी पर खड़े लोगों के लिए उन्हें देख पाना मुश्किल हो रहा था। वे उस सागर-सी अपार भीड़ में खो गए। हालाँकि, उनके वहाँ से गुज़रते समय, भीड़ में हो रही हलचल के कारण कुछ दूरी से, उनके जाने वाले रास्ते को देखा जा सकता था। ऐसा लग रहा था मानो वे कोई दिखाई देने वाली वस्तु नहीं, बल्कि एक एहसास हैं जिसे सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है।

*बोधिसत्व संकल्प में, आध्यात्मिक प्रशिक्षु बोधिसत्व बनने की इच्छा की पुष्टि करता है। बोधिसत्व, जिसका शाब्दिक अनुवाद “जागृत हो रहा योद्धा” है, वह होता है जिसने, प्रेम एवं करुणावश, बोधिचित्त को प्राप्त कर लिया हो। बोधिचित्त ऐसी मानसिक अवस्था है जिसमें सभी प्राणियों के लिए लाभदायक बनने हेतु पूर्ण निर्वाण को प्राप्त करने की स्वाभाविक और सच्ची अभिलाषा होती है।

आभार

यह पुस्तक बहुत-से लोगों के प्रयासों और दया का परिणाम है। सबसे पहले, मैं चौथे दलाई लामा तेनज़िन ग्यात्सो के प्रति हृदय से धन्यवाद देना चाहता हूँ और उनकी असीम दया, उदारता, प्रेरणा तथा मैत्री के लिए उनका आभारी हूँ। मैं अपने माता-पिता जेम्स और बैटी कट्लर की प्यार भरी स्मृति का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे ख़ुशी की राह पर चलने की नींव उपलब्ध करवाई।

मैं अन्य कई लोगों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ:

डॉ. थुप्टेन जिंपा का उनकी दोस्ती के लिए, इस पुस्तक में दलाई लामा के अंशों को संपादित करने तथा दलाई लामा की सार्वजनिक चर्चाओं एवं हमारे अनेक निजी संवादों में दुभाषिए की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए धन्यवाद। भारत में दलाई लामा के साथ मेरे अनेक संवादों के लिए दुभाषिए की भूमिका निभाने वाले वेनलाक्दोर, लोबसांग जोरधेन का भी धन्यवाद।

तेन्ज़िंग गिशे तेथॉन्ग, रिनशेन धार्लो और दावा सेरिंग का पिछले अनेक वर्षों में उनके साथ और सहयोग के लिए धन्यवाद।

उन सब लोगों को धन्यवाद जिन्होंने दलाई लामा की 1993 में ऐरिज़ोना यात्रा के लिए बहुत मेहनत की और बहुत-से अनेक लोगों के लिए उस अनुभव को लाभदायक बनाया: क्लॉड दा ऐस्त्रे, केन बैशर एवं ऐरिज़ोना टीचिंग इंक. के बोर्ड एवं कर्मचारियों का, पेगी हिचकॉक तथा ऐरिज़ोना फ्रेंड्स ऑफ़ तिब्बत के बोर्ड का, ऐरिज़ोना स्टेट युनिवर्सिटी में दलाई लामा के भाषण का आयोजन करने के लिए डॉ. पैम विल्सन एवं अन्य लोगों का तथा ऐरिज़ोना में दलाई लामा के प्रवचनों को सुनने आए लोगों की ओर से दर्जनों अन्य स्वयंसेवकों का उनके अथक परिश्रम के लिए धन्यवाद।

मेरे असाधारण एजेंट शैरॉन फ्राइडमैन और रैल्फ़ विचिनान्ज़ा और उनके शानदार कर्मचारी जिन्होंने प्रेरणा, दया एवं समर्पण से पूरे कार्य में सहयोग दिया और अपने कर्त्तव्य से कहीं ऊपर उठकर इस काम में मेहनत की। मैं उनका विशेष रूप से आभारी हूँ।

उन सब लोगों का आभार जिन्होंने इस लंबे लेखन कार्य में बहुमूल्य संपादन सहयोग, अंतर्दृष्टि, विशेषज्ञता एवं निजी सहयोग दिया: पांडुलिपि के पूर्व प्रारूप के संपादन में रुथ हैपगुड का उनके कुशल प्रयास के लिए, पुस्तक की विशाल सामग्री को पढ़ने तथा केंद्रित

रहते हुए इसे सुसंगत तरीके से व्यवस्थित करने के लिए बारबरा गेट्स और डॉ. रोन्ना कबाज़निक की अपरिहार्य सहायता के लिए तथा रिवरहेड में मेरे अत्यंत प्रतिभावान संपादक ऐमी हर्ट्ज़ का आभार जिन्होंने इस कार्य के लिए मुझ पर भरोसा किया और पुस्तक को अंतिम रूप देने में सहायता की। साथ ही, जेनेफर रेपो तथा रिवरहेड बुक्स के मेहनती कॉपी संपादकों का भी आभारी हूँ। मैं उन लोगों को भी धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने ऐरिज़ोना में दलाई लामा के सार्वजनिक भाषणों की प्रतिलिपि बनाने, दलाई लामा के साथ मेरी बातचीतों को टाइप करने और पांडुलिपि के सबसे आरंभिक प्रारूप को टाइप करने में मदद की।

अंत में, मेरा बहुत-बहुत धन्यवाद:

अपने गुरुओं को।

अपने परिवार और अपने अनेक मित्रों को जिन्होंने मेरे जीवन को इतना समृद्धि किया है कि मैं उसे व्यक्त नहीं कर सकता: जीना बैकविद एकेल, डॉ. डेविड बाइस और ड़ेने ऐट्कीसन, डॉ. जिलियन हैमिल्टन, हेलन मित्सिओस, डेविड ग्रीनवॉल्ट, डेल ब्रोज़ोस्की, क्रिस्टी इंघम ऐस्पीनाज, डॉ. डेविड क्लेबनॉफ़, हेनरिएटा बर्नस्टाइन, टॉम माइनर, एलेन वायट गोएट, डॉ. गेल मैक्डॉनल्ड, लैरी कट्लर, रैंडी कट्लर, लोरी वॉरेन तथा कैंडी व स्कॉट ब्रायरली का तथा मेरे उन सब दोस्तों का - जिनका मैं यहाँ नाम लेना भूल गया हूँ, लेकिन जो मेरे हृदय में रहते हैं और जिन्हें मैं भरपूर प्रेम, आभार और सम्मान देता हूँ - विशेष धन्यवाद और बहुत-बहुत आभार।

लेखक-परिचय

परम पावन दलाई लामा का जन्म 6 जुलाई 1935 को उत्तरपूर्वी तिब्बत के एक ग़रीब किसान परिवार में हुआ था। दो साल की उम्र में उनकी पहचान तिब्बत के आध्यात्मिक एवं ऐहिक गुरु दलाई लामा के रूप में कर ली गई थी। ये छह सौ साल से चल रहे इस क्रम में चौदहवें दलाई लामा हैं। छह वर्ष की आयु से आजीवन बौद्ध भिक्षु बने रहने का उनका प्रशिक्षण आरंभ कर दिया गया था। तिब्बत से निष्कासित किए जाने के बाद 1959 से वे धर्मशाला, भारत में रह रहे हैं। मानवाधिकारों, विश्व शांति तथा मूल मानवीय गुणों के क्षेत्र में उनके अथक परिश्रम के लिए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। 1989 के नोबेल शांति पुरस्कार तथा अमरीका के काँग्रेस स्वर्ण पदक के अतिरिक्त उन्हें अनेक सम्मान व पुरस्कार दिए जा चुके हैं।

दलाई लामा के विषय में तथा उनके प्रवचनों के कार्यक्रम संबंधी अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट www.dalailama.com देखें।

हावर्ड सी. कट्लर, एमडी एक मनोवैज्ञानिक, लोकप्रिय लेखक एवं वक्ता हैं। उन्होंने परम पावन दलाई लामा के साथ मिलकर सुविख्यात आर्ट ऑफ़ हैपीनेस नामक पुस्तक श्रृंखला लिखी है जिसका पचास भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और वह विश्व की सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों की सूची में शामिल हो चुकी है। मानव ख़ुशी के विज्ञान के मुख्य विशेषज्ञ सकारात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रवर्तक के रूप में डॉ. कट्लर विश्वभर में ख़ुश रहने के ऊपर महत्त्वपूर्ण प्रस्तुतिकरण देते हैं, कार्यशालाएँ आयोजित करते हैं और पाठ्यक्रम भी चलाते हैं।

उन्होंने अमेरिकन बोर्ड ऑफ़ साइकिआट्री और न्यूरोलॉजी से डिप्लोमा किया है तथा वे अमेरिकन जर्नल ऑफ़ साइकोथेरेपी के संपादक मंडल के भी सदस्य हैं। डॉ कट्लर ने अपना जीवन दूसरों को ख़ुशी, संतोष और सफलता पाने में सहायता करने लिए समर्पित कर दिया है। वे फ़ीनिक्स में रहते हैं।

द आर्ट ऑफ़ हैपीनेस सहित अन्य पुस्तकों, कार्यशालाओं तथा कोर्स आदि के बारे में जानकारी हेतु अथवा डॉ. कट्लर से संपर्क करने के लिए कृपया वेबसाइट देखें www.theartofhappiness.com

अनुवादक की ओर से

आज मनुष्य रोज़मर्रा की समस्याओं और तरह-तरह के शारीरिक व मानसिक कष्टों से त्रस्त है तथा उनसे शीघ्र मुक्ति पाकर ख़ुश रहना चाहता है। जो लोग ख़ुशी पाने की आशा में अधिकांश जीवन धन अर्जित करते रहे हैं, उन्होंने कालांतर में पाया कि धन से सुविधाएँ तो प्राप्त की जा सकती हैं, लेकिन उससे ख़ुशी नहीं मिलती। धीरे-धीरे ख़ुशी की तलाश इंसान की प्राथमिकता बन गई और वह उसे खोजने के लिए प्रयत्नशील हो गया। परंतु 'ख़ुशी' शब्द सुनने में जितना सरल लगता है, उसे प्राप्त करने का रास्ता उतना ही दुस्तर है। इसके लिए कड़े आत्म-अनुशासन, दिमागी प्रशिक्षण और निरंतर अभ्यास की ज़रूरत पड़ती है। परम पूज्य दलाई लामा और सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हावर्ड सी. कट्लर ने मिलकर इस पुस्तक के माध्यम से इस कठिन कार्य को आम लोगों के लिए सुबोध और सहज बनाने का शानदार प्रयास किया है।

यह पुस्तक विश्व की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक है। और कई भाषाओं में इसका अनुवाद किया जा चुका है। मेरे लिए यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि मुझे इस उत्कृष्ट कृति का हिंदी अनुवाद करने के योग्य समझा गया। मैं इस भरोसे के लिए मंजुल पब्लिशिंग हाउस का हृदय से आभारी हूँ।

मैं आशा करता हूँ कि परम पूज्य दलाई लामा ने इस पुस्तक द्वारा जिस सहजता से लोगों को आनंद के सरल मार्ग का ज्ञान बाँटा है, मैं उसी सरलता से उनके विचारों को हिंदी पाठकों तक पहुँचाने में सफल रहा हूँ।

आशुतोष गर्ग का जन्म 1973 में दिल्ली में हुआ। इन्होंने एम.ए. (हिंदी), स्नातकोत्तर डिप्लोमा (अनुवाद, पत्रकारिता) तथा एम.बी.ए. किया है। लेखन-प्रतिभा अपने पिता डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग से विरासत में मिली। स्कूल के दिनों में काव्य-लेखन से लेखन का सफ़र आरंभ किया और अब तक इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आशुतोष अंग्रेज़ी व हिंदी दोनों भाषाओं पर समान रूप से अधिकार रखते हैं तथा अनुवाद के क्षेत्र में एक परिचित नाम हैं। इन्होंने लेखन व संपादन के क्षेत्र में भी सराहनीय कार्य किया है। शिक्षार्थी हिंदी प्रयोग कोश, द्विभाषी प्रशासनिक शब्द-प्रयोग कोश, एक सौ एक रोचक पहेलियाँ तथा मैं ऐल्बर्ट आइंस्टाइन बोल रहा हूँ इनकी मौलिक पुस्तकें हैं। इसके अतिरिक्त द्रौपदी की

महाभारत, दशराजन् तथा द लाइफ़ ऐंड टाइम्स ऑफ़ थॉमस अल्वा एडिसन इनके प्रमुख अनुवाद हैं। इनकी कुछ अन्य पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं। समाचार-पत्र व पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखते हैं। आजकल रेल मंत्रलय में उप-निदेशक के पद पर कार्यरत हैं।